हरियाणा का इतिहास

एम.ए. (पूर्वार्द्ध)
M.A. (Previous)
Paper-IV

दूरस्थ शिक्षा निदेशालय
महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय
रोहतक–124 001

Copyright © 2003, Maharshi Dayanand University, ROHTAK
All Rights Reserved. No part of this publication may be reproduced or stored in a retrieval system or transmitted in any form or by any means; electronic, mechanical, photocopying, recording or otherwise, without the written permission of the copyright holder.

Maharshi Dayanand University
ROHTAK – 124 001

Developed & Produced by EXCEL BOOKS PVT. LTD., A-45 Naraina, Phase 1, New Delhi-110028

विषय-सूची

अध्याय 1	हरियाणा के इतिहास के स्त्रोत (Sources of Ancient Period of Haryana)	5
अध्याय 2	हड़प्पा संस्क ति (Harapan Civilization)	14
अध्याय 3	वैदिक संस्कृति (Vedic Civilization)	17
अध्याय 4	यौधेय (Republic to Empire)	21
अध्याय 5	हरियाणा में प्रतिहारों का शासन (Pratihara Rule in Haryana)	28
अध्याय 6	हरियाणा में सुल्तानों का शासन (Haryana During Sultanate Period)	36
अध्याय 7	मुगलों के अधीन हरियाणा (Haryana During Mughal Period)	47
अध्याय 8	मराठों का आगमन (Sources of Modern Period)	66
अध्याय 9	हरियाणा में सामाजिक व धार्मिक आंदोलन (Socio-Religious Movements in Haryana)	79
अध्याय 10	1857 की क्रांति (Revolution of 1857)	87

HISTORY OF HARYANA

PAPER-IV **Max. Marks : 100**

Time : 3 Hours

Note:II Question paper will consist of three Sections. Section-I consisting of one question with ten parts of 2 marks each covering the whole syllabus shall be compulsory. In section-II, 10 questions will be set selecting two questions from each unit. The candidates will be required to attempt any seven questions each of five marks. In section-III, five questions will be set, one from each unit. The candidates will be required to attempt any three questions each of 15 marks.

Unit – I

(i) Sources of Ancient Period (ii) Harapan Civilization: General Features

(iii) Growth of Vedic Civilization and Historicity of battle of Mahabharata.

(iv) Republic to Empire:

(a) Yaudheyas, Agras and Kunindas (b) Pushpabhutis

Unit–II (A) Rise of New Powers

(a) Gurjara-Pratiharas (b) Tomaras

(c) Chahamanas (d) Sources of Medieval Period

(B) Sultanate Period

(a) Haryana on the Eve of Turkish Invasion (b) Revolts of Meos and Rajputs

(c) Provincial Administration-Iqta system (d) Economic Changes

(C) Mughal Period

(a) First and Second battle of Panipat and Hemu; Revolt of Satnamis.

(b) Pargana Administration.

(c) Economy-Land Revenue System; Cropping pattern and Irrigation System.

(d) Impact of Socio-Religious Movement-Bhakti and Sufi.

Unit-III A. Struggle for power in Haryana in 18th Century

(a) Sources of Modern Period (b) Marathas, Jats and Sikhs

(c) George Thomas

B. Socio-Religious Movements in Haryana

(a) Arya Samaj (b) Sanatan Dharam

(c) Development of Education

C. Political Movements

(a) Revolt of 1857 (b) Rise of Political Consciousness

(c) National Movement (1885-1919)

(d) Mass Movements; Non-cooperation; Civil Disobedience; Praja Mandal, Quit India Movement; Regional Consciousness-Unionist Party.

अध्याय-1
हरियाणा के इतिहास के स्त्रोत
(Sources of Ancient Period of Haryana)

हरियाणा प्रदेश 27.39° से 30.55° उत्तरी अक्षांश और 74.28° से 77.36° पूर्व रेखांश के मध्य स्थित है। इस प्रदेश के उत्तर में शिवालिक की पहाड़ियाँ इसके दक्षिण में अरावली की पहाड़ियाँ और राजस्थान का मरू प्रदेश हैं घग्गर नदी इसकी पश्चिमी सीमा बनाती है। यमुना नदी इस प्रदेश की पूर्वी सीमा निर्धारित करती है तथा इसको उत्तर प्रदेश से अलग करती है। इस प्रकार की प्राकृतिक सीमाओं के कारण सदियों से इस प्रदेश की एक अलग से भौगोलिक पहचान रही है।

हरियाणा की स्थिति सामरिक महत्व की होने के कारण भारत के राजनीतिक सामाजिक तथा धार्मिक इतिहास में इस प्रदेश का महत्वपूर्ण स्थान है। यहाँ की धरती पर ऋण वैदिक काल से लेकर आधुनिक काल तक कई लड़ाईयाँ लड़ी गई जिनके कारण भारत के इतिहास में परिवर्तन हुआ, उपलब्ध सामग्री के आधार पर हम हरियाणा के इतिहास के स्रोतों को तीन भागों में बांट सकते हैं।

1. प्राचीन हरियाणा के इतिहास के स्त्रोत
2. मध्यकालीन हरियाणा के इतिहास के स्त्रोत
3. आधुनिक हरियाणा के इतिहास के स्त्रोत

1. **प्राचीन हरियाणा के इतिहास के स्त्रोतः** प्राचीन हरियाणा के इतिहास के निर्माण में काम आने वाले स्रोतों को भी दो भागों में बांटा जा सकता है- (i) साहित्यिक स्त्रोत, (ii) पुरातात्विक स्त्रोत

   i. ***साहित्यिक स्त्रोतः*** हमारे प्राचीन इतिहास पर प्रकाश डालने वाली साहित्यिक सामग्री कई प्रकार की है जिसको मोटे तौर पर हम दो भागों में बांट सकते हैंः भारतीय स्त्रोत और विदेशी स्त्रोत।

      अ. *भारतीय स्त्रोतः* भारतीय स्त्रोतों में सबसे पहले धार्मिक ग्रंथ आते हैं इनको अपनी सुविधा के आधार पर हम तीन भागों में बांट सकते हैंः ● ब्राह्मण धर्म ग्रंथ; ● बौद्ध धर्म ग्रंथ और ● जैन धर्म ग्रंथ।

      - **ब्राह्मण धर्म ग्रंथः** इस बात के लगभग सभी इतिहासकार सहमत हैं कि वैदिक संहिताओं, ब्राह्मण, उपनिषद और आरण्यक आदि की रचना हरियाणा में ही हुई अतः इस ग्रंथों में इस प्रदेश की विशेषताओं के बारे में कुछ न कुछ मिलना स्वाभाविक है।
      - **ऋग्वेदः** ऋगवेद विश्व का सबसे प्राचीन ग्रंथ है इससे हरियाणा प्रदेश की भौगोलिक जानकारी दी गई है। ऋग्वेद से हमे पता चलता है कि आर्य लोग सरस्वती और द षदाती नदियों के बीच में निवास करते थे। इन्हीं नदियों के तटों पर इन्होंने वैदिक ग्रंथों की रचना वैदिक यज्ञों का विकास तथा अध्यात्मिक ज्ञान की प्राप्ति की। ऋग्वेद वेद में भारत नामक कबीले का उल्लेख किया गया है जो इस काल में सरस्वती और यमुना नदियों के बीच रहता था। ऋग्वेद में हरियाणा के कुछ स्थानों का भी उल्लेख है जिससे सरयणावत मुख्य है कनिधंम इसकी पहचान कुरुक्षेत्र के आधुनिक विशाल तालाब से करते है।

        शतपथ ब्राह्मणः इस ग्रंथ में हरियाणा क्षेत्र में रहने वाले कुरुओं का उल्लेख है जिनके नाम पर कुरुक्षेत्र नाम पड़ा जो बाद में वैदिक संस्कृति का केन्द्र बना।

महाभारतः महाभारत का युद्ध कुरुक्षेत्र में हुआ और गीता का उपदेश भी कुरुक्षेत्र में दिया गया था। महाभारत में हरियाणा प्रदेश को बहु धान्यक प्रदेश कहा गया है। महाभारत में नकुल की दिग्विजय और विशेषकर नकुल के रोहतक पर आक्रमण के बारे में विस्तार से दिया गया है। महाभारत के अनुसार रोहतक जहाँ घोड़ों और गायों की बहुतायत थी, फसले बहुत अच्छी थी कार्तिकेय जहाँ का पूज्य देवता या ऐसे प्रदेश के निवासियों के साथ नकूल को भीषण युद्ध का सामना करना पड़ा। इस के अतिरिक्त इस ग्रंथ में इस क्षेत्र की नदियों, जंगलों, आश्रमों, तीर्थों और नगरों के बारे में विस्त त जानकारी दी गई।

वामन पुराणः वामन पुराण में इस प्रदेश को करू जंगल कहा गया है तथा हरियाणा क्षेत्र के सात जंगलो का विवरण दिया गया है।

बौद्ध धर्म ग्रंथः बौद्ध धर्म ग्रथों में भी हरियाणा के लोगों के जीवन और बौद्ध धर्म के अस्तित्व के बारे में ज्ञान प्राप्त होता है जो इस प्रकार है।

दिव्यदानः इस ग्रंथ से हमे पता चलता है कि उत्तर-पश्चिमी भारत में जिसमें अग्रोहा और रोहतक आते हैं बौद्ध धर्म का प्रसार था। रोहतक के लोग सम द्विशाली, प्रसन्नचित, धनधान्य से परिपूर्ण तथा संगीत प्रेमी थे।

चुल्लवग्ग से पता चलता है कि अग्गल्लपुर (अग्रोहा) बौद्ध धर्म का शक्तिशाली केन्द्र था।

मंजू श्री मुल कल्पः इस ग्रंथ में श्री कण्ठ जनपद के अन्तर्गत आने वाले स्थाण्विश्वर का उल्लेख किया गया है और बताया गया है कि यहाँ के शासक वैश्य थे।

मझिम निकायः इस ग्रंथ में हमें उल्लेख मिलता है कि तुल्लकोट्टहित (धनकोट जिला गुड़गांव) जो कुरुक्षेत्र का एक सम द्विशाली शहर था। इस शहर में बुद्ध ने रत्थपात को अपना उपदेश दिया था।

जातक ग्रंथः जातकों में कुरुक्षेत्र का प्रचुरता से उल्लेख मिलता है।

जैन साहित्यः अनेक जैन ग्रंथों में हरियाणा प्रदेश के लोगों के जीवन और जैन धर्म के इतिहास की जानकारी मिलती है। इस प्रदेश में जैन धर्म का पुनजिवित करने का श्रेय जैन साधु जिनवल्लभ को जाता है जो कि हासी में रहते हैं। इन्होंने कई पुस्तकें लिखीं जिनसे इस क्षेत्र में जैन धर्म के इतिहास तथा अन्य तथ्यों पर प्रकाश पड़ता है।

साम देव के यशस्तिलक चम्पू और पुष्प दंत के जसहर चरिऊ दोनों ग्रंथों से हमें पता चलता है यौधेय देश अर्थात हरियाणा पशुधन से परिपूर्ण था। चारों तरफ खेतों में लहलहाती फसलें भी लोग आदर सत्कार करने वाले तथा वर्ण आश्रम धर्म को मानने वाले थे। यह प्रदेश एक सुंदर और खुशहाल जीवन का स्थान था।

ऐतिहासिक ग्रंथः

कल्हण की राजतरंगिणीः इससे हरियाणा के राजनीतिक इतिहास पर काफी प्रकाश पड़ता है। इसमें बताया गया है कि कश्मीर के राजा ललितादित्य मुक्तापीड ने यहां के राजा को हराकर यमुना से कालका तक का सारा प्रदेश अपने अधीन कर लिया था। इस ग्रंथ से हमें यह भी ज्ञात होता है कि रोहतक का एक व्यापारी बहु संपत्तिवान था।

अर्ध ऐतिहासिक ग्रंथः

पाणिनी की अष्टाध्यायीः इस ग्रंथ में कुरुजनपद और यौधेयजाति, जो इन प्रदेश में बसते थे का विवरण दिया गया है। इसके अतिरिक्त हरियाणा के कुछ नगरों का जिनमें कपिस्थल, (कैथल) सैरिसक (सिरसा), तोशायल (टोहाना जिला हिसार), श्रहन (सुहण), काल कुट (कालका) आदि का उल्लेख किया गया है।

चतुर बाणीः इस ग्रंथ में बताया गया है कि यौधेय सम द्ध व बहादुर ही नहीं बल्कि संगीत विद्या के

लिए भी प्रसिद्ध थे। रोहतक के ढोल वादकों ने अपने संगीत से उज्जैन के बाजारों में बहुत से लोगों को आक षित व मोहित किया था।

बाण भट्ट का हर्ष चरित: इस ग्रंथ में श्रीकंठ देश के स्थाणीस्वर का सुंदर वर्णन किया गया है। बाण के अनुसार इस प्रदेश के लोग बहुत अच्छे स्वभाव व अपने क र्तव्यों के प्रति समर्पित थे। लोगों का जीवन उच्च आदर्शो से भरपूर था उन्हें किसी प्रकार की बिमारी अथवा अकाल म त्यु का कोई ज्ञान नहीं था। बाण के अनुसार श्रीकंठ जनपद में चारों तरफ, ईख, चावल, गेहूं आदि के बड़े-बड़े खेत थे और चारों तरफ फलों के बगीचे थे जिनमें विभिन्न प्रकार के फल लगे हुए थे। गाय भैंसों तथा अन्य पशुओं के समूह जंगलों में चरने जाते थे। खेती हल से की जाती थी और जब हल खेतों में चलता था तो मिट्टी से खुशबू आती थी जिससे मधुमखियां आक र्षित होती थी।

वाकपतिराज का गौडवाहो से ज्ञात होता है कन्नौज के यशोवर्मन ने इस क्षेत्र पर आक्रमण किया था।

ब. ***विदेशी स्त्रोत:***

यूनानी लेखक: एरियन ने इस क्षेत्र की आर्थिक व राजनीतिक अवस्था पर प्रकाश डाला है इसके विवरण से ज्ञात होता है कि यहां के लोग बहुत ही अच्छे क षक थे, वे युद्ध लड़ने में बहादुर थे, जिनकी प्रशासन पद्धति बहुत ही अच्छी थी, जिसमें न्याय को विशेष स्थान दिया गया था।

चीनी लेखक: ह्वेन सांग हर्ष के समय में हरियाणा में आया उसने यहां के तीन स्थानों थानेश्वर सुग व गोकण्ठ (गोहाना) का भ्रमण किया। उसने श्रीकण्ठ राज्य और उसकी राजधानी स्थाणीस्वर का बहुत सुंदर वर्णन किया है। उसके अनुसार श्रीकण्ठ के लोग जादुई कला में निपुण थे। अधिकतर लोग व्यापार करते थे। यहां की मिट्टी बहुत ही उपजाऊ होते हुए भी क षि कुछ ही लोग करते थे। धनी लोग धन कि फिजुलखर्ची करते थे। अधिकतर लोग ब्राह्मण धर्म को मानने वाले थे।

ii. ***पुरातात्विक स्त्रोत:*** हरियाणा क्षेत्र पुरातात्विक सामग्री के संबंध में बहुत की सम द्ध है। सर्वेक्षण करके इस क्षेत्र से अनेक पुरा स्थल जो आदिकाल से लेकर, मध्यकाल के है, सामने आए हैं। कुछ स्थानों पर पुरातात्विक उत्खनन भी हुए हैं जिनमें मिताचल, सुघ, धौलपुर, भगवानपुरा, राजा कर्ण का किला, बालू, सीस वाल, अग्रोहा, बनावली, राखी गढ़ी आदि शामिल है। इन उत्खननों से मिलने वाली सामग्री के अध्ययन से ज्ञात हुआ है कि इस प्रदेश की संस्क ति 2400 B C प्राचीन है।

उत्खननों व सर्वेक्षणों में मिलने वाली प्राचीन सामग्री को हम स्त्रोतों के आधार पर निम्नलिखित भागों में बांट सकते हैं।

अभिलेखीय स्त्रोत: समस्त हरियाणा में प्राचीन काल संबंधित अभिलेख पाए गए हैं जिनका काल क्रम के हिसाब से ब्यौरा इस प्रकार है।

- **अशोक का टोपड़ा अभिलेख:** इससे ज्ञात होता है कि हरियाणा कभी मौर्य साम्राज्य का भाग था।
- **तोशाम अभिलेख:** यह अभिलेख 4-5वीं सदी का है। इसका धार्मिक व सांस्क तिक महत्व है। इसमें किसी आचार्य सोमत्रात द्वारा दो तालाब और एक मंदिर बनाने का उल्लेख किया गया है।
- **हिसार का स्तंभ लेख:** चौथी पांचवीं सदी के इस लेख में तीर्थ यात्रियों के नाम है इससे ज्ञात होता है कि जिस स्थान पर यह अभिलेख था वह कभी तीर्थ स्थान था।
- **सोनीपत का ताम्रपत्र लेख:** इस लेख में प ष्ठभूमि राजाओं की वंशावली दी गई है। इस लेख से हमें इन राजाओं की उपाधियों और इनके व्यक्तिगत धर्म का भी ज्ञान होता है। इससे हमें पता चलता है कि हर्ष शैव धर्म को मानने वाला था जबकि बाकी सभी शासक सूर्य के उपासक थे।
- **प्रतिहार काल के अभिलेख:** राजा भोज के काल के दो अभिलेख पेहवा व सिरसा व महेंद्र पाल का एक अभिलेख पेहवा से प्राप्त हुआ है। राजा भोज के अभिलेखों से हमे ज्ञात होता है कि प्राचीन काल में पेहवा व्यापार एवं संस्क ति का प्रमुख केंद्र था तथा सिरसा पाशुपत संप्रदाय का महत्वपूर्ण स्थान था।

महेंद्रपाल का पेहवा अभिलेख राजनैतिक तथा आर्थिक द ष्टि से महत्वपूर्ण है। इस लेख से हमें तोमर वंश की वंशावली के बारे में सबसे प्राचीन प्रमाण है। इसके अतिरिक्त इस अभिलेख से हमें ज्ञात होता है कि पेहवा उत्तरी भारत का घोड़ों के व्यापार का प्रमुख केंद्र था। यहां प्रति वर्ष साल के एक विशेष दिन घोड़ों का मेला लगता था जिसमें सारे देश के घोड़ों के व्यापारी घोड़े खरीदने व बेचने के लिए एकत्रित होते थे।

- **दिल्ली (शिवालिक) स्तंभ लेखः** इस लेख से हमें ज्ञात होता है कि चाहमान राजा विग्रह राज IV ने तोमरों को पराजित किया था।
- **हाँसी से प्राप्त प थ्वीराज II का अभिलेखः** हरियाणा में चाहमान शासन की जानकारी के लिए यह अभिलेख महत्वपूर्ण है। इस अभिलेख से हमें ज्ञात होता है कि प थ्वीराज II में अपने चाचा विल्हण का हासी के किले का कार्यभार सौंपा था ताकि हासी को मुस्लिम आक्रमणकारियों से बचाया जा सके।
- **पालम बावली तथा दिल्ली संग्रहालय अभिलेखः** इनसे हरियाणा के इतिहास से संबंधित महत्वपूर्ण जानकारी प्राप्त होती है। दिल्ली अभिलेख में हरियाणा को स्वर्ग बताया गया है। जिसमें ढिल्लिका (दिल्ली) भी सम्मिलित है, जिसे तोमरों ने स्थापित किया था।

सिक्केः हरियाणा प्रदेश के विभिन्न इलाकों से हमें सिक्के तथा सिक्के ढालने के सांचे मिले हैं। ये सभी हरियाणा के राजनैतिक, सामाजिक व आर्थिक इतिहास के महत्वपूर्ण स्त्रोत है। हरियाणा में सबसे पहले पंच मार्क सिक्के मिले हैं। इसके बाद इसके बाद अगाध व यौधेय गणराज्यों के सिक्के प्राप्त हुए है। खोखराकोट (रोहतक) से यौधेयो के सिक्के बनाने के सैंकड़ों साचों की भी प्राप्ति हुई है इससे यह ज्ञात होता है कि यह स्थल संभवत यौधेयो की राजधानी थी जहां पर टकसाल यानी सिक्के ढलाई का काम भी किया जाता था।

इंडो ग्रीक शाशकों के सिक्केः हरियाणा के विभिन्न पुरास्थलों से जितने भी इंडो ग्रीक सिक्के पाए गए थे। इनमें से लगभग आधे खोखराकोट पर पाए गए हैं। इन शासकों के सिक्कों की अधिक संख्या में प्राप्ति से ज्ञात होता है कि इन्होंने इस क्षेत्र पर आक्रमण किया था।

कुषाणों के सिक्केः मिताथल से प्राप्त 27 स्वर्ण सिक्कों को छोड़कर हरियाणा से प्राप्त कुषाण शासकों के सभी सिक्के तांबे के हैं। हुविष्क तथा कनिष्क I के सिक्कों के सांचे खाखराकोट तथा नौरंगाबाद से प्राप्त हुए हैं। इनसे ज्ञात होता है कि कुषाणों ने इस प्रदेश पर राज्य किया था।

इन सबके अलावा गुप्त शासकों में केवल समुद्रगुप्त के ही सिक्के केवल जगाधरी तथा भीताथल से प्राप्त हुए है। पुष्प भूतियों के अभी तक हरियाणा में कोई सिक्का नहीं प्राप्त हुआ है। प्रतिहार शासकों में भोजदेव व विग्रहपाल के सिक्के खोखराकोट से मिले हैं। कुछ बुड़िया व जगाधरी के आसपास से तोमरों व चौहानों के सिक्के मिले हैं। इनके आधार पर हम कह सकते हैं कि इन सभी ने कभी न कभी इस प्रदेश पर शासन किया था।

मोहरेः हरियाणा के खोखराकोट, नौरंगाबाद सुग तथा दौलपुर आदि स्थानों से अनेक मोहरें प्राप्त हुई हैं। इन मोहरों में विभिन्न भाषाओं में कुछ न कुछ लिखा हुआ है। इनमें हमें राजनैतिक व सांस्क तिक इतिहास की महत्वपूर्ण जानकारी मिलती है।

मूर्तियांः मूर्तियां इतिहास निर्माण में काफी योगदान देती है। मूर्तियों के अध्ययन से तत्कालीन समाज के धार्मिक, आर्थिक तथा सांस्क तिक जीवन का पता चलता है। हरियाणा से प्राप्त मूर्तियां अधिकतर धार्मिक संप्रदायों से संबंधित है। हरियाणा में ज्यादातर मूर्तियां ब्राह्मण धर्म से संबंधित हैं। जिनमें विष्णु तथा उसके विभिन्न अवतार, शिव-पार्वती, एक मुखी लिंग, गणेश, महिषासुर मर्दिनि आदि की मूर्तियां प्रमुख हैं। इसके अतिरिक्त जैन धर्म से संबंधित भी अनेक मूर्तियां हरियाणा के विभिन्न स्थलों से प्राप्त हुई है। इनसें पता चलता है कि प्राचीन हरियाणा में इन दोनों धर्मो का प्रभाव रहा है। बौद्ध मूर्तियों का न पाया जाना इस बात की ओर इशारा करता है कि बौद्ध धर्म का प्रभाव हरियाणा क्षेत्र में कभी नहीं रहा।

भवन व स्मारकः गुर्जरप्रतिहार काल के कलायत में ईटों से निर्मित दो मंदिरों को छोड़कर दुर्भाग्य से एक

भी स्मारक नहीं बचा है। फिर भी खुदाईयों में हमें भवनों व मंदिरों के अवशेष व स्तंभ आदि प्राप्त हुए हैं। इन वस्तुओं से हमें उस काल की धार्मिक सांस्क तिक व आर्थिक इतिहास का कुछ ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं।

2. **मध्यकालीन हरियाणा के इतिहास के स्त्रोतः** सन् 1966 से पहले हरियाणा प्रदेश एक प थक राजनैतिक इकाई नहीं था। इसलिए इसके इतिहास की रचना के लिए स्त्रोतों का कोई प्रयास नहीं किया गया। लकिन जबसे हरियाणा एक प थक राजनैतिक इकाई के रूप में उभर कर आया तबसे इसके मध्यकालीन इतिहास का निर्माण करने के लिए काम में आने वाले विभिन्न स्त्रोतों की खोज और शोध कार्य आरंभ हुआ। इन स्त्रोतों को हम निम्न प्रकार से विभाजित कर सकते हैं।

समसामायिक सामग्रीः

i. ***अभिलेखागारीय सामग्रीः*** हरियाणा के मध्यकालीन इतिहास से संबंधित स्त्रोत हरियाणा तथा अन्य राज्यों के विभिन्न अभिलेखागारो में उपलब्ध है। राजस्थान के राज्य अभिलेखागार बीकानेर में जो सामग्री उपलब्ध है उससे इस क्षेत्र के आर्थिक तथा सामाजिक जीवन पर महत्वपूर्ण प्रकाश पड़ता है। पंजाब राज्य अभिलेखागार पटियाला में मध्यकालीन हरियाणा के मुगलकाल व सिक्ख राज्यों से संबंधित सामग्री उपलब्ध है। मध्य प्रदेश के राजकीय अभिलेखागार में मराठों से संबंधित 1789 से 1803 के मध्य के कुछ ऐसे कागजात उपलब्ध हैं जिनसे हरियाणा के आर्थिक, सामाजिक व धार्मिक जीवन पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है। सीता मऊ के 'रघुबीर सिंह पुस्तकालय' के 'अखबाराते दरबारे मुआला' से औंरगजेब, बहादुर शाह, जहांदार शाह फर्रुखसियर और मुहमद शाह के राज्यकाल की घटनाओं का उल्लेख करते हैं जिनसे हरियाणा के तत्कालीन इतिहास की महत्वपूर्ण जानकारी मिलती है।

भारतीय राष्ट्रीय अभिलेखागार दिल्ली में उत्तर मुगलकालीन इतिहास की काफी सामग्री उपलब्ध है। यद्यपि हरियाणा राज्य के अभिलेखागार में बहुत कम सामग्री है लेकिन जो भी उपलब्ध है वह हरियाणा के मध्यकालीन इतिहास के निर्माण के लिए बहुत महत्वपूर्ण है।

कुछ पुराने दस्तावेज भारत पाक विभाजन के समय कुछ मुसलमान परिवार पाकिस्तान ले गए। इन्हीं में से एक परिवार ने तो 'मुआसिरे अजदाद' नाम से प्रकाशित भी कर दिया जो बहुत महत्वपूर्ण है। कुछ व्यक्तियों और परिवारों के पास मेवात में मुगलकालीन सामग्री उपलब्ध है। कुछ गांवों, परगनों, तहसीलों की 'बंदोबस्त रिपोर्ट' जो कि जिलों के रिकार्ड रूमों में उपलब्ध है से भी हमें इस काल के इतिहास की महत्वपूर्ण जानकारी होती है।

जींद व रेवाड़ी के पुराने रजवाड़ों से संबंधित सामग्री भी काफी महत्वपूर्ण है। जींद के कुछ कागजात पंजाब अभिलेखागार में तथा रेवाड़ी के कागजात राव विजपाल सिंह के पास सुरक्षित है जो मुगलकाल के हैं काफी महत्वपूर्ण हैं।

पुस्तकेंः पुस्तकों को हम उनमें उपलब्ध सामग्री के आधार पर दो भागों में बांट सकते हैं- ऐतिहासिक व साहित्यिक क तिय व भखर आदि।

- **ऐतिहासिक व साहित्यिक क तियांः** इन क तियों को भी दो भागों में विभाजित किया जा सकता है। गैर हरियाणवी लेखकों की क तियां और हरियाणवी लेखकों की क तियां।

  प्रथम वर्ग की पुस्तकों में सबसे प्राचीन अलबेरुनी की पुस्तक 'तहकीकाते हिंद' है। यह ग्रंथ महमूद गजनवी के समय का है। इसमें महमूद के थानेसर पर आक्रमण के अतिरिक्त हरियाणा के तत्कालीन सामाजिक जीवन के बारे में भी जानकारी मिलती है। उत्बी की पुस्तक "तारीखे यामिनी" में भी यहां के राजनैतिक इतिहास पर महत्वपूर्ण प्रकाश पड़ता है। बहावी की पुस्तक 'तारीखे सुबुक्तगीन' से हमें महमूद के भतीजे मासूद द्वारा 1038 ई० में हाँसी विजय का वर्णन मिलता है।

  निजामी के ग्रंथ 'ताजुल मासिर' में महमूद गौरी के आक्रमणों का विवरण मिलता है। इस पुस्तक में लेखक तराईन के दूसरे युद्ध का महत्वपूर्ण ब्यौरा देता है जबकि प्रथम युद्ध का कोई जिक्र नहीं करता। मिन्हाज की पुस्तक "तबकाते-नासिरी" में लेखक ने सबसे पहले हरियाणा शब्द का उपयोग किया है। इसके अलावा इस पुस्तक में राजनीतिक घटनाओं की चर्चा के साथ-साथ हरियाणा के सामाजिक व आर्थिक जीवन का भी उल्लेख मिलता है।

तुगलकों के समय में एक अफ्रीकी यात्री इब्न बतुता भारत आया। उसने बहूमुल्य जानकारी अपने ग्रंथ 'किताबुल रहला' के रूप में छोड़ी। इससे हाँसी, हिसार व सिरसा क्षेत्र के राजनैतिक उल्लेख के साथ-साथ सामाजिक, धार्मिक व आर्थिक स्थिति का भी उल्लेख किया गया है। इब्न बतुता के अनुसार सिरसा क्षेत्र में इस समय लाल रंग का चावल होता था जिसकी दिल्ली में विशेष मांग रहती थी। अफीफ की 'तारीखे-फिराजशाही' में हरियाणा के राजनीतिक, सामाजिक व आर्थिक जीवन से संबंधित बहुत महत्वपूर्ण जानकारी मिलती है। फिरोजशाह की 'फुतहाते फिरोजशाही' में हरियाणा में सुल्तान की धर्माधता का प्रमाण मिलता है। मेहरू के ग्रंथ 'इंसाए मेहरू' में गैर मुसलमानों के साथ बरती गई सख्ती का उल्लेख किया गया है।

सरहिंदी के ग्रंथ 'तारिखे-मुबारकशाही' में हरियाणा के 1380-1430 तक के राजनीतिक, इतिहास का चित्रण किया गया है। तैमूर के 'फल्फजाते-तैमूरी' में तैमूर के आक्रमण का ब्यौरा दिया गया है। मुस्ताकी के ग्रंथ 'वाकायाते मुस्ताकी' और अब्दुल्ला की 'तारीखे दाउदी' में लोधी वंश के समय के इतिहास के तथ्यों पर प्रकाश डाला गया है।

मुगलों के संत्तासीन होने के बाद इतिहास लेखन का एक नया अध्याय शुरू होता है। इस समय काल समसामायिक लेखक हर घटना का बड़ी बारिकी व सुंदरता से वर्णन करते हैं। बाबर के 'बाबरनामा' या तुज्के बाबरी में हरियाणा के राजनीतिक, प्रशासनिक, आर्थिक व सामाजिक जीवन का सुंदर चित्रण किया गया है। इसमें पानीपत के प्रथम युद्ध में बाबर द्वारा अपनाई गई रणनीति का भी सुंदर वर्णन किया गया है। गुलबदन बेगम के 'हुमायूंनामा' और मिर्जा हैदर के 'तारीखे शेरशाही में मिलता है। इसी प्रकार नियामतुल्ला की 'तारीखे-खानजहानी' और कांबो की 'तारीखे-गआउदने अखबारे अहमदी' से भी शेरशाह के समय के इतिहास पर प्रकाश पड़ता है।

अकबर के समय के इतिहास की जानकारी अबुल फजल के 'अकबरनामा' और 'आईने अकबरी' व बदायूंनी के ग्रंथ "मुंतखुब-उल-त्वारिख" में हरियाणा के राजनीतिक, प्रशासनिक, सामाजिक व आर्थिक इतिहास की जानकारी मिलती है। मौलाना आजाद के ग्रंथ 'दरबारे अकबरी' में हेमु द्वारा लड़ी गई पानीपत की दूसरी लड़ाई का सुंदर वर्णन किया गया है। जहांगीर के समय के ग्रंथों में स्वयं जहांगीर के ग्रंथ 'तुजके जहांगीरी और शहनवाज के 'मुआसिरूल उमरा' से यहां के राजनीतिक व प्रशासनिक इतिहास पर प्रकाश पड़ता है। मोहमद खां के ग्रंथ 'इकबालनामा ए जहांगीरी' में भी तत्कालिन जीवन के कई पहलूओं पर प्रकाश डाला गया है। फरिशता की 'तारीखे फरिशता' में हरियाणा के इतिहास के संबंध में मूल्यवान जानकारी उपलब्ध है। लाहौरी के "बादशाह नामा" और फानी के ग्रंथ 'दां बिस्ताने मुहाजिब' से हरियाणा के सामाजिक, धार्मिक और सांस्क तिक इतिहास पर महत्वपूर्ण प्रकाश पड़ता है। मुस्तैद खां के 'मुआसिरे आलमगीरी' से औंरगजेब के समय में घटित कई घटनाओं का उल्लेख है। खफीखां के 'मुंतखुब-उल-लुबाव' जो मुहम्मदशाह के समय का है में सतनामियों के विद्रोह से लेकर बंदा की गतिविधियों का विस्तार से वर्णन किया गया है।

दूसरे वर्ग में हरियाणा के लेखकों द्वारा लिखित ग्रंथ आते हैं। इनके सबसे पहले ठाकुर फेरू जो की दादरी के समीप कनाना गांव के रहने वाले थे ने सल्तनत काल में सात ग्रंथों की रचना की। इन ग्रंथों में 13-14वीं शताब्दी के आर्थिक, सामाजिक व धार्मिक इतिहास पर प्रकाश पड़ता है।

जैन विद्वान जिनवल्लभ सूरी की रचनाओं से हरियाणा के धार्मिक व सांस्क तिक जीवन का पता चलता है। 14वीं सदी के शर्फुदीन पानीपती के ग्रंथ से तत्कालीन मुस्लिम जीवन शैली के बारे में पता चलता है। मुहम्मद अफजल की पुस्तक 'विकट कहानी' से हरियाणा के प्रारंभिक उर्दू साहित्य की जानकारी तथा तत्कालीन धार्मिक सांस्क तिक इतिहास की जानकारी मिलती है। 16वीं शताब्दी में वीरभान के ग्रंथ से सतनामी आंदोलन पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है।

भंखर या आल्लाहः ये किसी राजा या सेनानायक की स्तुति में किसी लोक कवि द्वारा लिखे व गाए जाते हैं। इनका कथनक इतिहास से लिया होता है और ये दिलचस्प विवरण प्रस्तुत करते हैं। यद्यपि इनमें कवि अपनी और से काफी बनावटी तथ्य भर देता है। फिर भी इन रचनाओं का ऐतिहासिक महत्व है। इन रचनाओं से विशेषकर तत्कालिन सामाजिक, सांस्क तिक और धार्मिक परिस्थितियों का ज्ञान होता है।

पुरातात्विक सामग्री

अभिलेखः मध्यकालीन हरियाणा के इतिहास पर प्रकाश डालने वाले अनेक अभिलेख प्राप्त हुए हैं। जो कि मौहम्मद गौरी के समय से लेकर मुगलकाल तक के हैं। इनमें से ज्यादातर अभिलेख मस्जिदों बावड़ियों व कब्रों पर लगे मिले है। इन अभिलेखों को फारसी या अरबी में लिखा गया है। इन अभिलेखों से हरियाणा के इतिहास के विभिन्न पहलुओं पर प्रकाश पड़ता है।

सिक्केः हरियाणा के इस काल में जो भी मुगल एवं सल्तनतकालीन सिक्के मिले हैं वे वहीं हैं जो अन्य स्थानों पर मिलते हैं। इसलिए सिक्कों से कोई विशेष जानकारी प्राप्त नहीं होती। रेवाड़ी राज्य के गोकुलशाही सिक्के हेमू के सिक्के या जार्ज टामस के सिक्के जिनका पुस्तकों में उल्लेख तो मिलता है लेकिन वे अभी तक प्राप्त नहीं हुए हैं।

भवन व स्मारकः मध्यकालीन हरियाणा की इस श्रेणी में किले, मस्जिदे, मकबरे, बाग बावड़ियां आती हैं। इस काल की सबसे प्राचीन इमारतों में हासी का दुर्ग है। इसका निर्माण चौहान राजाओं द्वारा किया गया था। बाद में पठान शासकों द्वारा तथा 18वीं सदी में जार्ज टाम्स द्वारा इसका पुनः निर्माण किया गया। यह दुर्ग आज भी टूटी-फूटी दशा में मौजूद हैं। जो हमें प्राचीन समय में इस स्थान के सामरिक महत्व की जानकारी देता है। रोहतक की दीनी मस्जिद तथा हिसार की बहुत सी इमारतों का निर्माण पठान शासकों ने इसी समय करवाया।

मध्यकालीन हरियाणा के स्मारकों में नारनौल की इमारतों का अपना ही स्थान है। इनमें जलमहल और छता मुकुंद दास प्रमुख हैं। नारनौल की एक अन्य इमारत शेरशाह सूरी द्वार निर्मित उसके दादा इब्राहिम सूरी का मकबरा है। यह इमारत उस समय की स्थापत्य कला का एक सुंदर नमूना है।

थानेसर का शेख चेहली का मकबरा जिसे दारा शिकोह ने सूफी संत शेख चेहली की याद में बनाया, मुगल काल की स्थापत्य कला का एक बेजोड़ नमूना है। इसकी सुंदरता को देखकर इसे हरियाणा के ताज महल की संज्ञा दी गई है। पानीपत के शेख बुली कलंदर शाह का मकबरा व करनाल के पास यमुना नहर का पुल जिसे मुगलपुल कहा जाता है। पानीपत का काबुली बाग नारनौल का शाह कुली खां का बगीचा और पिंजौर का मुगल उद्यान मध्य कालीन हरियाणा की अन्य प्रमुख पुरातात्विक धरोहर हैं।

इन सभी इमारतों से हमें मध्य कालीन हरियाणा के हतिहास की जानकारी प्राप्त करने में बड़ी सहायता मिलती है।

आधुनिक सामग्रीः इसमें एक तो वे पुस्तकें शामिल हैं जो तत्कालीन पंजाब सरकार ने 19वीं शताब्दी के अंतिम चरण में लिखाई थी। जिनमें गुडगांवा, रोहतक, हिसार के इतिहास तारिखे-झज्जर और अमीर-कुलदीपिका काफी महत्वपूर्ण हैं। इसके अलावा पंजाब तथा हरियाणा सरकारों द्वारा जिलों के गजेटिर्यस कई परगनों तहसीलों की बंदोबस्त रिपोर्ट भी काफी महत्व की है।

पत्रिकाएंः आधुनिक शोधपत्र तथा पत्रिकाएं भी लाभप्रद सामग्री प्रदान करते हैं। इनमें हरियाणा शोध पत्रिका सबसे पुरानी पत्रिका है। यह एक वर्ष में तीन बार निकलती है। इसमें मध्य कालीन हरियाणा के इतिहास एवं संस्क ति पर काफी लेख हैं। यह पत्रिका रेवाड़ी से केवल एक वर्ष निकली बाद में भिन्न नाम से "जनरल आफ हरियाणा स्टडीज" के नाम से कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय से निकलने लगी इसमें काफी महत्वपूर्ण सामग्री मिलती है। इसके अलावा "कुरुक्षेत्र यूनिवर्सिटी रिसर्च जनरल" में भी हरियाणा के मध्यकालीन इतिहास से संबंधित सामग्री प्रकाशित होती रहती है। हरियाणा सरकार के भाषा विभाग द्वारा पहले दो पत्रिकाएं प्रकाशित होती थीं- सप्त सिंधु और जनसाहित्य। इनमें भी हमारे इतिहास की महत्वपूर्ण सामग्री मिलती है।

यद्यपि उपर्युक्त स्त्रोतों का सावधानीपूर्वक अध्ययन करके हम मध्यकालीन हरियाणा के इतिहास के छुपे हुए तथ्यों पर रोशनी डाल सकते हैं। लेकिन अभी भी मध्य कालीन इतिहास से संबंधित सामग्री इधर उधर, बिखरी पड़ी है। यह सामग्री विभिन्न भाषाओं में मिलती है जैसे- अरबी, फारसी, उर्दू, मराठी, हिंदी आदि। इसे एकत्रित करके और ठीक से जांच कर मध्य कालीन इतिहास की विषय वस्तु बनाया जा सकता है।

3. **आधुनिक हरियाणा के इतिहास के स्त्रोतः** आधुनिक हरियाणा के इतिहास से संबंधित स्त्रोतों को हम मुख्य रूप से दो भागों में बांट सकते हैं- (i) अप्रकाशित सामग्री, (ii) प्रकाशित सामग्री।

i. ***अप्रकाशित सामग्री***

अभिलेखागारीय सामग्रीः अभिलेखाभार वह जगह होती है जहां पर कि पुराने रिकार्ड और कागजात सुरक्षित रखे जाते हैं। हरियाणा के आधुनिक इतिहास से संबंधित कागजात हमें राष्ट्रीय अभिलेखागार दिल्ली, हरियाणा अभिलेखागार चंडीगढ़, पंजाब रिकार्ड रूम लाहौर इसके अलावा कुछ महत्वपूर्ण रिकार्ड कामनवेल्थ रिलेशंस आफिस लंदन में भी हैं।

राष्ट्रीय अभिलेखागार दिल्ली में हमें 1748 ई० के बाद के सरकारी कागजात मूलरूप में उपलब्ध हैं। इनको निम्नलिखित में विभाजित कर रखा है।

(i) Pre-Mutiny Record Series

(ii) Past Mutiny Record Series

(iii) Punjab State Record Series

इसके अलावा ग ह विभाग द्वारा महत्वपूर्ण खबरें यहां 72 जिल्दों में उपलब्ध है। जिनमें हरियाणा से संबंधित काफी सामग्री दी गई है।

हरियाणा राज्य अभिलेखागार में दिल्ली डिविजन रिकार्ड्स, हिसार डिविजन रिकार्ड्स, अंबाला डिविजन रिकार्ड्स के अलावा फारसी तथा उर्दू में रोहतक, हिसार, गुडगांव, करनाल तथा अंबाला जिलों के राजस्व न्याय तथा अन्य प्रशासनिक मामलों से संबंधित रिकार्ड उपलब्ध हैं। 'हकीकते हार रेह सुबा दिल्ली' जो हस्तलिखित है तथा छः जिलों में है ये हरियाणा के गांव से संबंधित मूल्यवान सामग्री है।

पंजाब रिकार्ड रूम लाहौर, हरियाणा के हर विभाग से संबंधित महत्वपूर्ण सामग्री उपलब्ध है। कामनवेल्थ रिलेशंस आफिस लंदन जिसे पहले इंडिया आफिस लाइब्रेरी कहा जाता था। इसमें हरियाणा की जागीरों से संबंधी, राजस्व संबंधी, न्याय संबंधी तथा शिक्षा तथा प्रेस संबंधी कागजात उपलब्ध हैं।

गैर अभिलेखागारीय सामग्रीः जिला रिकार्ड कार्यालयों तहसील रिकार्ड कार्यालयों में भी कुछ महत्वपूर्ण सामग्री सुरक्षित है। ये सामग्री अर्थात इतिहास से संबंधित है। इसमें राजस्व रिपोर्ट पटवारियों द्वारा तैयार किए गए गांव के सजरा, किस्तवार खतुनी तथा इस्तेमाल की रिपोर्ट, जमाबंदी तथा रोजनामचे आदि शामिल है।

ii. ***प्रकाशित सामग्री***

समाचार पत्र एवं पत्रिकाएंः हरियाणा में 19वीं सदी के अंतिम चरण में कुछ समाचार पत्र निकलने शुरू हुए इनमें "रिफाए आम" झज्जर से जिस पं० दीन दयालु ने निकाला "खैर संदेश" 1899 में अंबाला से प्रकाशित हुआ लेकिन दुर्भाग्य ये पूर्ण रूप से उपलब्ध नहीं है। 'जाट गजट' 1916 ई० में तथा 'हरियाणा तिलक' 1923 ई० में रोहतक से प्रकाशित हुए थे। दोनों अखबार साप्ताहिक थे। इनमें हरियाणा के इतिहास से संबंधित काफी महत्वपूर्ण सामग्री मिलती है। 'द ट्रिब्यून', 'सिविल एण्ड मिलिट्री गजट' में भी हरियाणा से संबंधित महत्वपूर्ण जानकारियां हैं।

पत्रिकाओं में दो पत्रिकाएं अधिक महत्वपूर्ण हैं ये 'हरियाणा शोध पत्रिक' और 'जनरल आफ हरियाणा स्टडीज' है। इनमें हरियाणा क्षेत्र के इतिहास से संबंधित काफी सामग्री मिलती है। तीन सरकारी पत्रिकाएं- 'हरियाणा जनरल आफ ऐजूकेशन', 'सप्त सिंधु' और 'जन साहित्य' से भी हरियाणा के आधुनिक इतिहास पर महत्वपूर्ण प्रकाश पड़ता है।

सरकारी रिपोर्ट- हरियाणा 1966 **ई० तक पंजाब राज्य का एक भाग था अतः सरकारी रिपोर्ट पंजाब सरकार द्वारा प्रकाशित है। इनमें पंजाब एण्ड मिनिस्ट्रेशन रिपोर्ट, सेसन रिपोर्ट, भूमि बंदोबस्त रिपोर्ट तथा पंजाब बोर्ड आफ इक्नोमिक इनक्वायरी में काफी गांवों का आर्थिक, सामाजिक सर्वेक्षण छपा है। इनके अतिरिक्त** Proceedings Govt. of India Home Public, Moral and Material Progress Report, Punjab Govt. Indian Famine Commission Report 1889, Famine Relief Commission Report 1899, Punjab Evidence 1899, 1919, Indian Industrial Report 1916-1918, Royal Commission Report 1928 **में हरियाणा के आर्थिक व सामाजिक इतिहास पर महत्वपूर्ण प्रकाश पड़ता है।**

अध्याय-2

हड़प्पा संस्क ति

(Harapan Civilization)

हरियाणा में हड़प्पा संस्क ति के कई महत्वपूर्ण स्थल है। इन स्थलों के उत्खननो व सर्वेक्षणों से पुरातत्ववेताओं ने पता लगाया है कि हड़प्पा लोग यहां c 2300 से 1700 B.C. के बीच में आकर बसे। इन स्थलों में सबसे महत्वपूर्ण, मीताथल, बनावली, राखीगढ़ी व बालु प्रमुख है।

मीताथल

मीताथल आधुनिक भिवानी जिले में पड़ता है। यहां का पुरास्थल गांव से 1.5 किलोमीटर पश्चिम में एक नहर के किनारे स्थित है। मिताथल पुरास्थल पर दो टीले है। ऊंचा और प्रमुख टीला पूर्व दिशा में तथा निम्न टिला पश्चिम दिशा में स्थित है। इन दोनों टीलों के बीच लगभग 20 मीटर का फासला है। प्रमुख टीले का क्षेत्रफल 150x130 मीटर है। इसकी ऊंचाई लगभग 5 मीटर है। दूसरा टीला नीचा है, इसका क्षेत्रफल 300x175 मीटर है तथा इसकी ऊंचाई 3 मीटर है। टीले के पूर्व में एक 200 मीटर का कटाव है जो प्राचीन समय में यहां नदी बहने का परिचायक है।

मीताथल का पुरास्थल उस वक्त प्रकाश में आया जब 1915-16 में गुप्त सिक्कों का एक संग्रह यहां प्राप्त हुआ। 1965 ई० में यहां तांबे के दो हारपून प्राप्त हुए। 1965 में इस टीले के पास से नहर खोदते समय 13 रिग मिले। बाद में पंजाब विश्वविद्यालय के डॉ० सूरजभान ने इस पुरास्थल का सर्वेक्षण करके इससे प्राप्त वस्तुओं के आधार पर इसका उत्खनन करने का निश्चय किया। अतः 1968 में पंजाब विश्वविद्यालय ने इस स्थल का उत्खनन प्रारंभ किया। खुदाई से एक योजनाबद्ध बस्ती प्रकाश में आई।

यह नगर योजना बद्ध तरीके से बसाया गया लगता है। चौपड़ की बिसात के नमूने की सड़कों (1.50 मी. से 3.10 मी. तक चौड़ी) और गलियों के दोनों और घर बने हुए थे, जिनके बनाने में कच्ची ईटों का प्रयोग होता था। यहां से मिली अधिकतर ईटें 10x20x30 से.मी. आकार की है। ऐसी ही ईटें कालीबगां (राजस्थान) से प्राप्त हुई है।

बनावली

बनावली का पुरास्थल फतेहाबाद जिले में है। यह टिला फतेहाबाद से 14 किलोमीटर उत्तर पश्चिम में स्थिल है। बनावली का पुरास्थल घघर के एक सहायक नाले के बहाव क्षेत्र में स्थित है। घघर को ऋगवैदिक सरस्वती के रूप में पहचाना गया है। जो कि अब सूख चुकी है तथा अब केवल बरसाती नाले के रूप में उसकी एक शाखा यहां पर है जिसे रगोंई नाला कहा जाता है। यह टीला $1^{1}/_{4}$ कि०मी० वर्गाकार क्षेत्र में फैला हुआ है। आसपास के धरातल से इसकी ऊंचाई लगभग 10 मीटर है। इस स्थान का उत्खनन हरियाणा पुरातत्व विभाग द्वारा 1974 में प्रारंभ किया गया था और बाद में कई सत्रों में किया जाता रहा।

खुदाई से हड़प्पा संस्कृति के बहुत सारे अवशेष प्राप्त हुए। खुदाई से पता चला की बनावली एक अच्छा खासा नगर था जो की एक सुनिश्चित योजना के तहत बसा हुआ था। नगर दो भागो में बंटा हुआ था। पश्चिमी भाग बड़ा और महत्वपूर्ण लगता है यहाँ सम्भवतः अधिकारी और बड़े लोग रहते होंगे। पूर्वी भाग जो कि साधारण सा है जहाँ सामान्य जन रहते होंगे।

नगर में काफी सड़कें है - इनमें से जो उत्तर से दक्षिण जाती हैं वे सीधी हैं पर पूर्व से पश्चिम जाने वाली तंग हैं। ऐसा सम्भवतः पश्चिम तेज हवाओं और दक्षिण पूर्व मानसून की वर्षा के प्रहारों से बचाव के लिए किया गया होगा। मकान बहुत बड़े हैं तो कुछ छोटे हैं जो कि सड़क के दोनों और बने हैं। जहाँ पानी का प्रयोग अधिक होता है वहाँ तो पक्की ईटों का प्रयोग हुआ

है पर शेष जगह कच्ची ईटें इस्तेमाल में लाई गई हैं। इन ईटों का आकार कई प्रकार का है जैसे 6x12x24 से.मी. तथा 12.5x25x50 से.मी. और 10x20x40 से.मी. तथा 11x22x44 से.मी.। यहां तक एक बात स्पष्ट है ईटों की बनावट में 1:2:4 का अनुपात मिलता है जो कि हड्प्पा संस्कृति की खास बात है।

राखीगढ़ी

पुरास्थल हिसार जिले की हाँसी तहसील में स्थित है। यह ऋगवैदिक द ष्यदाती नदी के बहाव स्थल में स्थित है। यह उत्तरी भारत में हड़प्पा का सबसे विस्त त पूरा स्थल है। यह स्थान हड़प्पा से 350 किलोमीटर दक्षिण पूर्व में काली बंगा से 190 किलोमीटर पूर्व में तथा बनावली से 80 किलोमीटर पूर्व में स्थित है। डॉ० फड़के के अनुसार इस स्थान की स्थिति और विशालता को देखते हुए यह हड़प्पन लोगों की पूर्ववर्ती राजधानी मालूम होती हे। आजकल इस स्थल की खुदाई भारतीय पुरातत्व विभाग द्वारा की जा रही है।

बालु

बालु गांव हरियाणा के जिला कैथल में, कैथल कस्बे से दक्षिण में लगभग 20 किलोमीटर की दूरी पर स्थित है। यहां का पुरास्थल बालु गांव से उत्तर में लगभग तीन किलोमीटर की दूरी पर स्थित है। सन् 1977 ई० में डॉ० सूरजभान तथा एक अमेरिकन पुरातत्ववेता डॉ० जिम जे० शैफर ने जब इस पुरास्थल को खोजा उस समय इसका क्षेत्रफल 210x180 मीटर था तथा इसकी ऊंचाई आसपास के खेतों से $4^1/_2$ मीटर थी। सर्वेक्षण के दौरान इस पुरास्थल से पूर्व हड़प्पा संस्क तियों के प्रमाण मिले। बाद में इसकी महता को आकंते हुए कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय के डॉ० उदयवीर सिंह और डॉ० सूरजभान ने 1779 ई० यहां उत्खनन कार्य आरंभ किया जो लगभग 15 सत्रों तक चलता रहा।

सामान्य विशेषताएं

हरियाणा के हड़प्पा से संबंधित सभी स्थानों की खुदाई के बाद निम्नलिखित सामान्य विशेषताएं पाई गई हैं।

नगर योजना

हरियाणा में हड़प्पा संस्क ति के लोगों द्वारा विकसित नगर का संपूर्ण क्षेत्र एक सुरक्षा दिवार से घिरा होता था। यह दिवार सामान्यतः 6 से 12 मीटर तक चौड़ी होती थी तथा इसकी औसतन ऊंचाई लगभग $4^1/_2$ मीटर होती थी। लेकिन इस सुरक्षा दिवार के अंदर एक विभाजक दिवार द्वारा संपूर्ण बस्ती को दो भागों में बांट दिया है। बीच की यह विभाजक दिवार उत्तर से दक्षिण की ओर बनी है। इस विभाजक दिवार की एक महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि इसके बीच में सकंरा खुला स्थान अथवा दरवाजा है जो संभवतः सुरक्षा दिवार के भीतर दो भागों में बसे हुए लोगों के बीच आपस में संपर्क व आने जाने के लिए बनाया गया है। इस सुरक्षा दिवार का निर्माण धूप में सुखाई गई कच्ची ईटों से किया गया है।

भवन निर्माण

इस काल के भवनों के निर्माण में धूप में सुखाई गई सूखी ईटों का प्रयोग किया गया है। मकानों के निर्माण में छोटी व बड़ी दोनों प्रकार की ईटों का प्रयोग किया गया है। छोटी ईटों का आकार 7 x 14 x 28 से०मी० से लेकर 8 x 16 x 32 से०मी० तक का है जबकि बड़ी ईटों का आकार 10 x 20 x 40 से०मी० तथा 11 x 22 x 44 से०मी० मिलता है।

घर कई-कई कमरों के बने हैं। बड़े घरों में 6 से लेकर आठ तक कमरे हैं जबकि छोटे घरों में 3 से लेकर पांच तक कमरे हैं। रसोईघर बड़े कमरे के साथ बनी होती थी जिसमें एक चूल्हा तथा भट्ठी तथा तन्दूर होते थे। चूल्हों के पास जमीन में संग्रह करने के लिए एक जार गड़ा होता था। प्रत्येक घर में एक शौचालय व स्नानग ह भी बना होता था। शौचालय में चौड़े मुंह का एक बड़ा म द् झण्ड रखा जाता था जिसे पानी संग्रह करने के लिए प्रयोग किया जाता था। घरों में फर्श को, गोबर तथा धान के छिलके, मिट्टी में डालकर लीप दिया जाता था। मकानों की छतें समतल होती थी जो लकड़ी के शहतीरों के ऊपर सरकंड बिछाकर उन पर मिट्टी डालकर बनी होती थी।

म द्माण्ड

इस काल के म द्माण्ड चाक पर बने है। इन्हें भली भांति पकाया गया हे। ये म द्माण्ड भली भांति गुथी हुई मिट्टी के बने हैं। सामान्यतः ये लाल रंग के है। चित्रित तथा अचित्रित सभी प्रकार के म द्माण्ड मिले हैं। म द्माण्ड ऊंची गर्दन वाले ग्लोबाकार मटके, रीम वाले मटके, थालीया, छिद्रम जार, बीकर।

औजार

हड़प्पन लोग तांबे तथा कांस्ये के बने औजारों का प्रयोग करते थे। इनमें तांबा तथा कांस्य के बने तीरों के अग्र भाग, ब्लेड, दरातियां, छैनी, कीले, भाले, मच्छी पकड़ने के कांटे, हरियाणा के सभी पुरास्थलों में प्राप्त हुए हैं।

आर्थिक स्थितिः हड्प्पन लोग व्यापारी तथा कृषक दोनों थे। व्यापारियों के विषय में तो हमें ज्यादा जानकारी नहीं पर कृषकों के विषय में कुछ ज्ञान प्राप्त है। जौ कृषक की प्रधान उपज७ होती थी। गेहूं, चावल व अन्य कई प्रकार के अन्न भी वे उगाते थे। कृषि के साथ-साथ कृषक पशुपालन भी करते थे सांड, गाय, भैंस, भेड़, बकरी, आदि के पालन का चलन था। कुत्ते, बिल्ली आदि भी पाले जाते थे। मुद्राकों पर कई प्रकार के पक्षियों के भी चित्र हैं।

प्रशिक्षा तथा लिपिः हड्प्पन लोग शिक्षा के प्रति दिलचस्पी रखते थे, ऐसा भी विद्वानों का ख्याल है। बनावली से मिले मुद्रक तथा अन्य कई वस्तुओं पर हडप्पन लिपि अंकित है। यह चित्र लिपि है। हंटर नामक विद्वान का मत है कि सिन्धु लोगों की लिपि चित्र प्रधान है और इसमें 400 वर्ण है। वर्ण तथा चित्रों को मिलाकर उनके यहां लेख लिखे जाते थे। परन्तु पूरी कोशिश के उपरान्त भी विद्वान अभी तक इसे पढ़ नहीं पाए हैं।

भोजन व खान-पान

हडप्पन लोगों का भोजन लगता है काफी सादा था। बनावली से जौ का एक बड़ा ढेर मिला है। इससे स्पष्ट है जौं यहाँ काफी प्रयोग होता था जौं खुश्क क्षेत्र की पैदावार है। जहाँ पानी की बहुलता थी वहां लोग गेूहँ तथा धान का भी भोजन में प्रयोग करते थे। दालें तथा सब्जियां भी उपयोग में लाई जाती थी। गाय, बकरी आदि का दूध प्रयुक्त किया जाता था। बनावली के घरों में हड्डियां भी मिली हैं। इससे स्पष्ट है कि ये लोग कभी-कभी मांस का प्रयोग भी करते थे।

आभूषण तथा वस्त्र

स्त्री व पुरुष दोनों ही आभूषणों का प्रयोग करते थे। आभूषणों में सोने व कीमती पत्थर के मनको का प्रयोग होता था। बनावली में तांबे का एक ऐसा मनका मिला है जिस पर सोने की कलई कर रखी थी। इसके अलावा खड़ीया मिट्टी के बने मनके भी प्राप्त हुए हैं। औरतें कांच, हाथी दांत तथा पकाई गई मिट्टी की चूड़ियां पहनती थी। वस्त्र आदि ऊनी तथा सूती दोनों ही प्रकार के होते थे। सुईयों के मिलने से पता चलता है कपड़े लपेटने की अपेक्षा सिलाई करके पहने जाते थे। संभवतः अधिक सर्दी से बचने के लिऐ जानवरों की खाल के वस्त्र भी प्रयोग में लाए जाते थे।

म णमूर्तियां तथा खिलौने

विभिन्न स्थलों से पक्की मिट्टी की बनी बैल, हिरण, कुत्ते, गैंडे, भैंस तथा पक्षियों की आक तियां मिली है। ये आक तियां भद्दी किस्म की है तथा हस्तनिर्मित है। यहां यह बात उल्लेखनीय हे कि हरियाणा के सभी स्थलों में कालीबंगा की तरह मात देवी की मूर्तियां नहीं मिली हैं जो हड़प्पा के अन्य पुरास्थलों से प्रचुरता में मिलती हैं। खिलौने पक्षी मिट्टी के बने हें। इनमें पहिये वाली गाड़ियां तथा दार्शनिक खिलौने प्रमुख हैं।

धार्मिक विश्वास

हड्प्पन लोगों में धार्मिक मान्यताओं का विकास काफी हद तक हो चुका था। वे ईश्वर की सत्ता तथा अनेक देवी-देवताओं में विश्वास रखते थे, ऐसा विद्वानों का मत है। पीपल आदि व क्ष तथा कई प्रकार के पशु भी पूज्य थे। बनावली से प्राप्त एक मुद्रांक पर एक विचित्र पशु का चित्र अंकित है। इसका धड़ शेर का तथा सींग बैल के हैं। यह जानवर भी पूज्य रहा होगा।

डॉ० फडके के अनुसार हरियाणा में हड़प्पा संस्क ति के लोगों द्वारा धूप में सुखाई गई ईटों का प्रयोग, शुद्ध तांबे का प्रयोग, नालियों तथा स्त्रियों की म णमूर्तियों का न मिलना इस बात की ओर इशारा करता है कि इस संस्क ति पर स्थानीय प्रभाव ज्यादा था और इस संस्क ति के लोग हरियाणा में राजस्थान से आकर बसे थे। क्योंकि हरियाणा की विशेषताएं कालीबंगा से काफी हद तक मेल खाती हैं।

अध्याय-3

वैदिक संस्कृति

(Vedic Civilization)

आर्य कबीले जब भारत आये तो वे सबसे पहले हरियाणा में ही बसे। ये लोग कहां से आये इस विषय पर विद्वानों में मतभेद आज भी जारी है। लेकिन ज्यादातर विद्वानों का मानना है कि आर्य लोग भारत में आने से पहले मध्य एशिया में बसते थे। अतः यह स्वाभाविक हे कि आर्य लोगों ने भारत आने से पहले कई प्रकार के भौगोलिक स्थल देखे होंगे। लेकिन जब वे हरियाणा की सरस्वती, द ष्यद्वाती व यमुना द्वारा सिंचित व हरी भरी भूमि में पहुंचे तो यहीं पर बस गए। इस प्रकार घुमंतु आर्य कबीलों का प्रथम निवास स्थान हरियाणा प्रदेश की बना। अब स्थाई रूप से यहां पर बस गए तथा खेती करने लगे और इस प्रकार हरियाणा से ही वैदिक सभ्यता का शुभ आरंभ हुआ। यहीं पर सरस्वती और द ष्यद्वाती नदियों के किनारों पर बैठकर उन्होंने वैदिक यज्ञों का विकास किया।

बी० बी० लाल जैसे कुछ विद्वान आर्य को (P.G.W.) चित्रित धुसर म द्माण्ड की सभ्यता से जोड़ते हैं। उनका कहना है कि इस प्रकार के म द्माण्डो का इस्तेमाल वैदिक आर्य ही करते थे जिनका मुख्य धंधा खेती था। चित्रित धुसर म द्माण्डो से संबंधित स्थल सारे हरियाणा में फैले पड़े हैं।

ऋग्वेद से हमें जानकारी मिलती है कि सरस्वती और द ष्टाद्वाती नदी के आसपास भरत नामक कबील का राज्य था। इसके कबीले का मुख्य राजा दिवोदास था जिसका संबंध त त्सुवंश से था। दिवोदास ने अपने राज्य को बढ़ाने के लिए पणी नामक लोगों से युद्ध किया था।

दियोदास का पुत्र सुदास एक शक्तिशाली राजा था। उसने दस राजाओं के संघ को यमुना नदी के किनारे पर हराया। इस प्रकार वह समस्त सप्त सिंधु प्रदेश का एक मात्र शासक बन गया। पुरु लोग जो सरस्वती की दूसरी तरफ राज्य करते ये भी भरतो से मिल गए और दोनों पुरु भरत कहलाए और इनके समय में वैदिक संस्क ति अपनी ऊंचाईयों तक पहुंच गई। कुछ समय कुरु नामक शक्तिशाली जन ने पुरुओं को यहां से खदेड़ दिया तथा अपना राज्य स्थापित कर लिया। कुरुओं ने सरस्वती और यमुना नदी की घाटियों के जंगलों को साफ किया तथा यहां हल से खेती आरंभ की। जैसा कि हमें वामन पुराण से पता चलता है। इस प्रकार वे आर्थिक रूप से सम द्ध हो गए तथा वैदिक सभ्यता का इनके समय में महत्वपूर्ण विकास हुआ।

महाभारत युद्ध की ऐतिहासिकता
(Historicity of the Battle of Mahabharata)

महाभारत प्राचीन भारतीय साहित्य का एक महत्वपूर्ण ग्रंथ है। यह एक महाकाव्य है। इस महाकाव्य में वर्णित घटनाओं के संबंध में विद्वानों में यह मतभेद है कि ये घटनाएं काल्पनिक है अथवा वास्तविक अर्थात बहुत से विद्वान महाभारत युद्ध की ऐतिहासिकता के बारे में संदेह करते हैं। महाभारत के संबंध में मिलने वाले साहित्यिक व पुरातात्विक प्रमाणों में परस्पर विरोधाभास होने के कारण इस प्रकार के मतभेद का होना स्वाभाविक है।

महाभारत महाकाव्य के प्रारंभ में ही एक ऐतिहासिक कविता है जिसका शीर्षक है 'जय' इसकी रचना महर्षि वेदव्यास ने की थी जो कि इस युद्ध के समकालीन था और उसने इस युद्ध को प्रत्यक्ष रूप से देखा था। महाभारत का यह युद्ध कौरवों और पाण्डवों के मध्य हुआ था। पूर्व वैदिक, साहित्य के कुछ राजाओं के नाम मिलते हैं जैसे, ययाति, नुहुस, पुरु, भरत देवाषि, शांतनु, धर्तराष्ट्र, विचित्रवीर्य आदि। पूर्व वैदिक साहित्य में वर्णित इन सभी राजाओं के नाम का उल्लेख महाभारत और पुराणों में कौरवों

और पाण्डवों के पूर्वजों के रूप में हुआ है। अर्थात कौरवों और पाण्डवों के पूर्वज पूर्व वैदिक काल में भी राज्य करते थे। इन राजाओं के अतिरिक्त महाभारत युद्ध में भाग लेने वाले देवकी पुत्र क ष्ण और शिखण्डी का भी महाभारत व पुराणों में उल्लेख मिलता है। यहां यह बात विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि महाभारत के प्रारंभिक भाग जय की रचना, महाभारत युद्ध की घटना के बहुत अधिक देर बाद नहीं हुई। बल्कि वेदों की रचना के तुरंत बाद ही इसकी रचना हुई। यही कारण है कि वेदों में महाभारत तथा युद्ध में भाग लेने वाले योद्धाओं का वेदों में उल्लेख नहीं हैं। इसीलिए जिस प्रकार वैदिक साहित्य का कोई भी विद्वान काल्पनिक नहीं मानता इसी प्रकार से ये पात्र भी काल्पनिक नहीं थे।

सूत्रकाल के दो प्रसिद्ध सूत्रकार शांखायन और आश्वलायन (800 से 600 B C) भी महाभारत युद्ध से भली भांति परिचित थे। शाखायन कुरुओं द्वार की गई उस त्रुटि का उल्लेख करते हैं जिसके कारण उन्हें बुरे दिन देखने पड़े। अश्वलायन को महाभारत युद्ध का ज्ञान होने का प्रमाण इस बात से मिलता है कि उसने व्यास के शिष्य व्यैवयायन का उल्लेख भरताचार्य के रूप में किया है।

पाणिनि (C - 500 B C) ने भी महाभारत युद्ध से संबंधित व्यक्तियों- वासुदेव, भीम, अर्जुन, भीष्म, युधिष्ठिर, कुंती तथा कुरुओं का उल्लेख करता है। पाणिनी ने वेदव्यास और उसके शिष्यों येल और व्यैश्वयायन से भी परिचित थे। कौटिल्य (C 400 B C) ने पाण्डवों के राज्य पर अनाधिकार रूप से अधिकार कर लेने के कारण दुर्योधन के विनाश का उल्लेख किया है। पातंजलि (C 200 B C) भी भीम, नकुल आदि का उल्लेख करते हैं। इस प्रकार महाभारत युद्ध की यह घटना लोगों को एक हजार साल तक याद रही।

पुराणों में जो पुराण (514-414 Century B C) में लिखे गए उनके महाभारत युद्ध को दो महान कालों में द्वापर और कलियुग के बीच एक विभाजक रेखा बताया गया है। इसके अतिरिक्त इन पुराणों में जहां वंशावालियां दी गई हैं, उस भाग में महाभारत युद्ध के बाद कौरवों की अगली पीढ़ी का उल्लेख नहीं है बल्कि भरत कुरु वंशावली से संबंधित पाण्डवों के तीसरे स्थान के पाण्डव अर्जुन के वंशजों का उल्लेख है। इस बात की पुष्टि बौद्ध साहित्य से भी होती है जिसमें धनंजय और युधिष्ठर परिवारों के राजाओं का उल्लेख है तथा विदुर जो कि पाण्डवों का पक्षपाती था का भी उल्लेख करता है।

चीनी यात्री ह्वेन सांग जो कि हर्ष के राज्यकाल 634 ई० में कुरुक्षेत्र आया था ने भी महाभारत युद्ध की घटना का उल्लेख किया है। वह कुरुक्षेत्र को धर्मक्षेत्र बतलाता है। इसके अनुसार यहां प्राचीन समय में दो पक्षों की सेनाओं, कौरवों और पाण्डवों में भंयकर युद्ध हुआ जिसके परिणामस्वरूप संपूर्ण क्षेत्र हड्डियों से भर गया, जिन्हें आज भी देखा जा सकता है। पुराणों में भी अस्थीपुर यानि हड्डियों के शहर का उल्लेख मिलता है। कनिघंम ने इस अस्थीपुर को वह स्थान बताया है जहां पर महाभारत युद्ध में मरने वालों का दाह संस्कार किया गया था। संभवतः ह्वेन सांग ने इस स्थान की यात्रा की थी और यहां पर उसको हड्डियां ही हड्डियां दिखाई दी थी। स्थानीय परंपरा के अनुसार यह स्थान थानेसर के पश्चिम में स्थित है।

पुरातात्विक प्रमाण से अप्रत्यक्ष रूप से महाभारत युद्ध को प्रमाणित करते हैं। महाभारत में वर्णित अनेक स्थानों जैसे हस्तिनापुर, बरनावा, बैराट (विराट नगर), पानीपत (पाणिप्रस्थ), सोनीपत (सोणप्रस्थ), इंद्रपत (इंद्रप्रस्थ), बागपत (व कप्रस्थ), तिलपत (तिलप्रस्थ) और कुरुक्षेत्र से एक जैसे पुरातात्विक प्रमाण मिले है। अर्थात इन सभी स्थानों पर P.G.W. अर्थात Pointed Gray Ware मिली है। और इनकी प्राचीनतम तिथि इन पुरास्थलों पर लगभग 1000 या 1100 B C है। हस्तिनापुर से घोड़े की अस्थियां भी मिली हैं।

इन सबके अतिरिक्त पुराणों में वर्णित महाभारत काल से संबंधित एक अन्य घटना की पुष्टि भी पुरातात्विक साक्ष्यों से होती है। पुराणों में यह उल्लेख मिलता है कि जब हस्तिनापुर गंगा की बाढ़ में बह गया था तो राजा निचक्षु ने हस्तिनापुर से अपनी राजधानी कौशाम्बी में स्थापित कर ली थी। पुरातात्विक प्रमाणों से इस घटना की पुष्टि हो जाती है। उत्खननो से हस्तिनापुर के P.G.W. काल के बाद बाढ़ द्वारा हस्तिनापुर की बस्ती के बह जाने के प्रमाण मिले हैं। तथा जब कौशाम्बी का उत्खनन किया गया तो वहां की P.G.W. हस्तिनापुर की P.G.W. के बाद की पाई गई। इस प्रकार बाढ़ के कारण हस्तिनापुर से कुरु वंश की राजधानी कौशाम्बी में स्थानांतरण साहित्यिक और पुरातात्विक दोनों प्रकार के प्रमाणों से प्रभावित होता है।

जो विद्वान महाभारत युद्ध की ऐतिहासिकता में संदेह करते हैं उनका एक तर्क यह भी है कि महाभारत युद्ध में लोहे के हथियारों

के प्रयोग के संबंध में पुरातात्विक उत्खननो में कोई प्रमाण नहीं मिले हैं। जिसके कारण महाभारत युद्ध की ऐतिहासिकता में संदेह होता है। आगे ये विद्वान यह भी तर्क देते हैं कि यदि युद्ध हुआ भी है तो वह लघु पाषाण उपकरणों तथा लाठियों, बांसो आदि से लड़ा गया है। लेकिन जहां तक महाभारत काल में अथवा P.G.W. काल में लोहे की तकनीक का संबंध है, हमें लोहे की प्राचीनतम तिथी कार्बन-14 विधि लगभग 1100 B C अतरजी खेड़ा से प्राप्त है। हल्लुर (कर्नाटक) से 1100 - 1000 B C तथा नोह राजस्थान से 900 - 800 B C प्राप्त हुई है।

दूसरी तरफ यह कहना कि महाभारत काल के योद्धा प्रस्तर उपकरणों, लाठियों और धनुष बाणों से लड़ते थे। इसलिए व मध्य पाषाण काल से संबंध रखते थे। यह सुझाव असंगत है क्योंकि प्रस्तर उपकरणों का प्रयोग लोहे के साथ-साथ उत्तर ऐतिहासिक काल में भी होता रहा है। और उनके अवशेष उत्खननों में सभी ऐतिहासिक स्थलों से मिलते हैं। जहां तक P.G.W. पुरास्थलों का बड़े स्तर पर उत्खनन नहीं हुआ है। दूसरा कारण यह भी हो सकता है कि लोहे की वस्तुएं मौसम के प्रभावों से नष्ट हो गई हो। इसलिए वे अब तक खुदाईयों में न मिली हों।

श्यामायस यानि लोहे का उल्लेख यजुर्वेद में मिलता है। अन्य उत्तर वैदिक ग्रंथों में भी इसका उल्लेख हुआ है। तेज दौड़ने वाले रथो के साथ-साथ संभवतः लोहे के प्रयोग ने ही आर्यो को उत्तर हड़प्पन बस्तियों में विजय प्राप्त करने में मदद की। आर्यो और यहां के स्वदेशी के परस्पर मिलने का उल्लेख अनेक वैदिक मंत्रों में हुआ है इसकी पुष्टि पुरात्तविक साक्ष्यों के आधार भी हो जाती है। कुरुक्षेत्र जिले में सरस्वती नदी के किनारे भगवान पुरा के उत्खननों में आर्यो के P.G.W. और उत्तर हड़प्पन लोगों की सांस्क तिक सामग्री साथ-साथ पाई गई है। इसके अतिरिक्त आर्यो की बेहतरीन तकनीकी दक्षता और उसके शस्त्रों की जानकारी वैदिक साहित्य में वर्णित शब्दों- तलवार, कवच, धनुष, तीर, वल्लभ, पैदल सेना, रथ योद्धा, सेनानी आदि से होती है। इस प्रकार महाभारत काल से संबंधित P.G.W. के साथ लोहे की तकनीक का प्रमाण हमें पुरातात्विक आधार पर तथा साहित्यिक आधार पर भी स्पष्ट रूप से ज्ञात होता है। अतः इस युद्ध में लोहे के प्रयोग को नकारा नहीं जा सकता। इसमें कोई संदेह नहीं कि महाभारत काव्य में युद्ध का वर्णन बढ़ा चढ़ा कर किया गया है लेकिन घटना की ऐतिहासिकता को नकारना न्याय संगत नहीं है।

महाभारत युद्ध की ऐतिहासिकता पर संदेह वाले लोगों का कहना है कि युद्ध की प्रामाणिकता सिद्ध करने के लिए समकालीन साहित्यिक और पुरातात्विक प्रमाण नहीं मिलते। इसके पश्चात वे पौराणिक परंपराओं पर भी विश्वास नहीं करते तथा महाभारत काव्य में वे समय समय पर क्षेपक जोड़ते रहने की बात कहते हैं। इस संबंध में सच्चाई यह है कि प्राचीन भारतीय इतिहास के निर्माण में हमारे पूर्वजों में प्रबल ऐतिहासिक प्रेरणा नहीं थी इसलिए उन्होंने प्राचीन ग्रीक वासियों की तरह घटनाओं का उल्लेख नहीं किया है। इस संबंध में यहां दो बातें उल्लेखनीय है- पहली बात यह है कि वैदिक साहित्य बड़ा विशाल है और पूर्ण रूप से इसे प्राप्त नहीं किया जा सका है। दूसरी बात यह है महाभारत युद्ध की घटना ऋग्वेद की रचना के बाद घटी थी, इसलिए ऋग्वेद में इसका वर्णन कैसे संभव हो सकता था। एक अन्य बात यह भी है कि वेदों के संकलन कर्ता व्यास जी महाभारत के प्रथम संस्करण 'जय' भाग के भी लेखक है। अतः संभव है कि इस युद्ध का उल्लेख उन्होंने केवल महाभारत में ही किया हो तथा वेदों में इसका उल्लेख इसलिए नहीं किया होगा कि कहीं घटना की पुनरावर्ती न हो जाए। इसके अतिरिक्त यह भी उल्लेखनीय है कि वैदिक साहित्य एक भिन्न प्रकार की रचना है जिसमें धार्मिक तत्वों की प्रधानता है। एफ० ई० पार्जीटर ने इस संबंध में ठीक ही कहा है कि महाभारत युद्ध पूर्ण रूप से राजनीतिक संघर्ष था, उसका कोई धार्मिक महत्व नहीं था। अतः यही कारण है कि वैदिक साहित्य में इसका उल्लेख नहीं मिलता।

यह बात भी पूर्ण रूप से सही है कि, महाभारत महाकाव्य में समय-समय पर क्षेपक जुड़ते रहे हैं। इस तथ्य कि पुष्टि पारसिको, अभीरों तथा हुणों के महाभारत में पाए गए उल्लेखों से मिलती है। यह बात भी सही है कि पुरातात्विक उत्खननो के द्वारा भी महाभारत युद्ध से संबंधित कोई ठोस प्रमाण नहीं मिलते। लेकिन घटना की ऐतिहासिकता पर यह कहकर इनकार करना कि उस समय बड़े राज्य नहीं थे और इसलिए यह युद्ध द्वंद्व युद्ध की एक श्रंखला अथवा पारिवारिक झगड़े से अधिक कुछ न था। ब्राह्मण, बौद्ध और जैन साहित्य तथा महाभारत और पुराणों से यह ज्ञात होता है कि 7वीं सदी ईसा पूर्व कई बड़े-बड़े राज्य थे और उनमें कुछ तो इतने प्राचीन थे जितना की ऋग्वेद। यदि यह युद्ध एक साधारण किस्म का पारिवारिक झगड़ा था तो प्रश्न यह उठता है कि फिर इस युद्ध ने संपूर्ण भारत में इतनी ख्याति प्राप्त कैसे कर ली। और आज भी संपूर्ण कुरुक्षेत्र के आसपास का इलाका महाभारत से संबंधित अनेक तीर्थो से क्यों भरा हुआ है?

यद्यपि महाभारत युद्ध के संबंध में पुरातात्विक प्रमाण ठोस नहीं है तथा प्रत्यक्ष रूप से युद्ध से संबंधित पुरास्थलों की खोज भी नहीं की जा सकी है। अतः अंतिम निर्णय पर नहीं पहुंचा जा सकता। लेकिन तथ्यों की अनुपस्थिति में महाभारत युद्ध की ऐतिहासिकता पर संदेह करना न्याय संगत नहीं है क्योंकि यह निरंतर 2000 वर्षो चली आ रही साहित्यिक परपंरा पर आधारित है। यदि साहित्यिक प्रमाण को अमान्य कर दिया जाए तो फिर क्या शेष रह जाएगा।

महाभारत युद्ध की तिथि का प्रश्न भी एक विवादास्पद विषय है। पाणिनि जो की 5वीं सदी ईसा पूर्व या इससे भी पहले हुए वह महाभारत युद्ध के योद्धाओं अर्जुन, युधिष्ठर, कर्ण आदि से परिचित थे। इससे हमें ज्ञात होता है कि महाभारत युद्ध पाणिनि के समय से तो निश्चित ही पहले हुआ, लेकिन कितना पहले? जो विद्वान महाभारत युद्ध की ऐतिहासिकता में विश्वास रखते हैं उनमें भी इस युद्ध की तिथि के बारे में बड़ा मतभेद है। कुछ विद्वानों ने तिथियां इस प्रकार सुझाई हैं-

बी० बी० लाल ने महाभारत युद्ध की तिथि 836 ई० पू० बताई है। एफ० ई० पार्जीटर इस घटना को 956 ई० पू० की बताते हैं। इसी प्रकार एच० सी० रामचौधरी 900 ई० पू०, बाल गंगाधर तिलक 1400 ई० पू०, ए० कनिघंमव 1424 ई० पू०, मैक्समूलर 422 ई० पू०, डी० आर० भण्डारकर 3201 ई० पू० तथा सी० वी० वैद्य 3102 ईसा पूर्व बतलाते हैं।

पुरातात्विक उत्खननों से ज्ञात हुआ है कि आर्य लोग कुरुक्षेत्र के पास भगवानपुरा में 1500 ई० पू० के आसपास आकर बसे। अतः भगवानपुरा से मिले इस प्रमाण के आधार पर इतना अवश्य कहा जा सकता है कि महाभारत युद्ध 1500 ई० पू० के बाद ही हुआ, पहले नहीं। इसके अतिरिक्त ऋग्वेद जो की 1000 ई० पू० की रचना मानी जाती है मे महाभारत युद्ध का कोई उल्लेख नहीं है बल्कि उसमें महाभारत युद्ध में लड़ने वाले योद्धाओं के पूर्वजों के नाम का उल्लेख अवश्य है इससे सिद्ध होता है कि महाभारत का युद्ध ऋग्वेद की रचना की तिथि 1000 ई० पू० के बाद ही हुआ। इस प्रकार यह युद्ध ऋग्वेद और पाणिनी काल के बीच के काल में हुआ। अतः इस संबंध में सत्यता के अधिक नजदीक मत बी० बी० लाल, एफ० ई० पार्जीटर और रामचौधरी का प्रतीत होता है।

अध्याय-4

यौधेय

(Republic to Empire)

मौर्य साम्राज्य के पतन के बाद हरियाणा प्रदेश में गणतंत्र शासन प्रणाली की स्थापना हुई। गणतंत्रात्मक शासन स्थापित करने वाली शक्तियों में यौधेयों का प्रमुख स्थान है। महाभारत अष्टाध्यायी तथा अर्थशास्त्र से ज्ञात होता है कि कि यौधेयों की शासन प्रणाली गणतंत्रात्मक थी। यौधेयो के भरतपुर अभिलेख से भी ज्ञात होता है कि ये लोग अपने शासक का चुनाव करते थे। इसमें महाराजा, महा सेनापति आदि उपाधियों का भी उल्लेख है। अग्रोहा से प्राप्त लेख के अनुसार यौधेयों की शासन प्रणाली गणतंत्रात्मक थी जिसका कार्य विभिन्न प्रशासनिक अधिकारी चलाते थे। यौधेयों के सिक्कों पर गण शब्द का पाया जाना भी इस बात का प्रमाण है।

यौधेय कौन थे। इस संबंध में विद्वानों में मतभेद है। अधिकतर विद्वान मानते हैं कि यौधेय शब्द की उत्पति योद्धा से हुई है। जिसका अर्थ वीर अथवा लड़ाकू जाति से है। पाणिनी ने अपनी पुस्तक अष्टाध्यायी में इस गण के लिए 'आयुधजीवी' शब्द का प्रयोग किया है। जिसका अर्थ है शस्त्रों पर निर्वाह करने वाले लोग। महाभारत में यौधेयों का संबंध युधिष्ठर से बताया गया हे। शक शाशक रुद्रदमन के जुनागढ़ अभिलेख 1505 ई० से पता चलता है कि उस समय में यौधेय गण की गणना प्रमुख वीर क्षेत्रियों में की जाती थी। इन साहित्यिक व अभिलेखीय प्रमाणों के आधार पर हम कह सकते हैं कि यौधेय लोग मूल रूप से लड़ाकू थे इसलिए इन्हें यौधेय कहा गया।

यौधेय इस क्षेत्र में काफी लंबे समय तक राजनीतिक रूप से सक्रिय रहे। इस बात का प्रमाण हमें यौधेयों के सिक्कों से मिलता हे। यौधेयों के प्रारंभिक सिक्के तीसरी व दूसरी शताब्दी ईसा पूर्व के हैं जबकि अंतिम काल के सिक्के तीसरी व चौथी शताब्दी के हैं। ये सिक्के काफी विस्त त क्षेत्र में मिलते है। इसलिए हम कह सकते हैं कि यौधेय गण का राज्य काफी विस्त त क्षेत्र में फैला हुआ था। यद्यपि इनके राज्य की सीमाएं समय-समय पर घटती बढ़ती रही हैं परंतु मुख्य रूप से इनका राज्य उत्तर पश्चिमी भारत तक में स्थित था। डी० सी० सरकार के मतानुसार यौधेय राज्य सतलुज नदी के किनारे स्थित बहावलपुर और भरतपुर के बयाना प्रदेश सम्मलित थे। सरकार के अनुसार ये लोग महाभारत में उल्लिखित रोहतक क्षेत्र में भी रहे। ए० एस० अल्तेकर के अनुसार रोहतक यौधेयों की राजधानी थी। अल्तेकर महोदय का मानना है कि यौधेयों का क्षेत्र दो भागों में विभक्त था- मत्स्य क्षेत्र यानी ऊपरी राजपूताना तथा पांचाल क्षेत्र अर्थात बहुधान्य क्षेत्र। इनके सिक्कों पर भी यौधेनाम् बहुधान्यक लिखा हुआ है। कुछ विद्वानों ने इनका साम्राज्य विस्तार सतलुज व यमुना नदियों के बीच में बताया है। यौधेय गण के सिक्के मुख्यतः कांगड़ा, हिमाचल प्रदेश, सुनेत (पंजाब), रोहतक, सोनीपत, नौरंगाबाद, भिवानी, सिरसा, हासी, हिसार असन्ध जयजयवन्ती, रिवाड़ी (हरियाणा), देहरादून, चक्रोता, सहारनपुर, गढ़वाल क्षेत्र और अजमेर, राजस्थान से मिले हैं। इस प्रकार साहित्यिक प्रमाणों और सिक्कों की प्राप्ति के आधार पर हम कह सकते हैं कि यौधेयों का राज्य सतलुज एवं यमुना नदी के दोनों किनारों पश्चिमी पाकिस्तान, लाहौर तथा बहावलपुर के आसपास पंजाब, दक्षिणी हिमाचल प्रदेश, उत्तर पश्चिमी उत्तर प्रदेश, हरियाणा तथा उत्तर दक्षिणी राजस्थान के विस्त त क्षेत्र में फैला हआ था।

यौधेयों का जिक्र महाभारत, पाणिनी के अष्टाध्यायी, रुद्रदमन के शिलालेख समुद्रगुप्त के इलाहाबाद स्तंभलेख तथा बौद्ध ग्रंथों सभी में मिलता है। यह जब इस बात का प्रमाण है कि यौधेयो ने 300 से 400 वर्षो तक शासन किया। इतनी लंबी अवधि में यौधेयों का संपर्क आने वाले विदेशी आक्रमणकारियों तथा स्थानीय शासकों के साथ हुआ। लेकिन अपनी शक्ति के बल पर इन्होंने इसका समय-समय पर मुकाबला किया तथा उन पर विजय प्राप्त की। लेकिन कई बार पराजय का मुंह भी देखना

पड़ा। मोर्य साम्राज्य के पतन के पश्चात उत्तर पश्चिम से जो आक्रमणकारी आए उनमें कुषाण प्रमुख थे। यौधेयों ने कुषाणों का मुकाबला किया लेकिन वे पराजित हुए। इस बात की पुष्टि कुषाणों के सिक्कों की इस क्षेत्र में पाए जाने से हुई है। यौधेयों के कुछ सिक्कों पर "यौधेय गणस्य जय" लेख के साथ द्विवार्ग शब्द का प्रयोग हुआ है। इनसे ए० एस० अल्तेकर ने यह अनुमान लगाया है कि यौधेचों ने कुषाणों के विरुद्ध एक संघ बनाया। जिसमें कुणीन्द व अर्जुनायन नामक पड़ोसी गणों को सम्मलित करके कुषाणों को पराजित किया। यौधेयों द्वारा कुषाणों की पराजय का प्रमाण उन सिक्कों की प्राप्ति से होता है जिनको कुषाण शासकों वासुदेव व हुविष्क ने चलाया लेकिन यौधेयों द्वारा कुषाण शासक को पराजित कर देने के पश्चात यौधेयों ने इन सिक्कों पर अपना ठप्पा लगाकर पुनः प्रसारित कर दिया। इस प्रकार के सिक्के हरियाणा के सोनीपत, आवर्ली, लोवा माजरा, खरखोदा बालन्द (जिला रोहतक) हार्सी (जिला हिसार) सिरसा तथा अन्य स्थानों से मिले हैं। ये सभी इस बात का पुख्ता प्रमाण हैं कि यौधेयों ने कुषाणों को इस प्रदेश से खदेड़ कर अपना राज्य पुनः स्थापित किया।

यौघेयों का पतन कैसे हुआ इस बात के हमारे पास कोई स्पष्ट प्रमाण नहीं है। महाक्षत्रय रुद्रदमन प्रथम ने यौधेयों को हराया था इस बात का उल्लेख उसके जूनागढ़ शिलालेख से मिलता है। समुंद्र गुप्त के इलाहाबाद अभिलेख में हमें जानकारी मिलती है कि समुंद्र गुप्त ने यौधेयों को पराजित किया। इस प्रकार वे अपना स्वतंत्र अस्तित्व खो बैठे तथा उनके राज्य का गुप्त साम्राज्य में विलय हो गया।

अग्र गणराज्य

मोर्यो के पतन के पश्चात, हरियाणा के अग्रोहा क्षेत्र में अग्र गणराज्य के लोगों ने अपना स्वतंत्र राज्य स्थापित किया। इस गणराज्य के बारे में जानकारी कुछ सिक्कों के माध्यम से हुई। सर्वप्रथम अग्रो के 10 तांबे के सिक्के मिले जिनमें से 9 सिक्के रोजर्स के बरवाला से मिले। तथा एक सिक्का जो आजकल भारतीय संग्रहालय में है उसका ठीक से पता नहीं है कि वह किस स्थान से प्राप्त हुआ था। रोजर्स को पाये गए नौ सिक्कों को ब्रिटिश संग्रहालय में रखा है। सन् 1938-39 में एच० एल० श्रीवास्तव ने अग्रोहा पुरास्थल उत्खनन किया था। जहां पर उसे एक म द्माण्ड में रखे अग्रो के 51 तांबे के सिक्के मिले।

सिक्कों के अतिरिक्त, अग्रों का उल्लेख प्राचीन भारतीय साहित्य में भी मिलता है। अग्र गणराज्य का प्राचीनतम उल्लेख 5वीं सदी ईसा पूर्व की पुस्तक पाणिनी की अष्टाध्यायी में मिलता है। इससे स्पष्ट है कि पांचवीं शताब्दी ईसा पूर्व में यह गण विद्यमान था। बौधायन के श्रोत सूत्र तथा पाताजली के महाभाष्य में भी इस गण का उल्लेख हुआ है। महाभारत में अन्य गणराज्यों के साथ अग्रगण का उल्लेख मिलता है। कई बौद्ध ग्रंथों में भी इस गण का उल्लेख प्रचूरता में मिलता है।

सिकंदर द्वारा भारत पर आक्रमण के समय अग्रगण एक शक्तिशाली गण था। सिकंदर का इस गण के साथ युद्ध हुआ था। सिकंदर के इतिहासकार अग्गल सोई कहते हैं कि सिकंदर के साथ हुए युद्ध के समय अग्र गण की सेना में 4000 पैदल तथा 3000 घुड़सवार थे। ये सिकंदर की सेना से बहादुरी से लड़े तथा सिंकदर के अनेक सैनिकों को मौत के घाट उतार दिया।

सिक्कों के अग्रों के लिए अग्रेय अग्ग आदि शब्दों का प्रयोग किया गया है। बौद्ध ग्रंथ "महामातुरी" में इसका प्राक त भाषा में 'अगोदक' नाम मिलता है। कुछ स्थानों पर अग्रत्य व अगाच शब्दों का भी इसके लिए प्रयोग हुआ है। जिसका अर्थ है 'अग्रप्रदेश' के रहने वाले लोग। ऐसा प्रतीत होता है कि अग्र गण के नाम के आधार पर इस क्षेत्र का नाम अग्र ही था। लेकिन बाद में जनपद बन जाने के कारण 'अग्रत्यजनपद' कहलाया तथा सिक्कों पर प्राक त में 'अगाच जनपद' अंकित किया गया।

अग्र गण का मुख्य नगर अथवा राजधानी अग्रोदक था तथा यहां संभवतः इस गण के सिक्के भी ढाले जाते थे। इतिहासकार अग्रोदक की पहचान आधुनिक अग्रोहा गांव से करते हैं। यहां से उग्र गण के सिक्के भी मिले हैं। यहां पर प्राचीन टीले भी हैं, ये टीले 141 एकड़ भूमि क्षेत्र में फैले हुए हैं। एक परंपरा के अनुसार राजा अग्रसेन, जो कि अग्रवाल जाति के आदि पुरुष माने जाते है ने अग्रोहा बसाया तथा उस पर शासन किया। लेकिन कुछ इतिहासकार ये मानते हैं कि अग्रोहा संस्क त नाम अग्रोदक का अपभ्रंश है। यह अग्रोदक प्राचीन काल में तक्षशीला के मथुरा को जाने वाले व्यापारिक मार्ग पर स्थित था। पुरातात्विक साक्ष्यों के आधार पर अग्रोहा की स्थापना चौथी शताब्दी ईसा पूर्व में हुई थी।

साक्ष्यों से ज्ञात होता है कि पांचवीं शताब्दी ईसा पूर्व में अग्र गण हरियाणा में अग्रोहा में विद्यमान था। सिकंदर के आक्रमण के पश्चात ये मौर्यो के अधीन हो गए। मोर्यो के पतन के पश्चात यद्यपि स्वतंत्र राज्यों का दौर शुरू हुआ लेकिन कुषाणों के

आक्रमण ने इनकी स्थिति खराब कर दी। संभवतः कुषाण शासक वासुदेव के समय में अन्य गणराज्यों के साथ मिलकर कुषाणों को हराकर अग्रो ने अपना स्वतंत्र रूप हासिल किया। लेकिन इसके बाद अग्रो का विलय यौधेयों में हो गया।

कुणिन्द गण

मौर्य साम्राज्य के बाद उभरने वाले गण राज्यों में कणिन्द भी एक महत्वपूर्ण गणराज्य था। इस गण के अस्तित्व का पता हमें कुणिन्दों सिक्कों की प्राप्ति से चलता है। कुणिन्द सिक्के हरियाणा के नारायणगढ़, सदौरा, छोटी करोड़ी, बड़ी करोड़ी, मदलपुर तथा करनाल से प्राप्त हुए हैं। ये सिक्के इस बात का प्रमाण हैं कि हरियाणा का केवल छोटा सा क्षेत्र अंबाला जिले का कुछ ऊपरी भाग ही इस गण राज्य के अंतर्गत आता था। सिक्कों के अतिरिक्त प्राचीन भारतीय साहित्य में इस गणराज्य का उल्लेख मिलता है। पाणिनी के अष्टाध्यायी, पुराण तथा वराहमिहर ने अपनी पुस्तक व हतसंहिता में इस गणराज्य का उल्लेख मिलता है। ग्रीक विद्वान टालेमी ने भी इस गण राज्य का उल्लेख किया है।

कुषाणों के विरुद्ध इस गण ने यौधेयों के साथ मिलकर संघर्ष किया था। बाद में इसने यौधेय गण के साथ विलय कर लिया। डॉ० अल्तेकर का विचार है कि यौधेय गण के सिक्कों पर जो द्वि शब्द अंकित है वह इन दो गणों के मिलने को ही दर्शाता है।

पुष्पभूतियों का उदय

पांचवीं सदी के उतरार्द्ध में गुप्त साम्राज्य का पतन हो गया। गुप्त साम्राज्य के खण्डहरों पर अनेक छोटे-छोटे राज्यों का उदय हुआ तथा कई महत्वाकांक्षी सरदार व सामंत स्वतंत्र हो गए। इसी समय हरियाणा क्षेत्र जिसे श्रीकंठ जनपद कहा जाता था ये स्थाणी स्वर के आसपास के भूभाग पर पुष्पभूति नामक एक सामंत सरदार ने अधिकार करके स्वतंत्र सत्ता की घोषणा कर दी।

बाणभट्ट ने अपने ग्रंथ 'हर्षचरित' में हर्ष के प्रथम पूर्वज का नाम पुष्पभूति बताया है। हर्ष के पूर्वजों की राजधानी स्थाणी स्वर अथवा थानेश्वर थी। पुष्पभूति की तिथि के बारे में कुछ निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता। हर्ष चरित में उसे केवल राजा और भू पाल कहा गया है। जो उसके सामंत पद का द्योतक है। हर्षवर्धन के अभिलेखों में उसकी कोई चर्चा नहीं है। उनमें नरवर्धन के अभिलेखों में उसकी कोई चर्चा नहीं है। उनमें नरवर्धन को ही सबसे पहला शासक कहा गया है। किंतु न तो यह ज्ञात है कि पुष्पभूति से नरवर्धन का क्या संबंध था न ही यह इसके बाद किस पीढ़ी में वह हुआ।

हर्ष के बांस खेड़ा तामपत्र लेख से ज्ञात होता है कि महाराजा नर वर्धन की रानी वज्रिणी देवी से राज्यवर्धन प्रथम पैदा हुआ। महाराजा राज्यवर्धन की रानी अप्सरो देवी से आदित्यवर्धन जन्मा। महाराजा आदित्यवर्धन ने किसी गुप्त वंशी राजकुमारी महासेन गुप्ता से विवाह किया जिससे प्रभाकर वर्धन पैदा हुआ। प्रभाकर वर्धन की रानी यशोमती से राज्यवर्धन, हर्षवर्धन और राज्य श्री नामक तीन संताने हुई। इस बात की पुष्टि नालंदा मुद्धालेख से भी होता है।

प्रभाकरवर्धन

प्रारंभिक तीन राजाओं के साथ लगी 'महाराजा' की उपाधि से ज्ञात होता है कि संभवतः ये तीनों शासक सामंत शासक थे। अतः इस वंश का प्रथम स्वतंत्र शासक प्रभाकरवर्धन ही था। ऐसा उसकी उपाधियों 'परमभट्टारक' तथा 'महाराजाधिराज' से ज्ञात होता है। बाण ने अपनी अलंकारिक भाषा में उसे हुण रूपी हिरणों के लिए सिंह के समान, सिंधु देश के राजा के लिए ज्वर स्वरूप, गुर्जरों की नींद हरण करने वाला, गांधार के राजा रूपी, सुगंधीराज के लिए महान हस्ति ज्वरभाटे की पटुता को नष्ट करने वाला, और मालवा के राज्य की लक्ष्मी रूपी लता के लिए कुल्हाड़ी के समान बताया है। लेकिन इस बात के स्पष्ट प्रमाण नहीं मिलते की प्रभाकरवर्धन ने इनको विजय किया था।

प्रभाकरवर्धन ने अपनी पुत्री राज्य श्री का विवाह कन्नौज के मौखरी वंश के राजा ग ह वर्मा से कर दिया। इससे मालवा के शासक जो कन्नौज से दुश्मनी रखते थे श्रीकंठ राज्य के भी शत्रु बन गए। प्रभाकरवर्धन ने मालवा पर आक्रमण कर दिया और वहां के शासक को पराजित किया। 604 ई० में प्रभाकरवर्धन ने अपने पुत्र राज्यवर्धन को हुणो को दबाने के लिए भेजा। जब राज्य वर्धन हुणो का दमन करके वापस लौटा तो प्रभाकरवर्धन की म त्यु हो चुकी थी।

राज्यवर्धन

जब राज्यवर्धन हुणो को दबाने गया हुआ था तो पीछे से उसके पिता प्रभाकरवर्धन की म त्यु हो गई तथा उसकी माता यशोमती भी सती हो गई। जब राज्यवर्धन वापस लौटा तो वह बड़ा दुखी हुआ। उसने राज गद्दी पर न बैठने का फैसला किया। लेकिन हर्ष तथा दरबारियों के कहने पर उसने राज गद्दी संभाल ली। गद्दी पर बैठते ही उसे समाचार मिला कि मालवा के शासक देवगुप्त ने उसके बहनोई ग ह वर्मा की हत्या कर दी है तथा उसकी बहन राज्यश्री को बंदी बना लिया है। यह समाचार सुनते ही वह तुरंत सेना लेकर चल पड़ा। राज्यवर्धन ने मालवा पर आक्रमण कर दिया और देवगुप्त को पराजित कर दिया। लेकिन मालवा के शासक के मित्र गोड़ के शासक शशांक ने राज्यवर्धन को अपनी पुत्री से विवाह करने का बुलावा देकर धोखे से भोजन करते समय मार डाला।

हर्षवर्धन (606 से 647 ई०)

जिस समय राज्यवर्धन की म त्यु हुई उस समय हर्षवर्धन केवल 16 वर्ष का था। वह शासन की बागडोर नहीं संभालना चाहता था लेकिन सेनापति सिंहनाद के कहने पर तथा अन्य लोगों के आग्रह पर हर्ष ने राज गद्दी संभाल ली। सिहांसन पर बैठते ही सबसे पहले उसने अपनी बहन राज्य श्री को विंध्याचल के जंगलों में जब वह सती होने जा रही थी, खोज निकाला। अब हर्ष ने थानेसर को त्याग कर कन्नौज को अपनी राजधानी बना लिया।

हर्ष की विजय

कन्नौज को अपनी राजधानी बनाने के पश्चात हर्ष ने अपनी शक्ति में व द्धि की तथा एक विशाल सेना का निर्माण किया और अनेक प्रदेशों का विजय करके अपने राज्य में मिला लिया। बाण से हर्षचरित और ह्वेन सांग के विवरणों से उसकी विजयों की जानकारी मिलती है।

1. **बंगाल अथवा गोड़ की विजयः**- हर्ष का ध्यान सबसे पहले बंगाल अथवा गौड़ के शासक शशांक की ओर गया। वह मालवा के शासक देवगुप्त का मित्र था। शशांक ने हर्षवर्धन के भाई राज्यवर्धन की धोखे से हत्या करवा दी थी। हर्ष ने अपने भाई की हत्या का बदला लेने का निश्चय किया। हर्ष ने असम के राजा भास्कर वर्मा से मैत्रीपूर्ण संबंध स्थापित करके बंगाल के राजा शशांक पर आक्रमण कर दिया। शशांक बुरी तरह से पराजित हुआ। शशांक पर इस पुष्टि बौद्ध ग्रंथ 'मंजु श्री मुल कल्प' से भी होती है। शशांक ने भागकर उड़ीसा में शरण ली। हर्ष ने उसके प्रदेशों पर अधिकार कर लिया।

2. **पांच प्रदेशों की विजयः** ह्वेन सांग के विवरण से ज्ञात होता है कि हर्ष ने छः वर्ष के निरंतर युद्धों के पश्चात पंचभारतों पर विजय की। गौरी शंकर चटर्जी, डॉ० मुकुर्जी तथा डॉ० त्रिपाठी आदि विद्वानों ने पंचभारतों का अर्थ सारस्वत (पंजाब), कान्यकुंज, गौड़, मिथिला तथा उत्कल (उड़ीसा) के प्रदेशों से लगाया है। जहां उत्तर भारतीय ब्राह्मणों की पांच शाखाओं के केंद्र थे।

3. **सिंध विजयः** हर्ष की सिंध विजय के बारे में निश्चित रूप से कुछ कहना कठिन है। बाण के हर्षचरित से ज्ञात होता है कि हर्ष ने सिंध के शासक को पराजित करके उसकी राज्य लक्ष्मी को हड़प लिया। इसके विपरित ह्वेन सांग लिखता है कि जब उसने सिंध की यात्रा की उस समय वहां का शासक स्वतंत्र था। संभव है कि हर्ष ने अपनी पश्चिम भारतीय विजयों के दौरान सिंध के राजा को हराया हो ओर उसे अधीनता स्वीकार करने के लिए विवश किया हो।

4. **नेपाल की विजयः** बाण के हर्षचरित से ज्ञात होता है कि हर्ष ने बर्फीले पहाड़ों के क्षेत्र से कर संग्रह किया। इस संबंध में ब्युलर का तर्क है कि हर्ष ने नेपाल को विजय किया। उनका मत नेपाल में प्रचलित हर्ष सम्वत पर आधारित है। लेकिन सिल्वा लेवी तथा डॉ० त्रिपाठी जैसे विद्वान इसे स्वीकार नहीं करते। लेवी का मत है कि उस समय नेपाल तिब्बत के अधीन था। नेपाल के राजा ने अपने राज्य के उन भागों में हर्ष सम्वत चलाया था जिनकी सीमाएं हर्ष के राज्य के साथ मिलती थी और जहां लोग इसे समझते थे। डॉ० त्रिपाठी का कहना है कि बाण का कथन किसी शक्तिशाली पहाड़ी राज परिवार की कन्या से हर्ष के विवाह की और इशारा करता है। ऐसी दशा में जब तक अन्य कोई स्पष्ट प्रमाण नहीं मिलता इस विषय पर अंतिम रूप से कुछ कहना कठिन है।

5. **वल्लभी (गुजरात) की विजयः** हर्षवर्धन के समय वल्लभी एक शक्तिशाली राज्य था। भौगोलिक द ष्टि से यह काफी महत्वपूर्ण था। इस पर नियंत्रण कर लेने के पश्चात हर्ष चालुक्य शासक पुल्केशीन के विरुद्ध कार्यवाही कर सकता था। इस उद्देश्य के साथ हर्षवर्धन ने एक विशाल सेना के साथ 630 ई० में वल्लभी पर आक्रमण कर दिया। उस समय वहां ध्रुवसेन द्वितिय का शासन था। इस युद्ध में ध्रुवसेन की पराजय हुई तथा उसने भड़ोंच के शासक दद्दा द्वितीय के पास जाकर शरण ली। दद्दा के कहने पर हर्ष ने ध्रुवसेन का राज्य वापस कर दिया। ध्रुवसेन ने हर्षवर्धन की अधीनता स्वीकार कर ली। हर्षवर्धन ने ध्रुवसेन के साथ अपनी पुत्री का विवाह करके सदैव के लिए उसे अपना मित्र बना लिया।

5. **पुलकेशीन द्वितीय के साथ युद्ध और पराजयः** उत्तरी भारत के विभिन्न प्रदेशों को जीत कर हर्ष ने दक्षिण भारत को विजय करने का निश्चय किया। उस समय नर्मदा नदी के दक्षिण में चालुक्य वंश के पुलकेशीन द्वितीय का राज्य था। 634 ई० के अहिहोड़ के लेख से यह निश्चित रूप से ज्ञात होता है कि हर्ष और बादामी नरेश पुलकेशिन के बीच युद्ध हुआ जिसमें हर्ष की पराजय हुई। इस बात की पुष्टि ह्वेन सांग के विवरण से भी होती है।

6. **असम की विजयः** असम के शासक भास्कर वर्मा ने कन्नौज की सभा में भाग लिया था और अनके हाथी भेंट दिए थे। इससे लेखकों का अनुमान है कि उसने हर्ष की अधीनता को स्वीकार कर लिया था। आरंभ में भास्कर वर्मा ने शशांक के विरुद्ध हर्ष की सहायता की थी। परंतु बाद में हर्ष ने असम को जीत लिया था। भास्कर वर्मा की पुरानी सेवाओं के कारण उसने उसका राज्य वापस लौटा दिया और भास्कर वर्मा ने हर्ष की अधीनता स्वीकार कर ली।

7. **गंजम की विजयः** गंजम की विजय हर्षवर्धन की अंतिम विजय थी। हर्षवर्धन ने इस प्रदेश पर एक विशाल सेना के साथ आक्रमण करके वहां के शासक को परास्त कर दिया। हर्ष ने संभवतः यह विजय 643 ई में प्राप्त की थी।

हर्ष का राज्य विस्तार

अधिकांश विद्वानों का मत है कि हर्ष का राज्य संपूर्ण उत्तरी भारत में था। मजुमदार, राय चौधरी आदि का कहना है कि हर्ष की सेना उत्तर में बर्फीले पर्वतों से लेकर दक्षिण में नर्मदा तक और पूर्व में गंजम से लेकर पश्चिम में वल्लभी तक के लगभग संपूर्ण उत्तरी भारत को पदाक्रांत किया था।

डॉ० वी० ए० स्मिथ के अनुसार हर्ष के शासन काल के पिछले वर्षो के अनुसार हर्ष के शासन काल के पिछले वर्षो में मालवा, गुजरात, सौराष्ट्र के अतिरिक्त हिमालय पर्वत से नर्मदा तक गंगा की संपूर्ण घाटी पर हर्ष का अधिकार था। डॉ० आर० के० मुकुर्जी ने स्पष्ट किया है कि कुछ प्रदेश तो ऐसे थे जिनका शासन प्रबंध उसके हाथ में नहीं था बल्कि वे उसकी प्रभुसता स्वीकार करते थे। और कुछ ऐसे थे जिन पर हर्ष का प्रत्यक्ष शासन था।

हर्ष का शासन प्रबंध

हर्ष ने अपने विशाल साम्राज्य की शासन व्यवस्था प्राचीन परपंराओं के आधार पर ही की थी। हर्ष के शासन का स्वरूप सामंती था। उसके शासन प्रबंध का विवरण इस प्रकार से है-

केंद्रीय प्रशासन

राजाः शासन प्रबंध में राजा का स्थान सर्वोच्च था। उसने महाराजाधिराज परमेश्वर, परम भट्टारक, सार्वभौम, सकतोरपथनाथ, शिलादित्य आदि उपाधियां धारण कीं थी। सिद्धांत रूप से वह निरकुंश सम्राट था परंतु व्यवहार और प्रशासन में उदार व अस्वेच्छाचारी शासक था। हर्ष का राजत्व आदर्श बड़ा श्रेष्ठ था। प्रजाहित को वह अपना प्रमुख कर्तव्य समझता था। ह्वेन सांग कहता है कि हर्ष बड़ा परिश्रमी और अथक था। उसके लिए दिन अत्यंत छोटा पड़ता था। उसने दिन को तीन भागों में बांट लिया था जिसमें से एक भाग में तो वह धर्म कार्य करता था। वह दुष्टों का दमन करने और भलों को पुरस्क त करने के लिए सारे राज्य में भ्रमण करता था। अपने सामंतों और कर्मचारियों को स्वयं नियुक्त करता था। वह न्यायाधीश का भी काम करता था। युद्ध में सेना का नेत त्व भी राजा स्वयं करता था।

मंत्रीपरिषदः किसी भी प्रशासन की सफलता नौकरशाही की कुशलता पर निर्भर करती है इसलिए हर्ष ने विभागों को योग्य व ईमानदार आदि में बांट रखा था।

1. ***प्रधानमंत्रीः*** हर्ष का प्रधानमंत्री भण्डी था। यह उसका ममेरा भाई था। वह राजा को महत्वपूर्ण मामलों में परामर्श देता था।
2. ***संधि विग्राहिकः*** यह पद अवन्ति के पास था। वह युद्ध और संधि के कार्यो में राजा का सहायक था। राजकीय आदेशों और घोषणाओं का लेखन भी उसका कार्य था।
3. ***महाबालाधिक तः*** पैदल सेना का सर्वोच्य सेनापति था। इस पद पर सिंहनाद था।
4. ***व हदश्ववारः*** घुड़सवार सेना का नायक था। हर्ष चरित में उसका नाम कुन्तल बताया है।
5. ***कटुकः*** वह हाथी सेना का प्रमुख था। हर्ष के समय इस पद पर स्कंदगुप्त था।
6. ***महाप्रभातारः*** यह भूमि का नाप करता था। वह भूमि संबंधी राजस्व विभाग का एक प्रमुख अधिकारी होता था।
7. ***दोस्साधनिकः*** हर्ष के अभिलेखों में इस अधिकारी की चर्चा मिलती है लेकिन निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि इस अधिकारी का क्या कार्य था। कुछ विद्वानों का मत है कि वह गांवों की देखभाल करता था।
8. ***महाप्रतीहारः*** वह महल का सुरक्षा अधिकारी था।

प्रांतीय शासन

भुक्तिः हर्ष ने अपने विशाल साम्राज्य को कई प्रांतों में बांटा हुआ था जिन्हें भुक्ति कहा जाता था। भुक्ति के मुखिया को उपरिक अथवा उपारिक महाराज कहा जाता था। तत्कालीन अभिलेखों में भोगिक नामक अधिकारी का उल्लेख मिलता है। फ्लीट के अनुसार भोगिक पद भुक्ति के प्रधान अधिकारी का बोधक था।

विषयः भुक्तियों में अनेक विषय होते थे जो आधुनिक जिलों की तरह होते थे। विषय के अधिकारी को विषयपति कहा जाता था।

पठकः प्रत्येक विषय में कई पठक होते थे जो कदाचित आजकल की तहसीलों के समान थे।

ग्रामः प्रशासन की सबसे छोटी इकाई ग्राम होती थी। इसका मुखिया ग्रामीण कहलाता था। इसका मुख्य कार्य ग्राम में शांति रखना, राजस्व वसूली करना तथा अन्य स्थानीय आवश्यकताओं की पूर्ति करना था।

दण्ड विधानः हर्ष का दण्ड विधान कठोर था और अपराधियों को कड़े दण्ड दिये जाते थे। राजद्रोह और कानून भंग करने वालों को कठोर आजीवन कारावास का दण्ड भुगतना पड़ता था। व्यभीचार आदि के लिए हाथ, नाक, कान व अदि अंग भंग कर दिए जाते थे। बड़े अपराध के लिए म त्यु दण्ड भी दिया जाता था। अथवा अपराधियों को देश निकाला दिया जाता था। दण्ड कठोर होने पर भी मार्ग सुरक्षित नही थे। ह्वेन सांग दो बार लुट गया था। अपराधियों को अपराध स्वीकार करवाने के लिए विष, जल अग्नि आदि की परिक्षाएं भी प्रचलित थी।

सैनिक संगठनः हर्ष के पास एक विशाल सेना थी। उसकी सेना के तीन प्रमुख अंग थे। पदाति, अश्वरोही और गजारोही। रथ का प्रयोग संभवतः इस समय नही होता था। उस समय के अभिलेखों में सेना का भी उल्लेख है। ह्वेन सांग के अनुसार हर्ष की सेना में 60,000 हाथी, 10,000 घुड़सवार थे। ऊंट भी काफी संख्या में थे। सामंत और भिन्न-भिन्न राज्यों के द्वारा भी सैनिक दल राज्यों को प्राप्त होते रहते थे। घुड़सवार सेना के लिए घोड़े अफगानिस्तान, ईरान आदि देशों से प्राप्त किए जाते थे।

पुलिस व्यवस्थाः राज्य में शांति रखने के लिए पुलिस की जो व्यवस्था थी वह गुप्त सम्राटों से चली आ रही थी। दण्डिक व दण्डपालिक पुलिस अधिकारियों की पद संज्ञाएं थी।

गुप्तचर व्यवस्थाः हर्ष ने गुप्तचरों की भी व्यवस्था की थी जो सामंत राज्यों में गुप्त रूप से दौरे किया करते थे तथा गुप्त रूप से अपराधियों का पता लगाते थे।

आय तथा व्ययः राज्य की आय का मुख्य स्त्रोत भूमिकर था जो उपज का $^{1}/_{6}$ भाग वसूल किया जाता था। घाटों तथा नदी पार करने के लिए भी कर लिया जाता था। चुंगी की प्रथा भी थी, बिक्री कर भी लगता था। अपराधियों पर किए गए जुर्माने आदि से भी राज्य की आय होती थी। ह्वेन सांग के अनुसार कर बहुत कम थे। बेगार नहीं ली जाती थी। बेगार न होने के कारण सभी लोग अपने कार्यो में तथा अपनी पैत क संपत्ति की रक्षा में लगे रहते थे।

ह्वेन सांग के अनुसार राज्य की आय को चार भागों में बांटा गया था। एक भाग राज्य कार्य चलाने के लिए, दूसरा भाग मंत्रियों तथा अन्य राज्य कर्मचारियों को वेतन देने के लिए था। तीसरा भाग सुयोग्य व्यक्तियों को पुरस्क त करने के लिए था। चौथा भाग धार्मिक संप्रदायों को दान देने के लिए था। कभी-कभी कुछ गांव की संपूर्ण आय विशेष कार्यो के लिए दे दी जाती थी। नालंदा विश्वविद्यालय के खर्चो को चलाने के लिए 100 गांवों की आय अर्पित थी।

इस प्रकार हर्ष का शासन काल शासन व्यवस्था की द ष्टि से बहुत महत्वपूर्ण काल था। निष्कर्ष रूप से कहा जाता सकता है कि हर्ष का शासन निरंकुश और गणतंत्रीय तत्वों का मिश्रण था।

अध्याय-5

हरियाणा में प्रतिहारों का शासन

(Pratihara Rule in Haryana)

हर्षवर्धन की म त्यु के पश्चात उसका विशाल साम्राज्य शीघ्र ही छिन्न भिन्न हो गया। अधिनस्थ शक्तियां स्वतंत्र होने का प्रयास करने लगी थी। लेकिन हर्ष की म त्यु के बाद हरियाणा में क्या हुआ यह ज्ञात नहीं है। हमें वाकपति के गोडवाहों से ज्ञात होता है कि आठवीं शताब्दी के प्रारंभिक वर्षो में हरियाणा का क्षेत्र कन्नौज के राजा यशोबर्मन के अधिकार में आ गया था। लेकिन कुछ ही समय पश्चात कश्मीर के राजा ललितादित्य मुक्तापीड ने यशोबर्मन को पराजित करके उस क्षेत्र पर अपना अधिकार कर लिया। लेकिन ललितादित्य के बाद उसके उतराधिकारी निर्बल शासक सिद्ध हुए। अतः हरियाणा और उसके आसपास के क्षेत्र में कई छोटी-छोटी शक्तियां सिर उठाने लगी।

पाल वंश के शासक धर्मपाल के लखीमपुर अभिलेख से हमें पता चलता है कि हरियाणा के तोमर व भादानक धर्मपाल की महानता को स्वीकार करते थे। लेकिन कुछ समय पश्चात प्रतिहार वंश के राजा नागभट्ट द्वितीय (805- 833 A.D.) ने राजा धर्मपाल को पराजित कर दिया और इस प्रकार हरियाणा को प्रदेश नागभट्ट द्वितीय के राज्य का अंग बन गया।

नागभट्ट द्वितीय गुर्जर प्रतिहार शासक था। प्रतिहारों की उत्पत्ति के बारे में विद्वानों में मतभेद है कुछ विद्वानों ने इन्हें विदेशी बताया है तथा कुछ भारतीय बताते हैं। कर्नल टाड का मत है कि जो आक्रमणकारी विदेशों से आए वे यहीं पर बसकर रह गए और प्रतिहार उन्हीं की संतान है। लेकिन सी० वी० वैद्य, गौरीशंकर औझा तथा डॉ० दशरथ शर्मा का मानना है कि ये विशुद्ध भारतीय थे। वे इन्हें सूर्यवंशी व चंद्रवंशी क्षत्रियों की संतान मानते हैं। प थ्वीराज के राज कवि चंद्र बरदई ने इनकी उत्पत्ति आबु के अग्निकुण्ड से बताई है। किसी भी साक्ष्य से यह प्रमाणित नहीं होता कि प्रतिहार विदेशी थे। फिर भी इनकी उत्पति के विषय में हमारे पास ठोस प्रमाण नहीं है।

प्रतिहारों की तीन शाखाएं थीं- (i) भ गुकच्छ नांदीपुर की शाखा, (ii) भाडव्यपुर भेदंतक तक की शाखा, (iii) उज्जैन की शाखा। इनमें सबसे शक्तिशाली उज्जैन की शाखा थी। इनका अधिकार गुजरात, राजस्थान तथा उत्तर प्रदेश के बहुत बड़े भाग पर था। इसी तीसरी शाखा के ही एक प्रतापी शासक नागभट्ट द्वितीय ने हरियाणा को अपने अधीन कर लिया था। वह वत्सराज का पुत्र था और 805 ई० में वत्सराज की म त्यु के बाद गद्दी पर बैठा और उसने 833 ई० तक शासन किया। और प्रतिहार राज्य को शक्तिशाली बनाया।

राष्ट्रकुटों का आक्रमण

नागभट्ट जब गद्दी पर बैठा उस समय उज्जैन का प्रतिहार राज्य एक तरफ धर्मपाल तथा दूसरी तरफ राष्ट्रकुटों के आक्रमण के बीच पीस रहा था। वत्सराज ने अवन्तिपुर पर पुनः अधिकार कर लिया था। लेकिन मरने तक वह पालों और राष्ट्रकुलों को पूरी तरह पराजित नहीं कर सका था। ऐसी अवस्था में नागभट्ट द्वितीय की प्रथम समस्या अवन्ति की रक्षा करना था।

ग्वालियर प्रशस्ती से हमें ज्ञात होता है कि आंध्र, विदर्भ, सिंध और कलिंग के राजाओं ने नागभट्ट के प्रति वैसे ही आत्म समर्पण कर दिया जिस प्रकार पतंगे दीपशिखा के प्रति करते हैं। संभवतः इन्होंने राष्ट्रकुट राजा गोविंद त तीय के भय से नागभट्ट से मित्रता कर ली। लेकिन गोविंद ने इस संघ के आक्रमण करने से पहले ही उत्तरी भारत पर आक्रमण कर दिया और नागभट्ट को पराजित कर दिया। इस बात की पुष्टि के प्रमाण उस समय के अभिलेखों से मिलते हैं। अपने उत्तरी अभियान के दौरान

आगे बढ़कर गोविंद त तीय ने चक्रायुद्ध और धर्मपाल को भी आत्मसर्मपण करने के लिए विवश किया। तत्पश्चात वह अपने राज्य को वापस लौट गया।

चक्रायुद्ध की पराजय और कन्नौज पर अधिकार

गोविंद त तीय के वापस चले जाने के पश्चात नागभट्ट ने अपनी शक्ति को संगठित किया और कन्नौज पर आक्रमण कर लिया। इस विषय का प्रमाण ग्वालियर अभिलेख में मिलता है। नागभट्ट ने कन्नौज को अपनी राजधानी बना लिया तथा परम भट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर की उपाधि धारण की। स्कंध पुराण से हमें पता चलता है कि ब्रह्मव्रत (हरियाणा क्षेत्र) भी नागभट्ट के अधीन था।

मुंगेर का युद्ध और धर्मपाल की हार

कन्नौज का राजा चक्रा युद्ध पाल राजा धर्मपाल के संरक्षण में राज्य कर रहा था। चक्रा युद्ध की हार की सूचना पाते ही धर्मपाल ने नागभट्ट द्वितीय के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। नागभट्ट द्वितीय ने इस युद्ध में धर्मपाल को पराजित किया। इस बात के साक्ष्य हमें ग्वालियर, जोधपुर व चाप्सु अभिलेखों से प्राप्त होते हैं। इस प्रकार नागभट्ट ने कन्नौज और बंगाल के शासकों को पराजित कर उत्तरी भारत में अपनी धाक जमा ली।

चाहमानों द्वारा नागभट्ट की अधीनता स्वीकार करना

चाहमान राजा विग्रह राज के हर्ष प्रस्तर लेख से ज्ञात होता है कि उसके पूर्वज गुषक प्रथम ने नागावलीक के दरबार में यश प्राप्त किया। प थ्वीराज विजय से भी सूचना मिलती है कि गुषक की बहन कलावती ने कन्नौज के राजा नागभट्ट से विवाह किया था। इन साक्ष्यों से स्पष्ट होता है कि शाकंभरी के चाहमानों ने नागभट्ट की अधीनता स्वीकार की थी।

उपरोक्त सभी साक्ष्यों के आधार पर निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि नागभट्ट ने हिमालय से लेकर नर्मदा नदी के बीच के सभी प्रदेशों पर अपना प्रभाव स्थापित किया।

नागभट्ट की म त्यु

जैन ग्रंथ प्रभावक चरित्र से ज्ञात होता है कि 833 ई० में नागभट्ट द्वितीय ने पवित्र गंगा में जल समाधि लेकर अपने प्राण त्याग दिए।

रामभद्र (833-836 ई०)

नागभट्ट द्वितीय के बाद उसका पुत्र रामभद्र गद्दी पर बैठा। वह निर्बल शासक था। उसके राज्यकाल में प्रतिहार राज्य के कई भाग स्वतंत्र हो गए। इनमें मुख्य कालीजर मंडल था। दूसरा जो प्रदेश निकला वह गुर्जरात्र था।

रामभद्र के अधिकार में कौन-कौन से प्रदेश रह गए थे यह निश्चित रूप से कुछ कहा नहीं जा सकता। लेकिन ग्वालियर का प्रदेश अवश्य उसके अधिकार में था। क्योंकि यहां पर उसका सामंत शासन कर रहा था। बप्पभट्ट चरित के अनुसार रामभद्र के पुत्र भोज ने उसकी हत्या करके सिहांसन पर अधिकार किया था।

मिहिर भोज (836-885 ई०)

रामभद्र के बाद मिहिर भोज जिसे भोज प्रथम के नाम से अधिक जाना जाता है गुर्जर प्रतिहार राज्य की बागडोर संभाली। वराह अभिलेख से इसकी सर्वप्रथम तिथि 836 ई० मिलती है। ग्वालियर अभिलेख में इसकी उपाधि वराह मिलती है। उसने सिक्कों पर भी उसने अपनी उपाधि 'आदिविराह' उत्कीर्ण करवाई। यह प्रतिहार वंश का सबसे महान शासक माना जाता है।

वराह अभिलेख से ज्ञात होता है कि मिहिर भोज ने कालीजर मण्डल जो रामभद्र के समय में स्वतंत्र हो गया था पर पुनः दान दिया जो कि रामभद्र के समय में बंद हो गया था। जो धसुर अभिलेख से ज्ञात होता है कि जो दान गुर्जरात्र में रामभद्र के समय बंद हो गया था, उसे दुबारा मिहिर भोज ने चालू किया। ऐसा प्रतीत होता है कि मिहिर भोज ने इस प्रदेश को अपने अधिकार में करके यह किया था।

मिहिर भोज के 802 ई० के पेहवा अभिलेख से ज्ञात होता है कि उसके समय में पेहवा उत्तरी भारत का बहुत बड़ा व्यापारिक केंद्र था। यहां विशेष रूप से घोड़ो का व्यापार होता था। घोड़ों की खरीद बेच पर कर लगता था जो मंदिरों को दान रूप में चला जाता था। इन बातों से स्पष्ट है कि हरियाणा का प्रदेश मिहिर भोज के अधिकार में था।

राजत रगिणी से ज्ञात होता है कि मिहिर भोज ने पंजाब के थक्कीय वंश अपने अधिकार में कर लिया था। उन ताम्रपत्र से ज्ञात होता है काठियावाड़ के बलवर्मा ने प थ्वी को हुणो से मुक्त करवाया। डॉ० बी० एन० पुरी के अनुसार बलवर्मा मिहिर भोज के अधीन सामंत शासक था। उसने पश्चिमी मालवा से हुणो को भगाकर उस पर अधिकार कर लिया। सौराष्ट्र पर राय चौधरी मिहिर भोज का अधिकार मानते हैं। देवगढ़ व ग्वालियर अभिलेखों से ज्ञात होता है कि उत्तरी उत्तर प्रदेश और मध्य प्रदेश पर भी मिहिर भोज का अधिकार था।

राष्ट्रकुटों से युद्ध

मिहिर भोज ने राष्ट्रकुटों का पराजित करके उज्जैन पर अधिकार कर लिया। लेकिन ऐसा प्रतीत होता है कि यह विजय स्थाई न रह सकी। राष्ट्रकुट वंश के अधीन गुजरात के सामंत शासक ध्रुव द्वितीय ने मिहिर भोज को पराजित किया। इस बात का प्रमाण बमुग्रा अभिलेख से मिलता है कि ध्रुव द्वितीय ने मिहिर भोज को आसानी से हरा दिया।

इस युद्ध के कुछ समय पश्चात मिहिर भोज और राष्ट्रकुटों में पुनः युद्ध हुआ इस बार राष्ट्रकुट वंश के शासक क ष्ण द्वितीय के साथ हुआ। इस युद्ध में विजय किसकी हुई स्पष्ट रूप से कहा नहीं जा सकता क्योंकि दोनों की पक्ष अपनी विजय का दावा करते हैं। बमुग्रा अभिलेख के अनुसार गुजरात के राष्ट्रकुटों के सामंत शासक उज्जैन में भोज को पराजित किया। इसके विपरित ब्रिटेन संग्रहालय अभिलेख का कथन है कि मिहिर भोज ने क ष्ण राज को भगा दिया था। इन आधारों पर यही निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि मालवा पर अधिकार जमाने का प्रयत्न प्रतिहार और राष्ट्रकुट दोनों की करते रहे थे।

प्रतिहार पाल संघर्ष

नागभट्ट द्वितीय ने मुंगेर के युद्ध में धर्मपाल को हराया था। इसके बाद पाल वंश का शासक देवपाल बना। देवपाल मिहिर भोज के समान महत्वकांक्षी था इसलिए दोनों में युद्ध होना स्वाभाविक था। लेकिन इन दोनों से संबंधित अभिलेखों में इनकी अपनी-अपनी विजय का दावा मिलता है। एक तरफ ग्वालियर प्रशस्ति यह दावा करती है कि राजलक्ष्मी जो देवपाल की पत्नी थी उसके पास से निकलकर मिहिर भोज के पास चली गई। लेकिन अभिलेख का कथन है कि देवपाल ने गुर्जरनाथ के घमण्ड को चूर-चूर कर दिया। इन दोनों तथ्यों के आधार पर निष्कर्ष निकलता है कि देवपाल में भोज को उसके शासन के प्रारंभिक वर्षो में हराया होगा। लेकिन बाद में फिर युद्ध हुआ इस समय विजय मिहिर भोज की हुई।

उपरोक्त विवरण से स्पष्ट होता है कि मिहिर भोज का राज्य विस्तार उत्तर में हिमालय से लेकर दक्षिण में बुंदेलखण्ड पूर्व में उत्तर प्रदेश से लेकर पश्चिम में गुजरात व काठियावाड़ तक था।

स्कंध पुराण के अनुसार मिहिर भोज ने तीर्थ यात्रा करने के उद्देश्य से राज्य का भार अपने पुत्र महेंद्र पाल प्रथम को सौंप कर सिहांसन त्याग दिया।

महेंद्रपाल प्रथम (885-910 ई०)

मिहिर भोज के बाद उसका पुत्र महेंद्रपाल प्रथम कन्नौज की गद्दी पर बैठा। उसके शासन काल में भी पाल प्रतिहार संघर्ष चलता रहा। इस युद्ध में महेंद्रपाल की विजय हुई। महेंद्रपाल ने पाल वंश के राजा नारायण पाल को पराजित किया था। इस विजय के फलस्वरूप बंगाल और बिहार के प्रदेश उसके अधिकार में आ गए। लेकिन ऐसा प्रतीत होता है कि महेंद्रपाल अपने पिता की तरह शूरवीर नहीं था। उसकी सैनिक विजयों के बारे में हमें कोई विशेष विवरण नहीं मिलता। बल्कि कुछ इलाके उसके हाथों से निकल जाने का उल्लेख अवश्य मिलता है। संभवतः हरियाणा के ऊपर का बहुत सा क्षेत्र उसके नियंत्रण से बाहर हो गया था। परंतु शेष हरियाणा पर उसका अधिकार बना रहा। यह सब स्थानीय सामंतों की सहायता करने के कारण संभव हुआ। पेहवा से प्राप्त महेंद्रपाल के समय का एक अभिलेख इस बात की पुष्टि करता है। इस अभिलेख के पांचवे पद में महेंद्रपाल की प्रशस्ति गाई गई है। तथा शेष पदों में तोमरों की वशांवली दी गई है। लेकिन लगता है कि 910 ई० में महेंद्रपाल की म त्यु के पश्चात स्थिति का लाभ उठाते हुए तोमर हरियाणा में स्वतंत्र हो गए।

तोमर वंश

पूर्व मध्यकाल के इतिहास में तोमरों का महत्वपूर्ण स्थान है। तोमरों को हिंदी साहित्य में तोवंर और तुवंर तथा संस्क त ग्रंथों और अभिलेखों में तोमर कहा गया है। भाटों और चारणों ने इनकी राजपूतों के 36 कुलो में गिनती की है। 17वीं सदी के कवि जान के अनुसार राजपूतों के केवल तीन कुल ही महत्वपूर्ण रह गए थे- चौहान, तोमर और पँवार। शेष सभी कुल आधे कुल के समान माने गए थे। इसलिए $3^1/_2$ कुल ही रह गए थे।

तोमरों की उत्पत्ति के संबंध में विद्वानों में मतभेद हैं। कोई विद्वान इन्हें विदेशी आक्रमणकारियों की संतान बताता है तो कोई आर्यो की संतान। कई विद्वान उन्हें ब्राह्मण वंश से संबंधित मानते हैं तो कई क्षत्रिय वंश से। मुगल सम्राट शाहजहां के समय के 'गोपाचल आख्यान' के लेखक खड्गराय ने इनको ऋषी अत्री की संतान बताया है। उसने तोमरों को क्षत्रियों की एक उत्तम जाति बताया है। केशव दास इन्हें सोमवंशी यदु परिवार से संबंधित मानते हैं। मित्रसेन ने 1630 ई० के रोहितास गढ़ के अभिलेख में इन्हें पाण्डवों का वंशज बताया है। उपयुक्त सभी साक्ष्य 16वीं सदी के बाद के है जो की तामरों के प्रारंभिक इतिहास की जानकारी के संबंध में कम महत्व रखते है। परंतु फिर भी इनसे स्वदेशी उत्पत्ति का बौध अवश्य होता है।

विदेशी उत्पत्ति के मानने वाले विद्वानों ने तोमरों को हुणो के साथ जोड़ने का प्रयास किया है। डॉ० बुद्ध प्रकाश 'तोमर' शब्द की उत्पत्ति शक्तिशाली हुण शासक तोरमाण से मानते हैं। स्टाईन ने कल्हण की राज तरंगीणी में लिखित 'तोमराणय' को 'तोमरो' के साथ जोड़ते हुए तुर्की उत्पत्ति के तोरमाणा शब्द को अपनाते है। डी० सी० सरकार तोमरों और हुणो को अलग-अलग मानते हैं।

तोमरों की देशी उत्पत्ति के सिद्धांत पर बल देते हुए एच० एन० द्विवेदी इन्हें विंध्य पर्वतमाला के उत्तर में स्थित मानते हैं। उनके अनुसार तोमर गोपाचल के रहने वाले थे। यह क्षेत्र मुरैना और अम्बाह जिलों में लगता है तथा आज भी 'तवंरधन' या 'तोमरगढ' के नाम से जाना जाता है।

दिल्ली और हरियाणा के तोमरों के संबंध में हमें महेंद्रपाल की पेहवा प्रशस्ति से ज्ञात होता है कि इस वंश का उदय जाऊल नामक सरदार हुआ। द्विवेदी महोदय जाऊल का समीकरण राजा जाजु- अनंगपाल I विल्हणदेव से करते हैं, जिसने 736 ई० में दिल्ली की स्थापना की। इसके स्वामी राजा नागभट्ट ने अरबों और कश्मीर के राजा ललितादित्य मुक्तपीड़ के आक्रमणों को रोकने के लिए नियुक्त किया था। द्विवेदी महोदय का मानना है कि पेहवा प्रशस्ति में वर्णित महेंद्रपाल कोई स्थानीय शासक था। क्योंकि उनके अनुसार उस समय हरियाणा में कुरुक्षेत्र के आसपास के क्षेत्र अनंग प्रदेश के नाम से जाना जाता था। अतः प्रथम तोमर राजा ने अपना नाम अनंग प्रदेश के आधार पर अनंगपाल रखा।

महेंद्र पाल के पेहवा अभिलेख में तीन तोमर भाईयों का उल्लेख मिलता है- गोगा, पूर्णराज और देवराज जिन्होंने पेहवा में एक विष्णु मंदिर की स्थापना की थी। ये तीनों जज्जुक के पुत्र थे। जज्जुक मंगलादेवी से उत्पन्न व्रजट का पुत्र था, जो कि जाऊल का वंशज था। व्रजट ने अपने स्वामी के कार्यो का निर्वाह करते हुए प्रसिद्धि प्राप्त की। ऊपर वर्णित सभी बाते इस बात की और इशारा करती हैं कि आरंभ में तोमर शासक स्वतंत्र न होकर प्रतिहारों के सामंत थे। इसके बाद के अभिलेखों में पीपल राज देव, रघु पाल, विल्हण पाल और गोपाल आदि तोमर शासकों के नाम मिलते हैं। लेकिन ये स्वतंत्र शासक नहीं थे।

तोमरों में गोपाल के बाद उसका उत्तराधिकारी सुलक्षण पाल (979-1005 ई०) हुआ। सुलक्षण पाल की कुछ मुद्राएं मिली हैं जिससे ज्ञात होता है कि वह चाहमानों से मुक्ति पाकर स्वतंत्र शासक बन गया था। लेकिन तोमर शासक सुलक्षण पाल व चाहमानों के बीच हुए किसी युद्ध की जानकारी किसी भी स्त्रोत से नहीं मिलती। अतः संभव है कि उत्तर पश्चिम से होने वाले तुर्को के आक्रमण के भय से पंजाब के हिंदूशाही शासक जयपाल के नियंत्रण पर एक राजपूत संघ बना था और फरिशता के अनुसार इस संघ में दिल्ली के तोमर और अजमेर के चौहान शासक भी थे। अतः ऐसा प्रतीत होता है कि इन दोनों वंशों ने मैत्री संधि करके ही राजपूत संघ में प्रवेश पाया होगा।

महमूद द्वारा थानेश्वर पर आक्रमण

महमूद ने उत्तरी भारत पर 1000-1026 ई० तक कई आक्रमण किए। उसका छठा आक्रमण हरियाणा पर था। महमूद ने प्रसिद्ध तीर्थस्थान थानेश्वर की प्रसिद्धि के बारे में सुन रखा था। अतः 1009 ई० में वह एक विशाल सेना लेकर हरियाणा पर आक्रमण

करने के लिए बढ़ा। जब हरियाणा में तोमर वंश के शासक को महमूद के आक्रमण की सूचना मिली तो वह भी अपनी शक्तिशाली सेना लेकर युद्ध के मैदान में आ गया, लेकिन महमूद थोड़े युद्ध के बाद ही समझ गया था कि जयपाल की सेना को पराजित कर पाना बड़ा कठिन है। अतः उसने नारायणगढ़ से ही अपनी सेना को वापस मोड़ लिया। लेकिन हरियाणा पर आक्रमण करने की तैयारी वह निरंतर करता रहा। पांच वर्ष बाद उसे यह लगा कि अब वह अपनी योजना में सफल हो सकता है तब वह विशाल सेना लेकर हरियाणा पर आक्रमण के लिए निकल पड़ा। यह उसका हरियाणा पर दूसरा तथा भारत पर सातवां आक्रमण था।

महमूद द्वारा हरियाणा पर पुनः आक्रमण के समय तोमर नरेश जयपाल ने शत्रु को शक्तिशाली पाकर उत्तरी भारत के हिंदू शासकों से सहायता की अपील की। किंतु किसी भी राजा ने तोमर नरेश की बात पर ध्यान नहीं दिया। अतः लड़ाई में विजय महमूद की ही हुई। महमूद ने थानेसर को खूब लूटा तथा चक्रस्वामी की ऐतिहासिक प्रतिमा को नष्ट कर दिया।

इस आक्रमण के पश्चात महमूद दिल्ली पर आक्रमण करना चाहता था। लेकिन उसके सैनिकों ने आगे बढ़ने से इनकार कर दिया। जिसके कारण महमूद को विवश होकर वापस लौटना पड़ा। महमूद ने पंजाब को जीतकर अपने राज्य में मिला लिया था लेकिन हरियाणा को अपने राज्य में न मिला कर यथावत छोड़ दिया। तोमर शासकों को इस युद्ध से बड़ा धक्का लगा लेकिन धीरे-धीरे इन्होंने अपनी शक्ति को सुद ढ़ करने का प्रयास किया और अपना शासन चलाते रहे।

मासूद का हरियाणा पर आक्रमण

महमूद की म त्यु के बाद उसके भतीजे एवं उत्तराधिकारी मासूद 1030-41 ई० ने हरियाणा पर आक्रमण किया। वह हरियाणा में हाँसी के दुर्ग पर कब्जा करना चाहता था। इसीलिए उसने 1037 ई० में आक्रमण कर दिया। 12 दिन के घमासान युद्ध के पश्चात मासूद विजयी हुआ तथा हाँसी तथा आसपास के क्षेत्र पर उसने अधिकार कर लिया।

इसके पश्चात मासूद ने सोनीपत पर आक्रमण किया। बड़ी ही भंयकर युद्ध हुआ लेकिन अंत में जीत मासूद की ही हुई। उसने अंत में थानेसर पर आक्रमण किया। यहां भी जीत मासूद की ही हुई। इस प्रकार लगभग समस्त हरियाणा गजनी के शासक मासूद के अधिकार में आ गया।

गजनी के शासकों का हरियाणा पर अधिपत्य अधिक समय तक न रह सका। लगभग 1041 ई० में मासूद की म त्यु हो गई तथा उसके निर्बल उत्तराधिकारी मसुद के शासन काल में हरियाणा फिर से स्वतंत्र हो गया। लेकिन जब मसुद को यह पता चला कि हरियाणा के तोमर शासक स्वतंत्र हो गए हैं तो वह अपनी सेना लेकर आक्रमण करने के लिए बढ़ा। इधर हरियाणा में तत्कालीन तोमर शासक कुमारपाल देव (1021 से 1051 ई०) को जब मासूद के हमले की सूचना मिली तो उसने उत्तरी भारत के शासकों से सहायता की प्रार्थना की। इस समय कुछ भारतीय शासक सहायता के लिए पहुंच गए। 1043 ई० में थानेसर के स्थान पर भारतीय और अफगान सेनाओं में युद्ध हुआ जिसमें विजय भारतीयों की हुई और कुमार पाल स्वतंत्र शासक बन गया।

अनंगपाल द्वितीय (1051-1081 ई०)

कुमारपाल की म त्यु के बाद अनंगपाल द्वितीय गद्दी पर बैठा। उसने अपने राज्य को सुद ढ़ तथा शक्तिशाली बनाया। उसके शासक रहते किसी ने भी तोमर राज्य पर आक्रमण करने की हिम्मत नहीं की। वह जीवन प्रयंत स्वतंत्र शासक बना रहा ऐसा उसकी मुद्राओं से सिद्ध होता है। अनंगपाल की म त्यु के पश्चात उसका पुत्र तेजपाल (1081-1105) गद्दी पर बैठा। वह बहुत ही कमजोर शासक सिद्ध हुआ। गजनी के शासक इब्राहिम ने उस पर आक्रमण किया। तेजपाल ने उसका सामना करने के बजाए उसकी अधीनता स्वीकार कर ली। इस प्रकार तोमर अफगानों के अधीन शासक बन गए।

हरियाणा में चाहमानों की सत्ता की स्थापना

तोमरों की कमजोर स्थिति को देखकर 1139 ई० में चाहमान नरेश अरुण राज ने हरियाणा पर आक्रमण किया। अजमेर संग्रहालय की चाहमान प्रशस्ति से हमें पता चलता है कि 'अरुणराज की सेनाओं ने यमुना के पानी को गंदा कर दिया और

हरियाणा की स्त्रियों ने आंसू बहाए। इस प्रशस्ति के इन शब्दों से ज्ञात होता है कि तोमर सेना को पराजित करने पर ही चाहमान यमुना पार पहुंच पाए। अरुण राज ने तोमर राज्य, को समुल नष्ट करके तोमर शासकों को अपने अधीन सामंत शासक बना लिया। इस प्रकार आतंरिक शासन तोमरों के हाथ में रहा। इसका परिणाम यह हुआ कि जब भी तोमरों ने देखा कि चाहमानों की स्थिति कमजोर है वे स्वतंत्र होने की चेष्टा करने लगे। यही कारण था कि विग्रहराज चतुर्थ के शासन काल में तोमर चाहमान संघर्ष होते रहे।

विग्रहराज चतुर्थ चाहमान वंश का एक शक्तिशाली शासक था। उसने 'महाराजाधिराज परमेश्वर' की उपाधि धारण की थी। उसने तोमरों की शक्ति को पूरी तरह कुचल कर दिल्ली तथा हासी के दुर्गो पर अपना कब्जा कर लिया। बिजोलिया अभिलेख से ज्ञात होता है कि विग्रराज चतुर्थ ने तोमर वंश से ढिल्लिका (दिल्ली) छीन ली थी। इस प्रकार हरियाणा पर वास्तविक शासन चाहमानों का हो गया।

तराईन की लड़ाईयां
(Battles of Train)

अफगानिस्तान में महमूद के उत्तराधिकारी कमजोर तथा अयोग्य साबित हुए इस स्थिति का लाभ उठा कर कई सुबेदार स्वतंत्र हो गए। इनमें गौर प्रदेश का सुबेदार भी शामिल है। भारत में भी हासी, थानेसर, सिंध आदि पर दिल्ली के हिंदू राजाओं का कब्जा हो गया। इतने में 1173 ई० में गौरी वंश के एक शासक ने गजनी पर आक्रमण करके उस पर अधिकार कर लिया और गजनी वंश का अंतिम शासक भागकर लाहौर आ गया। जब मौहम्मद गौरी गौर देश की गद्दी पर बैठा तो उसके लिए गजनी वंश के नाममात्र के अंतिम शासक को पराजित करने के लिए लाहौर पर आक्रमण करना जरूरी समझा। अतः 1180 ई० में मौहम्मद गौरी ने खुसरो मलिक से लाहौर छीनकर गजनी पर अधिकार कर लिया। अब मोहम्मद गौरी के राज्य की सीमाएं प थ्वीराज के राज्य की सीमाओं से मिल गई। अतः दोनों के बीच युद्ध होना अनिवार्य ही था।

युद्ध के कारण

1. ***भारतीय राजाओं में आपस में फूटः*** भारतीय राजाओं में परस्पर शत्रुता थी। प थ्वीराज को दिल्ली मिल जाने से जयचंद उससे नाराज था और वह प थ्वीराज का पतन देखना चाहता था। मंदोर का राजा भी प थ्वीराज को नीचा दिखाना चाहता था। क्योंकि प थ्वीराज से उसकी पुत्री से विवाह तय करने पर भी विवाह करने से इंकार कर दिया था। अतः दोनों के बीच घोर शत्रुता हो गई। दोनों में युद्ध हुआ और मंदोर का राजा पराजित हुआ। इस विजय से प थ्वीराज को सात करोड़ रुपये का खजाना मिला जिससे अन्य हिंदू राजा भी प थ्वीराज से चिढ़ने लगे। केवल चित्तौड़ का राजा समर सिंह, जो प थ्वीराज का बहनोई था, प थ्वीराज का एकमात्र समर्थक था। कर्नल टाड भारत की इस राजनीतिक फूट का वर्णन करते हुए कहते हैं कि "जयचंद ने कई एक छोटे राजाओं को मिलाकर, अनहिल वाड़ा, पद्यम, मंदोर और धार के राजाओं के सहयोग से एक योजना तैयार की और इस योजना के अनुसार मौहम्मद गौरी द्वारा प थ्वीराज का सर्वनाश करना चाहता था। मौहम्मद गौरी को यह सब ज्ञात था और वह भारत की फूट से लाभ उठाकर अपना राज्य विस्तार करना चाहता था। अतः प थ्वीराज और मौहम्मद गौरी के युद्ध का पहला कारण भारतीय राजाओं की आपसी फूट थी।
2. ***भारत की आर्थिक सम द्धिः*** महमूद गजनी ने भारत पर 17 बार आक्रमण किया था। वह भारत से अथाह धन लूटकर गजनी ले गया। मौहम्मद गौरी भी गजनी की तरह से भारत से धन लूटना चाहता था।
3. ***राजपूतों और मुसलमानों के बीच पुरानी शत्रुताः*** गौरी शंकर ओझा के अनुसार राजपूतों और मुसलमानों के बीच पुरानी शत्रुता थी। उनके अनुसार लाहौर के गजनी वंश के शासक लूटपाट के लिए राजपूतों पर चढ़ाईयां करते रहते थे। इस प्रकार की लड़ाई में साभंर के राजा दुर्लभराय द्वितीय मुसलमानों के साथ लड़ाई में मारा गया था। अजमेर बसाने वाले अजयराज ने मुसलमानों को परास्त किया था। बीमल देव ने दिल्ली और हासी को मुसलमानों से स्वतंत्र करा लिया था। इनसे स्पष्ट है कि राजपूतों और मुसलमानों में पुरानी शत्रुता थी जो एक निर्णायक युद्ध के बिना समाप्त नहीं हो सकती थी।

4. ***धार्मिक कट्टरता:*** ए० एल० श्रीवास्तव के अनुसार प थ्वीराज और गौरी के बीच संघर्ष का मूल कारण धार्मिक कट्टरता थी। उनके अनुसार गौरी भारत में इस्लाम का प्रचार करना तथा मूर्ति पूजा का अंत करना अपना कर्तव्य समझता था। गौरी के इस कार्य में प थ्वीराज सबसे बड़ी बाधा थी। दूसरी तरफ प थ्वीराज भी अपने आप को हिंदू धर्म और संस्क ति का संरक्षक मानता था। इस प्रकार दो विरोधी विचारधाराओं की टक्कर स्वाभाविक थी।

5. ***गौरी की भारत में मुस्लिम साम्राज्य स्थापित करने की इच्छा:*** गौरी के भारत पर आक्रमण के समय समस्त मध्य एशिया पर मुसलमानों का साम्राज्य स्थापित हो गया था। भारत में भी मुसलमानों ने लाहौर को जीत लिया था। अन्य मुसलमानों की भांति गौरी भी भारत में मुसलमान शासन स्थापित कर धर्म के प्रति अपनी निष्ठा प्रकट करना चाहता था। तराईन की दूसरी लड़ाई से पहले उसने पांच विजय की थी लेकिन वह इससे संतुष्ट नहीं था। वह चाहता था कि मध्य एशिया की भांति भारत भी एक इस्लामिक देश बन जाए। यह दिल्ली व अजमेर पर स्थायी अधिकार होने पर ही संभव हो सकता था। अतः युद्ध अनिवार्य था।

6. ***गौर देश की राजनीति:*** गौरी को यह भय था कि गजनी के शासकों के वंशज कभी भी पुनः अपना राज्य स्थापित करने की चेष्टा कर सकते हैं और उसे अपने राज्य से हाथ धोना पड़ सकता है। ऐसी स्थिति में भारत विजय कर ली जाती है तो कम से कम उसका राज्य बना रहता है। इसलिए भारत पर आक्रमण करना उसकी राजनीतिक आवश्यकता थी।

7. ***प थ्वीराज की भूल:*** प थ्वीराज यदि चाहता तो अपने पड़ोसी राज्यों की सहायता से उत्तर पश्चिम के आक्रमणकारियों को रोक सकता था। लेकिन वह अपनी शक्ति पड़ोसी राज्यों के साथ लड़ने में लगा हुआ था। उसे चाहिए था कि जब गौरी ने मुलतान और भटिंडा का किला जीता तभी उस पर आक्रमण कर उसे भारत से खदेड़ देता। लेकिन जब गौरी ने गुजरात पर आक्रमण कर दिया तब भी प थ्वीराज चुप बैठा रहा। यह उसकी सबसे बड़ी भूल थी। उसे चाहिए था कि आपसी वैमनस्य को भुलाकर गुजरात की मदद करके गौरी को आगे बढ़ने से रोक देता। यदि गुजरात युद्ध में मौहम्मद गौरी को हरा दिया जाता तो वह प थ्वीराज पर कभी आक्रमण न करता।

8. ***जयचंद का षडयंत्र:*** जयचंद जो कन्नौज का राजा था, कि प थ्वीराज से शत्रुता थी। जयचंद ने कई पड़ोसी राज्यों के परामर्श से एक योजना तैयार की और इस योजना के अनुसार गौरी के द्वारा वह प थ्वीराज का सर्वनाश करना चाहता था। प थ्वीराज को भी इस योजना का पता चल गया था कि जयचंद के निमंत्रण पर मौहम्मद गौरी एक विशाल सेना लेकर दिल्ली पर आक्रमण कर रहा है। लेकिन फिर भी प थ्वीराज गौरी से लड़ने की बजाय अनहीलवाड़ा के राजा से लड़ने गया। इस प्रकार जयचंद ने प थ्वीराज के विरुद्ध षडयंत्र रचकर उसका ध्यान ही नहीं बंटाया वरन् गौरी की हिम्मत को और भी बढ़ा दिया। अतः युद्ध का तत्कालीन और अत्यंत महत्वपूर्ण कारण जयचंद की योजना थी।

प थ्वीराज और मौहम्मद गौरी के बीच में तराईन के मैदान में दो युद्ध लड़ गए।

1. ***तराईन का प्रथम युद्ध (1191 ई०)*** पश्चिमी पंजाब पर अधिकार हो जाने से गौरी के राज्य की सीमाएं प थ्वीराज के राज्य से मिल गई। 1191 ई० में गौरी ने सरहिंद पर अधिकार जमा लिया। प थ्वीराज भी उसका सामना करने के लिए चल पड़ा। दोनों सेनाओं का सामना तराईन के मैदान में हुआ। राजपूत सेना के सामने गौरी की सेना के हाथ पैर फूल गए। इस युद्ध में गौरी बुरी तरह से घायल हो गया। वह घोड़े पर से गिरने ही वाला था कि एक मुसलमान सिपाही ने रोक लिया और घोड़े को युद्ध भूमि से भगा ले गया। गौरी के भागते ही मुस्लिम सेना घबरा गई तथा भाग खड़ी हुई। गौरी के भाग जाने पर प थ्वीराज ने सरहिंद पर फिर कब्जा कर लिया।

2. ***तराईन का दूसरा युद्ध (1192 ई०):*** तराईन के प्रथम युद्ध में पराजित होने के पश्चात मौहम्मद गौरी की सेना अपने घायल सुल्तान को लेकर गजनी पहुंच गई। सुल्तान अपनी पराजय से बहुत दुखी था। उसने अपने उन अमीरों को कठोर दण्ड दिया जिन्होंने तनिक भी लापरवाही की थी। उसने अपनी पराजय का बदला लेने के

उद्देश्य से युद्ध की तैयारियां आरंभ कर दी। उसने अपनी सेना को ठीक प्रकार से संगठित व अनुशासित किया। दूसरी तरफ विजय के तत्काल बाद प थ्वीराज ने सेना संगठन की और कोई ध्यान नहीं दिया और भोग विलास में लगा रहा।

एक वर्ष के पश्चात 1192 ई० में गौरी ने एक बार फिर प थ्वीराज के राज्य की और बढ़ा। दोनों सेनाएं एक बार फिर तराईन के मैदान में आमने सामने आ डटी। युद्ध में गौरी ने चालाकी से काम लिया। उसे राजपूतों की वीरता का ज्ञान था। उसने अपनी सेना को पांच भागों में विभाजित किया और युद्ध के थोड़ी देर बाद चार भागों को पीछे भागने का आदेश दिया। पांचवां भाग एक तरफ सुरक्षित था। जब राजपूतों ने गौरी की वापस भागती हुई सेना की पीछा किया तो थोड़ी दूर जाकर गौरी की सेना ने एक बार फिर मुड़कर आक्रमण कर दिया। अभी राजपूत सैनिक संभले भी नहीं थे कि गौरी की सेना के पांचवे सुरक्षित भाग ने पीछे से उन पर आक्रमण कर दिया। राजपूत सैनिक चारों तरफ से घिर कर हताश हो गए। गोविंद राज भी युद्ध में मारा गया। टाड महोदय के अनुसार तीन दिन भीषण मारकाट हुई। तीसरे दिन राजपूत सरदार समर सिंह और उसके पुत्र कल्याण सिंह भी युद्ध में मारे गए। देखते-देखते अनेक राजपूत तलवारों की भेंट चढ़ गए। युद्ध में प थ्वीराज पराजित हुआ। कुछ विद्वान मानते है कि गौरी ने प थ्वीराज को पकड़ लिया और मार डाला। जबकि अन्य विद्वानों का विचार है कि उसे अंधा कर दिया गया और साथ में गौर ले गया और वहां उसका वध कर दिया गया।

तराईन के युद्ध के प्रभाव

1. ***भारत से चौहान राज्य का अंत:*** डॉ० स्मिथ के अनुसार "वास्तव में 1192 ई० की तराईन की लड़ाई को एक निर्णायक संघर्ष माना जा सकता है, जिसने मुसलमानों की विजय को सुनिश्चित कर दिया। स्मिथ आगे कहते हैं कि कोई भी हिंदू राजा किसी भी युग के अनुभव से लाभ उठाने को तैयार नहीं था। वे बहुत पहले सिकंदर द्वारा दिए गए सबक को भी भूल गए। समय-समय पर राजाओं द्वारा इकट्ठे किए गए सिपाही और हाथियों के समूह बड़ी आसानी से पश्चिमी आक्रमणकारियों द्वारा नष्ट कर दिए जाते थे। इन विदेशी आक्रमणकारियों ने लगभग एक जैसी युद्ध प्रणाली का प्रयोग किया और भारतीय राजाओं की सेना को पराजित किया। सदा की तरह इस बार भी विदेशी आक्रमणकारी भारत पर अपना प्रभुत्व स्थापित करने में सफल रहे। इस पराजय का सीधा परिणाम यह निकला कि चौहानों का लगभग 250 वर्ष पुराना साम्राज्य समाप्त हो गया।

2. ***भारत में मुस्लिम राज्य की स्थापना:*** तराईन के युद्ध में विजय के कारण मौहम्मद गौरी के लिए शेष भारत को जीतने का रास्ता साफ हो गया। उसके योग्य सेनापति कुतुबुद्दीन ऐबक ने 1193 ई० में दिल्ली को जीता। उसके बाद वह दोआब की ओर बढ़ा, वहां मौहम्मद गौरी ने उसके साथ मिलकर कन्नौज को जीता और जयचंद को पराजित कर मार डाला। 1197 ई० में गुजरात पर आक्रमण कर उसे जीता। उसी वर्ष अजमेर को भी मुस्लिम राज्य में मिला लिया गया। उसके बाद बिहार और बंगाल के प्रान्त व शेष शासकों को आक्रमणकारियों ने पराजित किया और उसको अपने अधीन कर लिया। इस प्रकार तराईन के द्वितीय युद्ध के बाद समस्त उत्तरी भारत पर मुस्लिम राज्य स्थापित हो गया।

3. ***अपार धन व जन की हानि:*** तराईन के युद्ध में हजारों राजपूत वीरगति को प्राप्त हुए। इस युद्ध में चित्तौड़ के राजा समरसिंह और उसका पुत्र कल्याण सिंह भी मारे गए। दिल्ली के गर्वनर गोविंदराज व उसका पुत्र चंद्रराज भी इस युद्ध में मारे गए। इन पराक्रमी वीरों के साथ हजारों राजपूत योद्धा भी इस युद्ध में मारे गए। इसके अतिरिक्त मुसलमानों ने हरियाणा को खूब लूटा और अतुल संपत्ति प्राप्त की। मारकाट और लूटपाट का यह सिलसिला यहीं समाप्त नहीं हुआ। यह तो एक शुरूआत थी। इसके बाद आक्रमणकारियों ने पूरे उत्तरी भारत को लूट कर अथाह संपत्ति प्राप्त की।

4. ***भारत में इस्लाम धर्म का प्रचार और हिंदू मंदिरों का विध्वंश:*** मौहम्मद गौरी का भारत पर आक्रमण करने का एक यह भी उद्देश्य था कि मूर्ति पूजा समाप्त करके इस्लाम का प्रचार करना। तराईन के द्वितीय युद्ध में विजय प्राप्त करने के पश्चात उसने समस्त उत्तरी भारत पर आक्रमण करके अपने अधिकार में कर लिया। उसने अपने जीते हुए राज्यों

में इस्लाम का प्रचार किया। मंदिरों को नष्ट करके मस्जिदे बनवाई गई। अजमेर में विग्रहराज चौहान द्वारा स्थापित विद्यालय को मस्जिद में बदल दिया। आज भी यह स्थान ढाई दिन के झोपड़े के नाम से विख्यात है।

5. ***भारत में बौद्ध धर्म का विनाशः*** तराईन के युद्ध में आक्रमणकारियों की विजय से बौद्ध धर्म भयंकर रूप से प्रभावित हुआ। बिहार विजय के साथ ही आक्रमणकारियों ने सारनाथ के महान बौद्ध शिक्षा विहार को नष्ट कर दिया। अधिकतर बौद्ध भिक्षुओं को मौत के घाट उतार दिया गया और जो बच गए थे वे जान बचाकर तिब्बत और नेपाल या दक्षिण भारत भाग गए। उत्तरी भारत में बौद्ध धर्म एक संगठित धर्म था। लेकिन मौहम्मद गौरी ने आक्रमणों के बाद वह नष्ट हो गया। डॉ० स्मिथ के अनुसार 1200 ई० से पहले भारत में बौद्ध धर्म के चिन्ह नजर आते हैं लेकिन 1200 ई० के बाद वे कहीं-कहीं अस्पष्ट से मिलते हैं।

अध्याय-6

हरियाणा में सुल्तानों का शासन

(Haryana During Sultanate Period)

1192 ई० में तराईन के युद्ध में विजय प्राप्त करने के पश्चात गौरी स्वयं ही विजित प्रदेश का शासक बना रहा। 1206 ई० में मौहम्मद गौरी की म त्यु के पश्चात उसका योग्य एवं चहेता दास कुतुबुद्दीन ऐबक दिल्ली का सुल्तान बना और हरियाणा उसके राज्य का एक अंग बन गया। कुतुबुद्दीन ऐबक ने उत्तर पश्चिम की तरफ से होने वाले आक्रमणों को रोकने के लिए हासी, सिरसा, रोहतक, रिवाड़ी तथा थानेसर आदि महत्वपूर्ण जगहों पर अपनी सैनिक चौकियां बनाई। ऐबक ने हरियाणा पर सैनिक कार्रवाई करके बुरी तरह दबाकर रखा। उसके शासन काल में लोगों का आर्थिक शोषण हुआ क्योंकि बरनी के अनुसार उसका विचार था कि सम द्धि विद्रोह का जन्म देती है और गरीबी स्थिरता और शांति को।

कुतुबुद्दीन ऐबक की म त्यु के बाद इल्तुतमिश गद्दी पर बैठा जिसने 1210 से 1236 ई० तक शासन किया। इसके शासन काल में पंजाब के शासक कुबेचा ने आक्रमण करके सिरसा के आसपास का क्षेत्र अपने अधीन कर लिया। लेकिन शीघ्र ही गजनी के शासक यल्दौज ने कुबेचा को हराकर पंजाब और थानेसर तक का क्षेत्र अपने अधीन कर लिया। अब यलदोज इल्तुतमिश के लिए खतरा बन गया। शीघ्र ही इल्तुतमिश ने यलदोज को युद्ध में हराकर मार डाला। मिनहास के अनुसार यह युद्ध तराईन के मैदान में हुआ। जबकि 'फतुह-उस-सलातिन के लेखक इस युद्ध को हाँसी में हुआ बताते हैं। संभवतः इस युद्ध में कुबेचा ने इल्तुतमिश की सहायता की थी अतः इल्तुतमिश ने कुबेचा को सिरसा का हाकिम नियुक्त किया। लेकिन 1227 ई० में कुबेचा ने स्वतंत्रता की घोषणा कर दी। इल्तुतमिश ने तुरंत उस पर आक्रमण करके उसको पराजित कर दिया।

इल्तुतमिश के बाद रूकुबुदीन गद्दी पर बैठा। वह अप्रैल 1236 से लेकर नवंबर 1236 तक ही रहा। वह कमजोर शासक था। उसके समय में हरियाणा में कई स्थानों में विद्रोह हुए जैसे हाँसी का विद्रोह। रूकुबुदीन इस विद्रोह को दबाने के लिए जब दिल्ली से निकला तो पीछे से इल्तुतमिश की पुत्री रजिया ने दिल्ली की सल्तनत पर कब्जा कर लिया। रजिया ने 1236 से 1240 ई० तक शासन किया। रजिया के शासन काल में जनता सरदारों के अनेक विद्रोह हुए। रजिया ने बागी अमीरों तथा सरदारों के विद्रोह से निपटने की काफी कोशिश की। रजिया का सेनापति कुतुबुद्दीन हसन गौरी जब रणथंबोर पर आक्रमण करने जा रहा था तो मेवात की वीर जनता ने गुरिल्ला युद्ध पद्धति से उसके नाक में दम कर दिया और परिणामस्वरूप शाही सेना को खाली हाथ लौटना पड़ा। जब रजिया उत्तरी हरियाणा में विद्रोह को दबाने में व्यस्त थी तो 14 अक्टूबर 1240 ई० के रणोश्वर जाटों और राजपूतों ने उसका वध कर दिया।

रजिया के बाद बहराम (1240 से 1242) और मसूद (1242-1246) के शासन काल में हरियाणा के इक्तेदार लगभग स्वतंत्र ही रहे और मनमाने ढंग से काम करते रहे। नसीरूदीन महमूद (1246-1266) ने इन विद्रोह को दबाने की काफी कोशिश की इसके समय में हरियाणा में मेवातियों ने विद्रोह कर दिया। इनके विद्रोह को दबाने के लिए सुल्तान ने हाँसी के मुक्ति बलबन को बुलवाया। बलबन कुछ हद तक इस पर काबू करने में कामयाब भी रहा लेकिन उनको वह पूरी तरह कुचल न सका।

खिलजी वंश

बलबन के बाद उसके उत्तराधिकारी अयोग्य साबित हुए। अतः मेवात की भांति हरियाणा में अन्य स्थानों पर भी बगावतें होने लगी। अहीरवाल के अहीर, रोहतक और हिसार क्षेत्र के जाट और उत्तरी हरियाणा के राजपूत और जाटों ने विद्रोह के झण्डे खडे कर दिए। अतः ऐसी स्थिति में 1290 ई० में एक खिलजी सरदार जलालुदीन ने बलबन के एक उत्तराधिकारी कैकुबाद

को मारकर दिल्ली में खिलजी वंश की स्थापना की। जलालुदीन ने 1290 से 1296 तक छः वर्षो तक शासन किया। जलालुद्दीन ने सारे हरियाणा में सख्त सैनिक निगरानी से एक बार फिर व्यवस्था स्थापित की लेकिन मेवात इस समय भी बगावत करता रहा। अतः स्वयं सुल्तान ने मेवात पर आक्रमण करके उसे शांत किया।

जलालुद्दीन को मारकर अलाउद्दीन (1296-1316) दिल्ली का सुल्तान बना। अलाउद्दीन के शासन काल में शांति बनी रही क्योंकि उसने लोगों का भारी शोषण किया और सख्ती रखी जिससे की लोगों को बगावत करने का मौका ही नहीं मिला। अलाउदीन के समय 1305 ई० में मंगोलों ने हरियाणा पर आक्रमण किया था। जिन्हें उसके बहादुर हिंदू जनरल नानक ने हाँसी और हिसार के बीच रोककर पराजित किया। मंगोलों के दो सरदारों अली बेग और तरताक को गिरफ्तार कर लिया तथा उनके 3000 हजार घोड़े छीनकर अलाउदीन को भेंट कर दिए।

अलाउदीन की म त्यु के बाद अमीरों ने उसके छः वर्षीय पुत्र शाहबुदीन उमर को शासक बनाकर मलिक काफुर को उसका संरक्षक बना दिया। लेकिन 35 दिन बाद ही सैनिकों ने मलिक काफूर का वध कर दिया और मुबारक शाह को उसके छोटे भाई उमर का संरक्षक बना दिया। लेकिन मुबारकशाह के शीघ्र ही छोटे भाई उमर की हत्या करके राज्य हथिया लिया।

मुबारकशाह (1316-20) ने अलाउद्दीन द्वारा लगाए गए करो को कम करके लोगों का दिल जीतने का प्रयास किया। उसने कुछ अन्य रियायतें भी दी। लेकिन 1320 ई० में मुबारकशाह के सेनापति नसीरूदीन खुसरोशाह ने उसका वध कर दिया और स्वयं दिल्ली का सम्राट बन बैठा।

तुगलक वंश

लाहौर और दिपालपुर के गर्वनर गाजी मलिक जो बाद में ग्यासुदीन के नाम से दिल्ली का शासक बना, खुसरो मलिक को शासक रूप में नही देख सका और वह दिल्ली की ओर बढ़ा। रास्ते में उसके पुत्र जौना (मुहमद तुगलक) की सेनाएं भी उसके साथ आ मिली। उसके विश्वास पात्र सरदार मोहम्मद सरतीह ने आगे बढ़ कर सिरसा पर अधिकार कर लिया ताकि दिल्ली विजय का रास्ता साफ हो सके। इस कार्य के लिए गाजी मलिक ने चालाकी से काम लिया। उसने हरियाणा के स्थानीय खोखर सरदारों मूलचंद, नीजु और सहजराय से सहायता मांगी और मेवातियों से भी सहायता मांगी। खुसरोशाह और तुगलक की सेनाओं ने सरसुती के स्थान पर युद्ध हुआ। इस युद्ध का विवरण समकालीन इतिहासकारों, बरनी, इसामी तथा अमीर खुसरो तीनों ने दिया है। उनके अनुसार खोखरो के पहले ही आक्रमण ने दिल्ली की सेना को हिला कर रख दिया। इसामी के अनुसार खोखर सरदार मूलचंद ने आगे बढ़कर अपने भाले का प्रहार सीधा दिल्ली की सेना के सेनापति खानखाना के छत्र पर किया और छत्र को उठाकर ग्यासुदीन तुगलक के सिर पर रख दिया। इस प्रकार ग्यासुदीन को पहला शाही चिन्ह खोखर सरदार के हाथों मिला। शासक बनने के बाद ग्यासुदीन तुगलक ने हरियाणा पर विशेष ध्यान देकर व्यवस्था को सुचारू रूप से चलाने के लिए कठोर कदम उठाए।

ग्यासुदीन की म त्यु के बाद उसका पुत्र मुहमद तुगलक (1325-1351) गद्दी पर बैठा। मुहमद तुगलक ने अलाउदीन खिलजी की नीति अपनाई। इसके विरुद्ध हरियाणा में बगावत हुई। जिन्हें स्वयं सुल्तान को दबाने के लिए जाना पड़ा। काफी संघर्ष के बाद सुल्तान विजयी रहा।

मुहमद तुगलक के समय में इब्न बतुता नामक अरब यात्री ने भारत की यात्रा की। उसके अनुसार सिरसा और हासी उत्तरी भारत के मुख्य शहर थे। सिरसा अपने लाल रंग के चावलों के बारे में मशहूर था जो इसके आसपास काफी मात्रा में पैदा होते थे। इन चावलों की दिल्ली के अमीर घरानों में काफी मांग रहती थी। हाँसी को वह एक सघन जनसंख्या वाला सुंदर शहर बतलाता है जिसके चारों तरफ एक दिवार बनी हुई थी। और इसे तोमरों ने बनाया था।

मुहमद तुगलक के बाद फिरोज तुगलक (1351 से 1388) दिल्ली का सुल्तान बना। फिरोज तुगलक को हरियाणा का क्षेत्र बहुत पसंद था। फिरोज तुगलक ने हिसार फिरोजा नामक एक नया इक्ता तथा शहर बसाया। उसने इस शहर में एक महल और तालाब बनवाये। तथा हिसार के आसपास के जंगलों में ही वह शिकार खेलता था। उसने हिसार फिरोजा तक पानी पहुंचाने के लिए यमुना व सतलुज से क्रमशः राजीवाह और नहरे निकलवाई। इनसे हरियाणा में क षि में बहुत उन्नति हुई।

यद्यपि फिरोज तुगलक ने हरियाणा वासियों को कुछ आर्थिक राहतें तो दी लेकिन धार्मिक क्षेत्र में हिंदूओं पर अत्याचार किए,

जिसके कारण हरियाणा के लोगों ने फिरोज के विरुद्ध बगावत की। उसने गोहाना के हिंदुओं को कठोर दण्ड दिए। हिसार तथा सफीदो के हिंदू विद्रोह को सुल्तान में स्वयं सेना द्वारा दबाया।

फिरोज तुगलक के प्रयत्नों के परिणामस्वरूप अनेक हिंदू अपना धर्म परिवर्तन करके मुसलमान बन गए। मेवात में काफी लोगों ने इस्लाम स्वीकार कर लिया। मेवात में कोटला के पास के एक जमींदार सरदार बहादुर नादिर जो पहले हिंदू था ने इस्लाम अपना लिया। वह उत्तरी मेवात में काफी प्रभावशाली थे। इसके मुसलमान बनने से दो महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ा। एक तो बहादुर नादिर का अनुशरण करते हुए काफी मेवाती जनता ने इस्लाम ग्रहण कर लिया। दूसरे मेवात में विद्रोह समाप्त हो गए।

1388 ई० में फिरोज तुगलक की म त्यु हो गई। उसके बाद तुगलक शाह, ग्यासुदीन द्वितीय के नाम से दिल्ली का सुल्तान बना। बहादुर नादिर उसका अत्यधिक विश्वास पात्र था। 16 फरवरी 1389 को अबुबक्र ने ग्यासुदीन की हत्या कर दी और स्वयं दिल्ली का सुल्तान बन गया। अबुबक्र अधिक दिन तक शासन नहीं कर पाया क्योंकि उसको पता लग गया था कि कुछ अमीर, अधिकारी तथा गुलाम उसके विरुद्ध षड्यंत्र रच रहे हैं। ऐसी स्थिति में वह दिल्ली से भागकर बहादुर नादिर के पास कोटला चला गया। पीछे से सत्ता के लिए छिड़े संघर्ष में नसीरूदीन मुहमदशाह सफल रहा जिसमें 1390 से 1394 तक शासन किया। नसीरूदीन ने सुल्तान बनने पर अबुबक्र पर आक्रमण किया जिसे बहादुर नादिर ने अपने ऊपर आक्रमण समझा और सुल्तान का डटकर मुकाबला किया। लेकिन बहादुर नादिर पराजित हुआ उसे बंदी बनाकर दिल्ली लाया गया। लेकिन सुल्तान ने मेवातियों की प्रतिक्रिया से डरते हुए उसे माफ कर दिया।

नसीरूदीन मुहम्मदशाह की म त्यु के बाद अलाउदीन सिकंदर शाह गद्दी पर बैठा लेकिन बीमारी के कारण 8 मार्च 1394 को उसकी म त्यु हो गई। उसके बाद नसीरूदीन महमूद 1394-1414 दिल्ली का शासक बना। लेकिन सुल्तान के विरोधियों ने नुसरत शाह को दिल्ली का शासक बना दिया। इसमें बहादुर नादिर ने नसीरूदीन का पक्ष लिया। सुल्तान ने नादिर को दिल्ली दुर्ग का रक्षक बना दिया। लेकिन 1398 ई० मे जब तैमूर ने दिल्ली पर आक्रमण किया तो नादिर कोटला चला गया।

तैमूर का आक्रमण

तैमूर मध्य एशिया में समरकंद का रहने वाला था। 1398 ई० में उसने भारत पर आक्रमण कर दिया। वह अफगानिस्तान को जीतता हुआ सिंधु नदी को पार करके पंजाब होता हुआ राजस्थान में भटनेर पहुंचा। यहां पर राजपूतों से युद्ध के बाद घघर नदी के साथ-साथ हरियाणा में प्रविष्ट हुआ। यहां रानियां होता हुआ बिना किसी विरोध के सिरसा पहुंच गया। सिरसा में तैमूर ने काफी लूटपाट तथा मारकाट की। कुछ समय रूकने के बाद वह फतेहाबाद पहुंचा। यहां पर भी तैमूर ने सिरसा वाली बात को दोहराया। इसके बाद तैमूर अहरुनी के कस्बे में पहुंचा यहां के अहीरों ने तैमूर का सामना किया लेकिन पराजित हुए। तैमूर ने कस्बे में आग लगाकर उजाड़ दिया। इसके बाद तैमूर टोहाना पहुंचा। यहां के जाटों के साथ तैमूर का घमासान युद्ध हुआ लेकिन जाट पराजित हुए। यहां से तैमूर का समाना होते हुए कोटिल के पास घघर के पुल को पार किया।

इसके बाद वह करनाल में प्रविष्ट हुआ। कैथल, असंद, तुगलकपूर, सालवान, आदि को लूटता हुआ वह 3 दिसंबर 1398 को पानीपत पहुंचा। पानीपत के निवासी सुल्तान के आदेशानुसार पहले ही शहर छोड़कर जा चुके थे। तैमूर ने पानीपत को जी भरकर लूटा। तैमूर ने यहां से 1,60,000 मन गेहूं इकट्ठा किया। तैमूर का अगला पड़ाव यमुना नदी के किनारे पर पल्ला गांव था। यहां से उसने सैनिकों के लिए प्राप्त अन्न और घोड़ों के लिए पर्याप्त मात्रा में चारा इकट्ठा किया। इसके बाद उसने दिल्ली पर आक्रमण किया।

तैमूर हरियाणा में लगभग एक महीना रहा। इस दौरान हरियाणा वासियों ने अकेले ही अपने दम पर खूब विरोध किया। दिल्ली के सुल्तान ने उन्हें कोई सहायता नहीं दी। तैमूर के जाने के पश्चात उत्तरी भारत में अराजकता तथा अशांति फैल गई। इसका फायदा हरियाणा वासियों ने भी खूब उठाया। मेवात में बहादुर नादिर और उसके पुत्र कद्दूखां और जलाखां स्वतंत्र हो गए। कलायत के मोहन सिंह मंढ़ार भी स्वतंत्र हो गए।

सैयद वंश

तुगलक वंश के पतन के पश्चात 1414 ई० में खिज्र खां ने सैयद वंश की नींव रखी। इस वक़्त तक हरियाणा में कई स्वतंत्र राज्य स्थापित हो चुके थे। खिज्र खां ने इन्हें दबाने की कोशिश की लेकिन वह सफल नहीं हो सकता। 1421 में उसकी म त्यु

हो गई। उसकी म त्यु के पश्चात मुबारिक शाह (1421-1434) दिल्ली का सुल्तान बना। इसके शासन काल में विशेष राजनीतिक घटना नहीं घटी। मुबारिक शाह की म त्यु के पश्चात 1434 ई० में उसका भतीजा मुहमद शाह दिल्ली का सुल्तान बना। इसके काल में भी बगावतों को दौर जारी रहा। मुहमदशाह की म त्यु 1445 ई० में हो गई। इसके पश्चात उसका पुत्र अलाउदीन आलमशाह दिल्ली का शासक बना। यह इस वंश का सबसे अयोग्य शासक था। आलमशाह दिल्ली छोड़कर बदायूं में रहने लगा। पीछे से बहलोल लोधी ने अपने आपको दिल्ली का स्वतंत्र शासक घोषित कर दिया।

लोधी वंश (1451 - 1520)

लोधी वंश की नींव बहलोल लोधी (1451-1489) ने रखी। बहलोल लोधी के समय में हरियाणा में कुछ मुक्तियों ने स्वतंत्र होने का प्रयास किया। इनमें सबसे तीखा विद्रोह हिसार के मुक्ति तातार युसुफ का था। इस विद्रोह को शहजादा निजाम खां ने कुचल दिया था। यहीं निजाम खां आगे चलकर सिकंदर लोधी के नाम से दिल्ली का सुल्तान बना।

सिकंदर लोधी (1517-1526) अपनी धर्माघता के कारण हरियाणा के हिंदुओं पर अत्याचार किए। परिणामस्वरूप हरियाणा के हिंदू उसके विरोधी हो गए। कलायत के आसपास के मंढोरो ने सिकंदर लोधी को खूब तंग रखा। लेकिन सिकंदर की सख्ती के कारण सफलता नहीं मिल सकी।

सिकंदर की म त्यु के पश्चात इब्राहिम लोधी (1517-1526) दिल्ली का सुल्तान बना। लेकिन वह योग्य शासक नहीं था। उसने अपने घमण्डी स्वभाव के कारण सभी वर्गो को नाराज कर लिया। यही कारण था कि जब बाबर ने भारत पर आक्रमण किया तो पानीपत के युद्ध में उसकी हार हुई।

सल्तनत काल में मेवातियों के विद्रोह

आधुनिक हरियाणा के फरीदाबाद, गुडगांवा, महेंद्रगढ़ और राजस्थान का अलवर जिलों को मेवात क्षेत्र कहा जाता है। इस क्षेत्र में रहने वाले लोग मेवाती कहलाते हैं। यहां के लोग बड़े वीर और स्वतंत्रता पसंद थे। दिल्ली के सल्तानो के समय में इन लोगों ने समय-समय पर प्रशासन की ज्यादतियों के खिलाफ विद्रोह किया और दिल्ली के सुल्तानों की नींद हराम रखी।

समकालीन लेखक मिनहास के अनुसार दिल्ली के तीसरे सुल्तान यानि नसीरूदीन महमुद के गद्दी पर बैठते ही मेवातियों ने अपने नेता मालवा के नेत त्व में विद्रोह कर दिया। सुल्तान ने विद्रोह को दबाने की कोशिश की लेकिन वह कामयाब नहीं हो सका। मेवात का पैत क गांव युद्ध क्षेत्र बन गया। इसी समय हरियाणा के अन्य क्षेत्रों में भी विद्रोह हो गए। इन मेवातियों का साहस इतना बढ़ गया था कि इन्होंने प्रधान सेनापति के ऊंटो के कारवां पर हासी के नजदीक आक्रमण किया और उसके ऊंट तथा अन्य सामान लूटकर ले गए। इस समय नसीरूदीन इनका कुछ नहीं बिगाड़ सका क्योंकि उसकी सेनाएं सीमा पर हो रहे मंगोलों के आक्रमण के बचाव में लगी हुई थी।

जनवरी 1260 ई० में जब सुल्तान को इन आक्रमणों से फुर्सत मिली तो उसने उलुग खां (बलबन) बलबन को मेवातियों पर आक्रमण करने के लिए भेजा। मिनहास इस आक्रमण का सुंदर व विस्तार से वर्णन करता है। उसके अनुसार बलबन ने अपने सैनिकों के बीच में घोषणा की कि जो सैनिक किसी मेवाती का सिर लेकर आएगा उसे चांदी का एक टकां तथा जिंदा पकड़कर लाएगा उसे दो टके दिए जाएंगे। यह आक्रमण लगभग 20 दिन चला। मेवाती बड़ी बहादुरी से लड़े लेकिन बलबन की सेना अधिक होने के कारण वे हार गए। मलुका और उसके 250 साथियों को गिरफ्तार कर लिया गया। नसीरूदीन इन विजय से बड़ा प्रसन्न हुआ। उसने दिल्ली में होज-ए-रानी के स्थान पर 9 मार्च 1260 ई० को एक विशेष दरबार लगाया। बलबन तथा उसकी सेना के सरदारों को बहुमूल्य उपहार दिए गए। इसके दो दिन बाद 11 मार्च 1260 ई० को बंदियों को हाथियों के पैरों के नीचे कुचलवा दिया गया। उनके सरदार मलका की चाकू से खाल उतरवाई गई और घास फूंस भरकर शहर के मुख्य द्वार पर लटका दिया गया। बरनी अपनी 'तारीखे फिरोजशाही में लिखता है कि उसने इतना भंयकर द श्य जितना दिल्ली के द्वार होज-ए-रानी पर देखा पहले कभी नहीं देखा था।

सुल्तान का सोचना था कि इतना कठोर दण्ड पाने के बाद मेवाती हमेशा के लिए शांत हो जाएंगे। लेकिन उसका ऐसा सोचना गलत साबित हुआ। सुल्तान की सेनाओं के वापस लौटते ही मेवातियों ने जुलाई 1260 को फिर विद्रोह कर दिया। सुल्तान को इस विद्रोह को दबाने के लिए एक बार फिर से बलबन को भेजना पड़ा। मिनहास के अनुसार बलबन ने 12,000 आदमी

औरतों और बच्चों को मौत के घाट उतार दिया। लेकिन बलबन के मेवात से वापस लौटते ही एक बार फिर विद्रोह के स्वर गूंजने लगे।

1266 ई० में महमूद की म त्यु हो गई इसके बाद बलबन सुल्तान बना। सुल्तान बनते ही बलबन ने मेवात के जंगलों को साफ करवाया क्योंकि इनमें मेवाती युद्ध के बाद छिप जाते थे। उसके बाद मेवात पर आक्रमण करके एक वर्ष तक मेवातियों को मौत के घाट उतारा जाता रहा। मेवाती वीरतापूर्वक लड़े। इस युद्ध में सुल्तान के भी एक लाख आदमी मारे गए। भविष्य में विद्रोह को रोकने व मेवात में स्थाई शांति स्थापित करने के लिए गोपालगीर में बलबन ने एक दुर्ग का निर्माण करवाया तथा वहां पर स्थाई सेना की एक टुकड़ी रख छोड़ी। अनेक स्थानों पर थाने स्थापित किए गए, बलबन इनका निरीक्षण खुद करता था। लेकिन मेवात में यह शांति अधिक दिनों तक कायम नहीं रह सकी। बलबन के शासन के अंतिम दिनों में मेवाती फिर विद्रोही हो गए। सर वुलजले हेग के अनुसार "इन कठोर उपायों के बावजूद भी बलबन मेवात को पूरी तरह शांत नहीं कर सका।"

खिलजी सुल्तानों के काल में मेवात में विद्रोह हुए या नहीं साक्ष्यों के अभाव में कुछ नहीं कहा जा सकता। लेकिन फिरोज तुगलक के समय में मेवातियों ने अपने नेता समर पाल के नेत त्व में विद्रोह कर दिया। यह कोटका का जमींदार था। फिरोज ने इससे बात करके इससे इस्लाम धर्म ग्रहण करवा लिया। अब इसे बहादुर नादिर के नाम से जाना जाने लगा। इसके इस्लाम कबूल करने से दो प्रभाव पड़े तो काफी मेवाती जनता ने उसका अनुशरण करते हुए इस्लाम धर्म कबूल कर लिया। दूसरे मेवात क्षेत्र में शांति स्थापित हो गई।

धर्म परिवर्तन के बाद बहादुर नादिर ने दिल्ली के दरबार में अपनी जगह बना ली तथा वहां की राजनीति में सक्रिय भाग लेने लगा। समसामयिक इतिहासकार कहते हैं कि जब ग्यासुदीन द्वितीय सुल्तान दिल्ली का शासक बना तो बहादुर नादिर उसका विश्वासपात्र था। जब अबुबक्र ग्यासुदीन की हत्या करके दिल्ली का सुल्तान बना तो बहादुर नादिर उसका भी क पा पात्र बन गया। लेकिन अबुबक्र एक कमजोर शासक सिद्ध हुआ और वह दरबारियों के विद्रोह के भय से भाग कर बहादुर नादिर के पास कोटला चला गया। पीछे से नसीरूदीन मुहमद शाह सुल्तान बना। उसने अबुबक्र पर आक्रमण किया। बहादुर नादिर ने इसे अपने ऊपर आक्रमण समझा और सुल्तान का डटकर मुकाबला किया। लेकिन जीत सुल्तान की ही हुई। बहादुर नादिर को पकड़कर दिल्ली लाया गया। लेकिन सुल्तान ने मेवातियों की प्रतिक्रिया के भय से उसे रिहा कर दिया।

रिहाई के थोड़े दिन बाद बहादुर नादिर ने अपनी शक्ति को मजबूत करके स्वतंत्रता की घोषणा कर दी। उसने दूर-दूर तक लूटमार शुरू कर दी। यहां तक कि दिल्ली के कई भागों को भी लूटा। अगस्त 1393 ई० में सुल्तान ने बहादुर नादिर को फिर पराजित किया और राजधानी लौट आया। यहां आकर वह बीमार पड़ गया। सुल्तान की बिमारी की खबर पाकर बहादुर नादिर ने फिर से कई प्रदेशों को लूटना शुरू कर दिया। अतः सुल्तान ने बीमारी की हालत में ही मेवात पर आक्रमण कर दिया। बहादुर नादिर पराजित हुआ और कोटला के दुर्ग पर आक्रमण करके विजय प्राप्त कर ली। लेकिन बहादुर नादिर ने वहां से निकलकर 'जहर' नामक पर्वतों में जा छिपा। सुल्तान वहां से लौट आया और कुछ दिन बाद उसकी म त्यु हो गई।

1394-95 ई० में एक बार फिर दिल्ली के दरबार की राजनीति षड़यंत्रों से भर गई। अलाउदीन के बाद नसीरूदीन महमुद दिल्ली का सुल्तान बन गए। बहादुर नादिर ने नसीरूदीन का पक्ष लिया। सुल्तान ने बहादुर नादिर को दिल्ली के दरबार का रक्षक बना दिया। यहां वह तीन वर्ष तक रहा। लेकिन तैमूर के आक्रमण के समय कोटला वापस लौट आया।

तैमूर ने नादिर की स्थिति को जानकर उसे आदरपूर्वक अपने पास बुलवाया और मेवात पर आक्रमण नहीं किया।

सैयद सुल्तान मुबारक शाह (1421-34) के समय में मेवातियों ने एक बार फिर विद्रोह कर दिया। सुल्तान ने 1424 ई० उनके खिलाफ एक सेना भेजी। मेवाती ने अपने घर और जमीनों को छोड़कर एक बार फिर 'जहर' नामक पर्वत पर भाग गए इससे मजबूर होकर शाही सेनाओं को वापस लौटना पड़ा। मुबारक शाह के मेवातियों के खिलाफ 1425, 1427, 1428 ई० में कई बार सेना भेजनी पड़ी। बहादुर नादिर के पोतों जालु व कहु ने शाही सेनाओं का डटकर मुकाबला किया। इस युद्ध में कद्दु पकड़ा गया और 1427 ई० में उसको मौत के घाट उतार दिया गया। लेकिन बादली जालु ने मुबारक के खिलाफ संघर्ष जारी रखा।

1451 ई० में मेवातियों ने अपने नेता अहमद खां मेवाती के नेत त्व में एक बार फिर विद्रोह कर दिया। बहलोल लोधी ने उनके खिलाफ एक सेना भेजी मेवाती वीरता से लड़े। लेकिन अंत में अहमद खां को आत्मसमर्पण करना पड़ा और उसने चाचा मुबारक

खां को दिल्ली के दरबार में भेजा तथा उसे अपना एक परगना भी छोड़ना पड़ा। जबकि बाकी की जमीन उसी के पास रहने दी गई लेकिन जब बहलोल लोधी का पता चला कि अहमदखां उसके खिलाफ जौनपुर के हुसैनशाह की सहायता कर रहा है। तो उसकी सारी संपत्ति छीन ली गई तथा उसे अधीनता स्वीकार करने के लिए मजबूर किया गया।

सिकंदर लोधी के समय में आलम खां मेवाती दिल्ली के दरबार का एक महत्वपूर्ण अमीर था। इब्राहिम लोधी के समय में हसन खां मेवाती ने अपने आपको स्वतंत्र घोषित कर दिया। उसने एक बड़े राज्य की स्थापना की जिसमें मेवात अर्थात गुडगांवा, फरीदाबाद, नारनौल कन्नौज और अलवर के आसपास के क्षेत्र शामिल थे। उसके पास 10,000 मेवातियों की एक सेना थी तथा दिल्ली के सुल्तान तथा पड़ोस के राजदूत सरदारों के साथ उसकी मित्रता थी। हसन खां दिल्ली सल्तनत का हमेशा वफादार बना रहा और पानीपत की लड़ाई में इब्राहिम लोधी का साथ दिया।

सुलतानों के अधीन प्रांतीय प्रशासन

शासन को सुचारू रूप से चलाने के लिए दिल्ली के सुलतानों ने अपने राज्य को कई प्रदेशों में बांट दिया था। इनकी इक्ता कहा जाता था। अलाउदीन खिलजी के समय में इनका नाम सूबा पड़ गया। इन इक्तों के प्रशासन का भार विश्वास पात्र तुर्क अमीरों को दिया जाता था। जिन्हें मुक्ति या वली कहा जाता था। अलाउदीन खिलजी के समय में इन्हें सूबेदार कहा जाने लगा। सभी इक्तों का आधार एक जैसा न होकर छोटा बड़ा था।

हरियाणा को सबसे पहले अल्तमश ने सीधे अपने अधीन किया। अल्तमश के समय में महत्वपूर्ण इक्ता, दिल्ली, हासी, सिरसा, पीपली, रेवाड़ी, नारनौल और पलवल थे। इनमें दिल्ली का इक्ता सबसे महत्वूर्ण था। यह पूर्व में यमुना नदी से लेकर पश्चिम में हासी तक तथा उत्तर में शिवालिक की पहाड़ियों से लेकर दक्षिण में मेवात तक फैला हुआ था और यह सीधा सुल्तान के नियंत्रण में था। हासी के इक्ता का अपना आर्थिक महत्व था क्योंकि यह अफगानिस्तान जाने वाले व्यापारिक मार्ग पर स्थित था इसलिए सुल्तान ने अपने विश्वासपात्र अमीरों नसीरूदीन महमुद (1226-28) को इसका मुक्ति नियुक्त किया। इन इक्तों में पलवल का इक्ता सबसे छोटा था इसलिए बाद में इसे दिल्ली में शामिल कर लिया गया।

अल्तमश के उत्तराधिकारियों के काल में हाँसी तथा रेवाड़ी के इक्ते बलबन जैसे योग्य प्रशासक को सौंपे गए। बलबन ने कैथल के इक्ता का मुक्ति जलालुदीन खिलजी को नियुक्त किया था। इब्न बतुता जब भारत आया उस समय हाँसी का इक्तादार मलिक मुअजम होशांगा था। बाद में इब्राहिम खारेतादार को इक्तादार बनाया गया और सिरसा के इक्ता को भी उसके नियंत्रण में दे दिया गया। फिरोज तुगलक के समय में हाँसी के इक्ता को तोड़कर हिसार फिरोजा के नाम से एक नया इक्ता बनाया गया।

इक्ते के मुख्य अधिकारी मुक्ति के मुख्य कार्य इस प्रकार होते थे। (i) इक्ते में शांति तथा व्यवस्था बनाए रखना। (ii) भूमिकर एकत्रित करवाना। (iii) शाही आदेशों को लागू करना। (iv) न्याय वितरण करना। (v) सुल्तान की आज्ञा अनुसार अभियान करना। (vi) बादशाह को समय पर सहायता देना। दूर-दराज के इक्तों पर शासन करने वाले मुक्तियों को कुछ विशेष शक्तियां दी गई थी।

इक्तों के प्रशासन पर नियंत्रण रखने के लिए केंद्र के कई कर्मचारी इक्तों में नियुक्त होते थे। इनमें साहिबे दिवान या ख्वाजा प्रांतीय आरिज इत्यादि मुख्य होते थे। इनका संबंध सीधा केंद्र से होता था तथा मुक्ति का इन पर नियंत्रण नहीं होता था। इस प्रकार प्रत्येक प्रांतिय इक्ते का विभाग उसी प्रकार के केंद्रीय विभाग के साथ संबंधित था। उदाहरण के लिए इक्ते का प्रमुख सैन्य अधिकारी अपने कार्य के लिए दिवाने ऊर्ज के प्रति उतरदायी था। इसी प्रकार राजस्व विभाग में काम करने वाले कर्मचारी दिवाने-वजारत के साथ संबंधित थे।

न्याय वितरण के कार्य में मुक्ति का सहायता काजी करता था। काजी केंद्र द्वारा मनोनित होता था। वह प्रायः शरीयत को सामने रखकर न्याय करता था। हिंदुओं के झगड़ों का फैसला शास्त्रों और परंपराओं के आधार पर होता था। मुक्ति के पास अपनी एक स्थाई सेना होती थी। सेना का खर्च इक्ते की आय में से काटकर बाकी को शाही खजाने में जमा कर दिया जाता था। यह सेना जरूरत के समय सुलतान की सहायता के लिए भेजी जाती थी।

कई बड़े-बड़े इक्तों के मुक्ति के पास नायब मुक्ति भी रखते थे। हाँसी और सिरसा के मुक्तियों के पास नायाब मुक्ति भी होते थे। जब बलबन स्वयं हासी और रेवाड़ी का मुक्ति था तब उसके पास भी नायब मुक्ति थे।

कोई भी मुक्ति निरंकुश व स्वेच्छाधारी नहीं हो सकता था। सुल्तान का गुप्तचर विभाग उसके प्रत्येक कार्य की रिपोर्ट सुल्तान तक पहुंचाता रहता था। अगर कोई मुक्ति शक्ति का दुरूपयोग करता पाया जाता था तो सुल्तान उसे दण्ड देता था तथा पद से हटा देता था।

शिकः इक्तों को आगे शिको में बांटा गया था। शिक के मुख्य प्रशासनिक अधिकारी को शिकदार कहा जाता था। कहीं-कहीं इन्हें आमिल और नाजिम भी कहा गया है। शिकदार की नियुक्ति सुल्तान ही करता था और उसकी मर्जी से ही वह पद पर बना रह सकता था। शिकदार अपने शिक में शांति बनाए रखता था तथा राजस्व की वसूली करता था। इन दोनों कार्यो के लिए उसके पास कई कर्मचारी होते थे। शिकदार शिक में न्याय का कार्य भी करता था।

ग्रामः प्रशासन की सबसे छोटी ईकाई ग्राम होते थे। गांव का प्रबंध मुकद्दम करता था। वह गांव का मुखिया भी होता था। गांव में पटवारी भी होता था जिसके पास भूमि का रिकार्ड होता था। सुल्तान या अन्य कोई भी अधिकारी गांव के मामलों में हस्तक्षेप तब तक नहीं करता था जब देय राजस्व की अदायगी होती रहती थी। मुकदम अपने गांव में माल की उगाही करके सरकारी कारकुनो के हवाले कर देता था। गांव में न्याय का कार्य पंचायतों द्वारा किया जाता था।

सल्तनत काल में आर्थिक परिवर्तन

भारत के राजनैतिक इतिहास में दिल्ली सल्तनत के आगमन की घटना बहुत महत्वपूर्ण थी। यह एक प्रमुख प्रश्न है कि सल्तनत की स्थापना से देश के इतिहास में कोई मुख्य परिवर्तन आया या नहीं। डी० डी० कौशाम्बी के अनुसार इस्लामिक आक्रमणकारियों के आने से भारतीय सामंतवाद में पहले से चले आ रहे कुछ तत्वों को बल मिला, किंतु दिल्ली सल्तनत के संबंध में कोशाम्बी का ज्ञान बहुत ही कम था। और ऐसा लगता है कि उनका भाव कुछ टिप्पणी करने तक ही सीमित था। यह टिप्पणी भी कुछ चुने हुए प्रभावों पर आधारित थी। अब इन इतिहासकारों की संख्या बढ़ गई है। जिनके मतानुसार सल्तनत की स्थापना से भारत के आर्थिक इतिहास में एक नए परिवर्तन का सूत्रपात हुआ। इनके अनुसार तुर्को ने समाज के आर्थिक हित को आगे नहीं बढ़ाया परंतु उनके कारण मानवीय और भौतिक स्त्रोतों का विघटन शुरू ही गया। प्रो० ललनजी गोपाल के अनुसार मुसलमानों के भारत में आने से यहां के लोगों में गरीबी शुरू हो गई। प्रो० के० एस० लाल ने भी इसी तरह की अद्‌भूत खोज की है। जिसके अनुसार सुल्तानों ने देश की जनसंख्या का एक तिहाई भाग खत्म कर दिया। ये दोनों इतिहासकार इस मत का दावा करते है कि मुसलमानों के आक्रमण के कारण देश की आर्थिक स्थिति पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ा। प्रो० मोहम्मद हबीब ने ऐसा मत व्यक्त किया है जो कि प्रो० लाल और प्रो० ललनजी गोपाल के मत के विपरित है। उनके अनुसार दिल्ली सल्तनत की स्थापना के साथ-साथ जो आर्थिक परिवर्तन आए वे बहुत ही महत्वपूर्ण थे। उनके सुल्तान महमूद गजनवी व दूसरे लेखों से ऐसा प्रकट होता है कि वे मध्यकालीन मुस्लिम सभ्यता के नकारात्मक पहलूओं के प्रति काफी जागरूक है। मुसलमानों द्वारा किए गए आक्रमणों के कारण जो तोड़फोड़ हुई। वह उनके प्रति भी काफी जागरूक है। फिर भी हबीब को विश्वास था कि नये राज्य उखाड़े गए पुराने राज्य से काफी भिन्न था। इस नये राज्य में कुछ नई राजनीतिक शक्तियों को प्रोत्साहन मिला जिसके कारण पहले वाली आर्थिक अवस्था से सुद ढ़ और उचित आर्थिक संगठन कायम हुआ। प्रो० हबीब के अनुसार फसलों का विस्तार हुआ और क षि संबंधी महत्वपूर्ण परिवर्तन आए। इन परिवर्तनों के लाने के पीछे नए शासक वर्ग का कोई मानवीय द ष्टिकोण नहीं था। परिस्थितियां इस प्रकार की थी कि अपने व्यक्तिगत स्वार्थो से प्रेरित होकर कुछ हद तक जनता की कुछ भलाई भी कर रहे थे। नये शासक वर्ग की प्रो० हबीब ने व्याख्या इस तरह से कि है कि ये शासक वर्ग कारीगरों द्वारा बनाई गई वस्तुओं में ज्यादा दिलचस्पी रखते थे। इसलिए उन्होंने शहर के कारीगरों पर जाति पाति के बंधन नहीं डाले। परिणामस्वरूप एक पेशे से दूसरे पेशे में जाने की छूट कारीगरों को मिली जो भारत में मुसलमानों के आने से पहले नहीं थी। गांव से इन शासकों को अधिक से अधिक भूमि लगान की आवश्यकता थी। इसलिए उनमें से मुख्यतः सुल्तान अलाउदीन ने मध्यस्थों को खत्म कर दिया जो कि लगान का काफी हिस्सा अपने पास रख लेते थे। प्रो० हबीब के अनुसार ये आर्थिक परिवर्तन इतने महत्वपूर्ण थे कि उन्होंने इस शहरी क्रांति व देहाती क्रांति की संज्ञा दी है।

यह निसंदेह मानना पड़ेगा कि प्रो० हबीब का योगदान बड़ा महत्वपूर्ण है क्योंकि दिल्ली सल्तनत की अर्थ व्यवस्था पुरानी चली आ रही अर्थव्यवस्था का निरंतर रूप था। और उनके द्वारा बतलाए गए मुख्य पहलूओं की और ज्यादा खोज होनी चाहिए। हालांकि 13वीं और 14वीं सदी में हो रहे सामाजिक और आर्थिक परिवर्तनों के ऊपर अधिक शोध नहीं हुए। खासतौर पर प्रो०

हबीब द्वारा इंगित रेखाओं पर शोध बहुत ही कम हुआ है। प्रो० निजामी के लेखों में मुस्लिम आक्रमण द्वारा हानि के प्रति आलोचनात्मक रवैया भी नहीं मिलता है जबकि प्रो० हबीब के लेखों में आलोचनात्मक झलक मिलती है।

इस मत के पक्ष में काफी प्रमाण मिलते है कि सल्तनत की स्थापना के साथ-साथ शहरों की आर्थिक दशा काफी सुद ढ़ हुई। सामान्य रूप से तीन प्रकार से ऐसे परिवर्तन हुए जो एक दूसरे के साथ जुड़े हुए है। (i) शहरों की संख्या और उसके क्षेत्रफल में काफी विस्तार हुआ। (ii) शिल्प उत्पादन में भी काफी विस्तार हुआ। (iii) व्यापार में भी काफी विस्तार हुआ। 1330 ई० में इब्न बतुता दिल्ली आए तो उन्होंने दिल्ली को पूर्वी इस्लामी देशों का सबसे बड़ा शहर बताया। उसके अनुसार दौलताबाद भी दिल्ली की तरह बहुत बड़ा शहर था। उस समय बहुत सारे और भी बड़े शहर थे जैसे लाहौर, मुल्तान, अनहिलवाड़ा, लखनौती इत्यादि। इन सभी शहरों का हमारे स्त्रोतों में वर्णन मिलता है। परंतु इनके क्षेत्र के बारे में अधिक जानकारी नहीं है। अपने आपमें इस तरह का प्रमाण कुछ कमजोर है क्योंकि तुलना के लिए हमारे पास पहले शहरों के बारे में अधिक जानकारी नहीं है। परंतु यह महत्वपूर्ण है कि शिल्प और वाणिज्य के बारे में हमारी जानकारी है। इससे इस बात को बल मिलता है कि दिल्ली सल्तनत के काल में कुछ ऐसे तकनीकी सुधार हुए जिनके कारण शिल्प उत्पादन भी काफी बढ़ गया। सर्वप्रथम कपड़ा उद्योग के क्षेत्र में चर्खे के आने के कारण धागों का उत्पादन काफी बढ़ गया। इमामी द्वारा लिखित 'फतुहस सलातीन' (1550 ई०) इस नये अंतर का वर्णन मिलता है। लेन व्हाईट ने भी कहा है कि चर्खे की जानकारी प्राचीन भारत में बिल्कुल भी नहीं थी। यह पहले 12वीं सदी में इरान में आया और हिंदुस्तान में यह तेहरवीं सदी में आया। इसामी के वर्णन से ऐसा लगता है कि इसका विस्तार काफी तेजी से हुआ। लेकिन विद्वानों का मानना है कि भारत में 13वीं सदी से पहले कातने का यंत्र तो था परंतु इसका आम प्रयोग 13वीं और 14वीं सदी में होने लगा। पहली बार यह संभव हुआ कि इस आसान तरीके की जानकारी के कारण जुलाहे के कार्य की रफ्तार बढ़ गई और कपड़े के उत्पादन में काफी व द्धि हुई।

इसी तरह का एक परिवर्तन विलासिता के क्षेत्र में भी हुआ, रेशम का कपड़ा बुना जाने लगा। तुर्को के आने से पहले भारत वर्ष में रेशम उद्योग जो कि रेशम के कीड़े पालने पर आधारित था नहीं होता था। सबसे पहले इसका वर्णन 15वीं सदी में बंगाल में मिलता है। और सोलहवीं सदी के मध्य में कश्मीर में मिलता है संभवतः रेशम के इस घरेलू उत्पादन से भारत में रेशम उद्योग को काफी प्रोत्साहन मिला। यह उद्योग पहले विदेशों से आयात पर निर्भर था। दूसरी शिल्पकला जो कि ईरान से भारत आई वह थी खड्डी पर दरी बनाने की कला हालांकि इसकी जानकारी सल्तनत के समय में हुई फिर भी इसकी महत्ता मुगल काल में काफी बढ़ गई। दूसरे उद्योगों में कागज बनाने की कला प्रमुख थी। भारत में सबसे पहले कागज 13वीं सदी के प्रारंभ में गुजरात में पाया जाता है। 14वीं सदी तक कागज इतनी मात्रा में बनने लगा कि दिल्ली में मिठाईयां भी कागजों पर बनने लगी।

भवन निर्माण कला की तकनीकी में भी आश्चर्यजनक परिवर्तन हुए अब सीमेंट चूना इत्यादि का प्रयोग भवन निर्माण में होने लगा। इससे पहले सीमेंट और चूने आदि का प्रयोग नही होता था। गुंबद वाली छत भी बननी शुरू हो गई। नई तकनीकी के कारण खपरैल वाली छतें भी बनाई जाने लगी। यदि हम तुगलकाबाद के खण्डरों पर नजर डाले तो मालूम पड़ता है कि सल्तनत के समय में लकड़ी के छोटे मकान अथवा छप्पर बनाने की प्रथा खत्म हो गई और ईटों के बड़े-बड़े मकान बनाए जाने लगे। अलाउदीन ने भवन निर्माण में लगभग 70 हजार कारीगर लगा रखे थे। दूसरी ओर मुहमद तुगलक और फिरोज तुगलक के भवन इस चीज के द्योतक हैं कि भवन निर्माण कला में काफी परिवर्तन आ चुका था।

सुल्तानों के बड़े आकार के सिक्कों से ज्ञात होता है कि वाणिज्य में भी काफी व द्धि हुई। 13वीं और 14वीं सदी में चांदी के सिक्कों की बहुतायत और सोने के सिक्कों का भी प्रचलन प्रचुर मात्रा में मिलना वाणिज्य के विस्तार का प्रमाण है। इससे पहले चांदी के सिक्कों की कमी थी और जो भी मिलते थे वे खोटे होते थे। सोने के सिक्के तो बहुत ही कम थे। सोने और चांदी को खान से निकालकर सिक्कों में ढालना इसलिए भी आवश्यक था क्योंकि बढ़ते हुए व्यापार में विनिमय के लिए कीमती धातु का प्रचलन जरूरी था। व्यापार और व्यापारियों से संबंधित विभिन्न प्रमाण भी इस बात के साक्षी है। 13वीं और 14वीं सदी में सुल्तान और दूर से वस्तुएं मंगवाने के लिए काफी पैसा बतौर पेशगी देते थे। अलाउदीन ने दूर से वस्तुएं लाने के लिए मुलतानी व्यापारियों को 20 लाख टंका दिया। डॉ० जान केसर के अनुसार दलाली की प्रथा भी सल्तनत काल में आरंभ हुई।

ये घटनाएं आरंभ में दो मुख्य कारणों से घटी तथा इनको एक तीसरे कारण ने आगे बढ़ा दिया। पहले दो कारण इस प्रकार हैं। (i) शिल्पियों और व्यापारियों को पूर्व मुस्लिम देशों से अपनी शिल्प तथा तकनीकी के साथ भारत आगमन (ii) दास श्रम

का काफी अधिक मात्रा में प्राप्त होना। इन दासों को काफी आसानी से प्रशिक्षित किया जा सकता था। तीसरा कारण भी इन दोनों जितना ही प्रमुख है और यह है क षि अधिवय को शहरों लाने की व्यवस्था का होना। पहले कारण के हमारे पास काफी प्रमाण है। उदाहरण के लिए अलतमश के समय में बहुत सारे सैयद अरब के देशों से दिल्ली में आए। बहुत सारे कारीगर ईरान से तथा कशीदाकारी करने वाले चीन से आए। बुखारा से बहुत सारे विद्वान आए। बहुत सारे देशों से शिल्पी भी आए जिन्हें फारसी में कासी बान कहते थे। बहुत सारे जौहरी और डॉक्टर यूनान से आए। बाईजन टाईन साम्राज्य से बहुत सारे भौतिक शास्त्री आए। विभिन्न वर्गो के ये लोग जहां तहां से आकर दिल्ली में इकट्ठे हो गए। हालांकि इसामी द्वारा दिया गया उपरोक्त बयान अतिशयोक्ति पूर्ण लगता है फिर भी इससे पता चलता है कि विभिन्न श्रेणी के कारीगरों का भारत में आगनमन हुआ। कागज बनाने की तकनीकी तथा नए भवन निर्माण कला और कपड़ा बनने के दूसरे तरीके शायद इन्हीं आगन्तुक शिल्पियों के माध्यम से भारत आए।

यह शायद संभव है कि आरंभ में भारतीय शिल्पियों ने इन नये तरीकों को न अपनाया हो क्योंकि वे जाति आदि संस्थाओं के शिकंजे में जकड़े हुए थे लेकिन समय के साथ-साथ विभिन्न जातियों ने अपने आप को समायोजित कर लिया होगा। कुछ क्षेत्रों में शिल्प श्रम की विशेष कमी के कारण बहुत सारे लोगों को दास बनाकर सस्ता श्रम पैदा किया जाए और इन्हीं में से प्रशिक्षित शिल्पी भी तैयार किये जाए। इस प्रकार से दास बनाए जाने के हमारे पास बहुत से प्रमाण है। इनकी आर्थिक महता इतनी अधिक थी कि किसी भी सैनिक आक्रमण को जब सफल नहीं माना जाता था जब तक काफी मात्रा में दास बनाने के लिए बंदी नहीं पकड़े जाते थे। कुतुबुदीन ऐबक ने सन् 1195 ई० में गुजरात आक्रमण से 20 हजार दास बनाए। इसके सात साल बाद कालीजर के आक्रमण से 50 हजार दास बनाए गये। अलाउदीन खिल्जी के मलिक काफुर को दक्षिण की लड़ाई पर जाने से पहले यह संकेत दिया था कि घोड़े और दास काफी मात्रा में प्राप्त किए जाने चाहिए। ज्यों-ज्यों सल्तनत की जड़े मजबूत होती गई। त्यों-त्यों विद्रोही गांवों को दबाकर अधिक से अधिक लोगों को दास बनाया जाने लगा। 14वीं सदी में यदि कोई किसान लगान नहीं देता था तो उसे दास बना लिया जाता था। इसी तरह औरतों को भी दास बना लिया जाता था। इस तरह से इकट्ठे किए गए दासों की संख्या अलाउदीन के पास 50 हजार थी तथा फिरोज तुगलक के पास 80 हजार दास थे। इस संदर्भ में बरनी द्वारा वर्णित किया गया दिल्ली की दास मण्डी के हाल से पता चलता है कि दासों की बहुतायत के कारण उनकी कीमते भी काफी कम होती थी। एक प्रशिक्षित दास की कीमत एक घटिया दर्जे के घोड़े से भी कम थी। उसकी कीमत एक भैंस के बराबर होती थी। घरेलू काम के लिए रखे गए दास औरत लड़का या लड़की की कीमत इससे भी कम होती थी। शहरों के अमीर और गरीब दोनों घरानों में दास रखे जाते थे। यहां तक कि 1236 के आसपास दिल्ली का सूफी संत नूरतुक का जीवन दास द्वारा पैदा की गई आमदनी पर निर्भर था। निजामुदीन जब छोटा था वो गरीबी की हालत में भी बदायूं में एक स्त्री दास रखता था। कुछ दूसरे लेखों से पता चलता है कि शिल्पी लोग भी दास रखते थे। घरेलू स्त्रियों से सूत कतवाया जाता था। फिरोज तुगलक के लगभग 1200 दास विभिन्न प्रकार के दास कारीगरों के रूप में कार्य करते थे। इस तरह अधिक श्रम की पूर्ति सस्ते दासों द्वारा की जाती थी। बड़े-बड़े शिल्पों के मालिक व व्यापारी दास खरीद कर उनको प्रशिक्षण देते थे। अमीर लोग भी इन दासों को विभिन्न प्रकार के उद्योगों में लगाते थे। दासों से उस समय किसी भी प्रकार का कार्य करवाया जा सकता था। वह भाग भी नहीं सकता था और उसकी जाति को भी ध्यान में नहीं रखा जाता था।

इस तरह के प्रयोगों से पता चलता है कि दास श्रम एक परिवर्तनीय व्यवस्था थी। जब तक एक बार आगंतुक शिल्प विज्ञान की अच्छी तरह से जानकारी हो गई और कुछ पीढ़ियों के बाद दास आजाद कारीगरों में बदलने लगे तो दास श्रम को किसी प्रेरक के अभाव में उनकी कार्यक्षमता कम होने का खतरा था। सल्तनत के पतन के साथ-साथ बंदी बनाए गए लोगों की संख्या भी कम हो गई इसके कारण शिल्प उद्योग में दास श्रम का कार्य घट गया। फिरोज तुगलक ने चौदहवीं सदी के उतरार्ध में दास निर्यात पर पाबंदी लगा दी थी। ताकि दिल्ली सल्तनत में इनकी कीमत नीची रखी जा सके। यह उल्लेखनीय है कि 16वीं शताब्दी के पहले दशक में भारत में दासों की संख्या कम हो गई जबकि सल्तनत के समय दासों की बहुतयता उसकी एक विशेषता थी। बाबर ने भी लिखा है कि उनके समय में शिल्पियों की बहुतयता उसकी विशेषता थी। भारत में विभिन्न जातियों के संगठित शिल्पी बड़ी मात्रा में थे। उन्होंने दासों की संख्या के बारे में कुछ नहीं लिखा। 16वीं और 17वीं सदी में यूरोप से आए कुछ यात्रियों ने भारत के बड़े-बड़े शहरों में कहीं भी दास मण्डियां नहीं देखी। मुगलों के शासन काल में सुल्तानों के शासन काल के विपरित दासों की मांग घट गई। दासों की पूर्ति की कमी का कारण उनके द्वारा आजादी प्राप्त करना ही नहीं

है परंतु धीरे-धीरे विभिन्न जातियों के कारीगरों ने भी अपने आपको समायोजित कर लिया और नये पेशे में दिलचस्पी लेनी शुरू कर दी। यद्यपि शहरी शिल्प उद्योग का विकास आगंतुक कारीगर और दास संपर्क के कारण संभव हुआ परंतु इसको जीवित रखने का आधार सल्तनत के नये शासक वर्ग द्वारा शैरियत से अधिक मात्रा में भूमि लगान हासिल करने से संभव हुआ। संपत्ति और कर आदि लगाने की नीति को मुस्लिम शासकों ने शैरियत के कानून से निकाला। परंतु आबासिदो के बाद इसमें कुछ स्वतंत्र विकास होने लगा। मुस्लिम देशों में 12वीं सदी में कर आदि को निर्धारित करने वाले तत्व इक्ता और खराज से जुड़े हुए थे। खराज में कुछ ऐसी व्यवस्थाएं थी जो कि शैरियत के कानून से भिन्न थी। इक्ता एक हस्तांरित लगान अनुदान था जिससे शासक वर्ग सदस्य अपनी आमदनी प्राप्त करते थे। यद्यपि सुल्तान पर उनकी निर्भरता संपूर्ण थी लेकिन किसी भी प्रकार का लगाव जमीन के साथ नहीं होता था। इस प्रकार सत्ता को केंद्रित करके सुल्तान की समाज पर असीमित शक्ति को कायम करना और सामाजिक उत्पादन के बड़े भाग को हासिल करने में इक्ता कि एक महत्वपूर्ण भूमिका थी।

सामाजिक उत्पादन के इस प्रकार हासिल किए गए हिस्से को खराज कहा जाता था। अब तक भूमिकर के रूप में यह अच्छी तरह सामने आ चुका था। अपनी जरूरत से ज्यादा पैदा किए गए उत्पादन पर सुल्तान का अधिकार इसकी विषय वस्तु थी। इस प्रकार अनुदान प्राप्तकर्ता को मुक्ति या वली कहा जाता था। ये खराज और दूसरे करों की वसूली करके अपने सैनिकों के लिए खर्च करते थे और जो बच जाता था उसे सुल्तान के खजाने में भेज दिया जाता था। बचे हुए इलाके पर सुल्तान का सीधा अधिकार होता था जिसे खालिसा कहा जाता था। इससे सुल्तान द्वारा नियुक्त अधिकारी सीधे रूप से कर वसूल करते थे। इस प्रकार से असीमित भूमिकर से ही अपनी सेनाओं को कायम रखते थे और बड़े-बड़े नगरों का अस्तित्व भी कायम रखता था।

मौहम्मद गौरी की विजय के साथ-साथ ही इक्ता व्यवस्था सारे उत्तरी भारत में स्थापित की गई। सुल्तानों की शक्ति कम हो या अधिक परंतु समय अनुसार इक्ता की तब्दीली 13वीं सदी की सल्तनत की एक मुख्य व्यवस्था रही। खराज को अपना स्वरूप अच्छी तरह से विकसित करने में कुछ समय अवश्य लगा। 13वीं सदी में मुक्ति अधिकतर स्थानीय राजाओं से प्राप्त भेंट पर निर्भर थे। बागी गांव से प्राप्त पशु और दास भी भेंट ले लेते थे। यह मानकर चलना पड़ेगा कि स्थानीय राजा, राय, राणा, रावत आदि ही करों की वसूली करते थे और यह परंपरा पहले से ही चली आ रही थी। बहुत सारे करों के नाम तो मिलते है परंतु उनके स्वभाव के बारे में कुछ नहीं पता। कुछ इसी तरह से प्राप्त भूमि लगान भेंट रूप में सुल्तान के अनुदान प्राप्तकर्ताओं के पास जाता था।

इस प्रकार यह सोचा जा सकता है कि 13वीं सदी में सल्तनत का आर्थिक आधार दुर्बल था और यह आश्चर्य की बात नहीं की बलबन के समय में दिल्ली में रहने वाले अमीर वर्ग के बहुत से सदस्य कर्जा लेकर गुजारा करते थे। यह दूसरी बात है कि अपने इक्ता से वसूली के समय कर्ज की अदायगी कर दी जाती थी।

अलाउदीन खिल्जी के बाद ही स्थिति में महत्वपूर्ण परिवर्तन आए। अलाउदीन ने पहली बार उत्तरी भारत के बहुत बड़े भाग पर भूमिकर के रूप में उत्पादन को ½ लेना आरंभ किया। इसके साथ-साथ ग हकर और पशुकर भी लिया जाने लगा। बरनी ने इस संदर्भ में दो विरोधात्मक व्याख्यान दिए हैं। पहला यह कि सुल्तान के अधिकारी भूमि कर रोकड़ के रूप में लेते थे इसलिए किसान अपना अनाज व्यापारियों को बेच देते थे जो उसे शहर में ले जाते थे। दूसरी और अलाउदीन ने हुक्म दिया कि लगान की वसूली अनाज में की जाए और अनाज को शहरों तक लाया जाए। प्रथम अवस्था में मुद्रा का काफी प्रसार हुआ और दोनों ही अवस्थाओं में यह बात मालूम पड़ती है कि नई कर व्यवस्था के कारण क षि उत्पादन का काफी अधिक भाग शहरों में खपाया जाने लगा। इसके बदले में नई कर प्रणाली द्वारा अलाउदीन को दिल्ली और उसके पड़ोसी शहरों में क षि उत्पाद की कीमतें नीची रखने में सहायता मिली। अलाउदीन के क षि सुधारों के कारण आधिक्य में दूसरे हिस्सेदारों जैसे मुखिया, चौधरी, खुत, मुकद्दम आदि को काफी आघात लगा क्योंकि अलाउदीन ने उन पर भी कर लगा दिया और यह कर बहुत अधिक था। अफीफ ने अलाउदीन के क षि प्रशासन को अच्छी तरह से चित्रित किया है जब वे कहते हैं कि अलाउदीन के समय में चाहे कितना ही कर लगे कोई आवाज नहीं उठा सकता था।

मुहमद तुगलक के समय में परिस्थितियां बदल गई। कर में व द्धि के कारण दोआब में लंबे अर्से तक किसानों के विद्रोह होते रहे। अधिकतर किसान और खासतौर पर खुत व मुकद्दम विद्रोह करते रहे। विद्रोह और सूखे के कारण मुहम्मद तुगलक को एक नई क षि प्रणाली अपनानी पड़ी। उसने भूमि लगान वसूल करने के लिए नियमित अधिकारियों को नियुक्त किया और बरनी

के शब्दों में अब राज्य ने नियमित रूप से किसानों के अधिकतर आधिक्य को अपने अधिकार में ले लेना शुरू कर दिया। अपने आप इस तरह से एक भाग भू स्वामी बन गया। वास्तव में इसका यह अर्थ था कि एक उत्क ष्ट देहाती वर्ग को शहरी वर्ग ने हराकर अपना अधिकार जमा लिया। राजनैतिक ढ़ांचे के अत्यधिक केंद्रीयकरण के कारण सल्तनल के अमीर अपने आपको देहात में फैलाने नहीं पाए और इसलिए अपनी अधिक आमदनी को शहरों में खर्च करते थे और यह शहरी प्रगति उनकी सांस्क तिक परंपराओं में निहित थी।

इस प्रकार हम देखते हैं कि प्रो० हबीब द्वारा रेखांकित दो मुख्य परिवर्तन सल्तनत के समय में हुए। (i) शहरीकरण का विकास, (ii) देहाती उत्क ष्ट वर्ग की सत्ता का कमजोर होना। ये दोनों परिवर्तन ऐतिहासिक तथ्यों के आधार पर खरे उतरते थे परंतु ये परिवर्तन समाज के किसी भी हिस्से की मुक्ति का परिणाम नहीं थे। इसके ठीक विपरीत दास श्रम कुछ समय के लिए शहरी अर्थव्यवस्था के लिए काफी महत्वपूर्ण हो गया। निश्चित रूप से यह शहरी मुस्लिम शिल्पी वर्ग के विकास को रास्ता था जो कि जातीय प्रणाली की परिधि से बाहर था और भारतीय शिल्प उद्योग की गतिशीलता तथा प्रतिस्पर्धा के लिए काफी महत्वपूर्ण था। क षि परिर्वतन के कारण किसानों पर बोझ कम नहीं हुआ। नये कर इतने अधिक थे कि किसानों की हालत खराब हो गई। सल्तनत के द्वारा किसी भी प्रकार की आधुनिक ज्ञान में सामाजिक क्रांति नहीं हुई परंतु इसके द्वारा भूमि शोषण की एक नई प्रणाली कायम हुई। जिसके ऊपर एक प्रजीवी शहरी विकास को थोप दिया गया। इसके द्वारा राजनैतिक शक्ति और आर्थिक शक्ति पहले से कहीं अधिक एक जगह सम्मिलित हो गई। इसने अधिकतर क षि आधिपत्य को एक ऐसे शासक वर्ग के हाथ में दे दिया जिसका संगठन उत्तराधिकार के नियम पर आधारित नहीं था। परंतु सुल्तान की मनमानी पर टिका हुआ था। किसानों को कोई अधिकार नहीं थे और उनकी अवस्था अर्ध भू-दासों के समान थी। यह व्यवस्था देखने में सामंतवादी लगती थी। शक्ति का अत्याधिक केंद्रीयकरण, मुद्रा प्रसार, शहर और वाणिज्य का विकास सल्तनत कालीन अर्थव्यवस्था की पहचान थी जो अपनी कुछ मुख्य विशेषताओं के साथ मुगल काल में भी जारी रही।

अध्याय-7

मुगलों के अधीन हरियाणा

(Haryana During Mughal Period)

पानीपत का प्रथम युद्ध

(First Battle of Panipat)

हरियाणा प्रदेश जो कि दिल्ली और लाहौर के मध्य में स्थित है, अपनी महत्वपूर्ण भौगोलिक स्थिति के कारण संपूर्ण मध्यकाल में लड़ाईयों का मैदान रहा है। जो भी बाहरी आक्रमणकारी दिल्ली पर अधिकार करने के उद्देश्य से भारत आया उसने इस क्षेत्र को युद्ध मैदान के रूप में अपनाया। शायद यही बात बाबर के दिमाग में थी और उसने इसीलिए मुगल साम्राज्य की नीव रखने के लिए पानीपत के मैदान को चुना।

बाबर को भारत पर आक्रमण करने के लिए प्रोत्साहन देने वाले तत्वः-

1. **बाबर की महत्वकांक्षाः**- बाबर को भारत की डांवाडोल राजनैतिक स्थिति ने ही आक्रमण करने की प्रेरणा नहीं बल्कि कुछ अन्य कारणों से भी उसे ऐसा करने को प्रोत्साहित किया। इनमें उसकी महत्वकांक्षा प्रमुख है। बाबर अपनी आत्मकथा 'तुज्के-बाबरी' में स्वयं लिखता है कि "काबुल की प्राप्ति से लेकर (1526 ई०) पानीपत की विजय तक मैंने कभी भी हिंदुस्तान जीतने का विचार नहीं छोड़ा।" उसे इस महान कार्य को करने के लिए उपयुक्त अवसर ही नहीं मिला। पहले तो बाबर समरकन्द को प्राप्त करने के लिए लगातार संघर्ष में ही जुटा रहा। जब उसे प्राप्त करने में पूर्णतया असफल हो गया तो उसने अपनी साम्रज्य विस्तार की महत्वाकांक्षा को भारत विजय कर पूरा करना चाहा।
2. **भारत की अत्याधिक सम्पत्ति** - कुछ विद्वानों के विचारानुसार बाबर ने भारत पर आक्रमण यहां की अतुल सम्पति से आक षित होकर किया। जिस तरह पहले अनेक मध्य एशिया से आक्रमणकारी धन प्राप्त करने भारत आए, उसी तरह बाबर भी धन प्राप्ति के उद्देश्य से आया। बाबर ने भारत की सम्पति के बारे में अनेक कहानियां सुन रखी थी। उसका पूर्वज तैमूर भी यहां से अपार धन दौलत ले गया था।
3. **कानून अधिकार एवं दायित्वः**- दिल्ली सल्तनत कालीन सुलतान फिरोजशाह तुगलक के बाद तैमूर ने भारत को जीता। उसने पंजाब कुछ क्षेत्रों को भी अपने राज्य में मिला लिया, जो बाद में तैमूर के उतराधिकारी के अधीन थे। जब बाबर ने काबुल पर अधिकार कर लिया तो उसने पंजाब तथा अन्य प्रदेशों पर अधिकार करना अपना कानूनी अधिकार समझा। यही विचार रखते हुए वह भारत को जीतने निकल पड़ा।
4. **भौगोलिक कारणः**- काबुल से भारत बहुत नजदीक है। इस कारण भौगोलिक कारणों ने भी बाबर को भारत पर आक्रमण करने के लिए प्रोत्साहित किया। वह भारतीय क्षेत्र को अपने काबुल राज्य में आसानी से मिला सकता था।
5. **काबुल का कम उपजाऊ व आय कम होनाः**- बाबर को काबुल से प्राप्त होने वाली आय बहुत कम थी। उसे कई बार अपनी सेना व कर्मचारियों को वेतन देने में कठिनाई होती थी। उसके पास कुछ सीमांत प्रदेश ऐसे थे जहां पर उसे आय प्राप्ति से ज़्यादा खर्च करना पड़ता था। इसके लिए उसे अपनी आमदनी बढ़ाने के लिए पंजाब जैसे उपजाऊ प्रदेश को जीतना आवश्यक था।

6. **निमंत्रणः**- बाबर स्वयं अपनी आत्मकथा 'तुज्के बाबरी' में लिखता है कि उसे इब्राहिम लोधी पर आक्रमण करने के लिए पंजाब के शासक दौलत खां लोधी एवं सुल्तान इब्राहिम के चाचा आलम खां ने अलग-अलग निमंत्रण दिया था। कुछ इतिहासकारों का विचार है कि संभवतः इन्हीं दिनों मेवाड़ के राणा सांगा एवं बाबर में भी कुछ राजनैतिक सांठगांठ हुई थी। इसी प्रकार एक निमंत्रण पत्र प्राप्त हुआ। इन निमंत्रणों से प्रेरित होकर बाबर ने भारत को जीतना चाहा।

7. **उज्बेगो का भयः**- बाबर के भारत पर आक्रमण करने का एक कारण यह भी था कि उसके दिल में काबुल पर उज्बेगो के आक्रमण का भय था। उसने भारत को काबुल की तुलना में अधिक सुरक्षित स्थान समझा। उसने सोचा कि वह भारत में उज्बेगो के विरुद्ध अपनी शक्ति को आसानी से सुद ढ़ कर सकता है।

पानीपत का युद्ध

बाबर के आक्रमण के समय इब्राहिम लोधी दिल्ली का सुल्तान था। लेकिन उसके घमण्डी स्वभाव के कारण बहुत से अफगान सरदार जो कि भारत में उसकी ताकत का मुख्य आधार थे उसे छोड़कर चले गए थे। इसके परिणामस्वरूप पंजाब के गर्वनर दौलत खां और सिकंदर लोधी के भाई आलम खां ने बाबर को भारत पर आक्रमण करने के लिए निमंत्रण भेजा।

दौलत खां जो कि पंजाब का गर्वनर था दिल्ली और आगरा पर अधिकार करना चाहता था इसलिए उसने बहुत से अफगान अमीरों को जिनमें गाजी खां, इस्माइल जिलवानी, सुलेमान शेखजादा तथा आलम खां प्रमुख है को अपनी और मिला लिया था। बाबरनामा के अनुसार इनमें से एक आलम खां स्वयं काबुल जाकर बाबर से मिला और उसे भारत पर आक्रमण करने का निमंत्रण दिया। बाबर ने स्थिति का जायजा लेने के लिए अपने कुछ अमीरो को उसके साथ भेजा जिन्होंने सियालकोट लाहौर और उसके आसपास के इलाकों पर कब्जा कर लिया और वापस जाकर बाबर को स्थिति का विवरण दिया। और इस प्रकार बाबर का भारत अभियान 16 दिसंबर 1525 ई० को शुरू हुआ। इस सबके पीछे आलम खां का विचार था कि क्योंकि उसने मुगलों को भारत आने का निमंत्रण दिया था इसलिए मुगल दिल्ली पर अधिकार करके उसके हवाले कर देंगे। लेकिन मुगलों को उसकी यह बात मंजूर नहीं थी। इसलिए आलम खां ने मुगलों का साथ छोड़ दिया और अपने 40 हजार घुड़सवारों के साथ दिल्ली की तरफ बढ़ा और दिल्ली का घेरा डाल दिया। सुल्तान इब्राहिम लोधी को जब पता चला तो वह 80 हजार सेना के साथ दिल्ली की तरफ बढ़ा। आरंभिक कुछ नुकसान के बाद अंततः वह आलम खां को हराने में सफल हुआ। आलम खां पानीपत और इन्द्री होता हुआ भाग निकला और रास्ते में बहुत से अफगान सरदारों ने उसका साथ छोड़ दिया। आलम खां जब सरहिंद के पास था जो उसे बाबर के भारत पर आक्रमण का समाचार मिला। उसके साथी मीर खलीफा ने उसे सलाह दी कि वह वापस बाबर की शरण में चला जाए। उसने सलाह मान ली और बाबर ने वापस आने पर उसका स्वागत किया। बाद में दौलत खां और दिलावर खां भी बाबर से आ मिले।

बाबर ने अपने भारत अभियान पर सियालकोट, लाहौर, कलानौर, दून, दानूर, समाना, और सुनाम होते हुए आगे बढ़ा। बाबर जब सुनाम के स्थान पर था तो उसे पता चला कि इब्राहिम लोधी एक विशाल सेना के साथ पानीपत की तरफ बढ़ रहा है। इसके अतिरिक्त इब्राहिम की सहायता के लिए हरियाणा से दो सेनाएं ओर आई। एक सेना मेवात के शासक हसन खां मेवाती की थी जो दिल्ली की सेना के साथ मिलकर आगे बढ़ रही थी। और दूसरी हिसार के फौजदार हमीद खां की थी।

बाबर ने इब्राहिम और हमीद खां इन दोनों सेनाओं से एक साथ लड़ाई लड़ना उचित नहीं समझा। इसलिए उसने हमीद खां को रोकने के लिए राजकुमार हुमायूं के नेत त्व में एक विशेष सेना भेजी। हुमायूं की सेना के अग्रिम दस्ते की हमीद खां की सेना के साथ पहली टक्कर 26 फरवरी 1526 के दिन हुई। हमीद की सेना ने बड़ी आसानी से उसे हरा दिया। लेकिन कुछ क्षण पश्चात हुमायूं की सेना का खास दस्ता वहां पहुंच गया। दोनों में जमकर युद्ध हुआ लेकिन मैदान हुमायूं के हाथ रहा। हमीद खां की सेना भाग खड़ी हुई और मुगलों ने हिसार पर आसानी से कब्जा कर लिया। बाबर नामा के अनुसार हुमायूं का यह प्रथम युद्ध और विजय का प्रथम अनुभव था और शानदार शकुन था। बाबर हुमायूं से बहुत प्रसन्न हुआ और उसे हिसार की जागीर प्रदान कर दी। हुमायूं 200 युद्धबंदियों के साथ अंबाला के स्थान पर वापस बाबर से आ मिला। यहां से बाबर की सेना ने आगे कुच किया। दूसरे दिन वह शाहबाद पहुंचा। वहां पर उसने विश्राम किया। यहां से उसने एक अमीर को इब्राहिम की गतिविधियों के विषय में जानकारी प्राप्त करने के लिए भेजा। इसके बाद बाबर यमुना नदी के तट के साथ-साथ आगे

बढ़ता हुआ करनाल पहुंचा। इसके बाद बाबर ने धरौण्डा पहुंचकर कुछ समय के लिए विश्राम किया और अंत में 12 अप्रैल 1526 को पानीपत के मैदान में पहुंच कर मोर्चे संभाल लिए।

पानीपत पहुंचकर बाबर ने अपनी सेना को इस प्रकार संगठित किया कि उसके पड़ाव के दाहिनी ओर तो पानीपत का नगर था और बाई और सुरक्षित करने के लिए उसने खाईयां खुदवा कर उनके ऊपर व क्ष कटवा कर डलवा दिये। मध्य में उसने 700 छकड़े खड़े करवाकर उन्हें आपस में चमड़े की रस्सीयों से बंधवा दिया। इन छकड़ों को जरूरत पड़ने पर आगे पीछे भी किया जा सकता था। छकड़ों की इस रुकावट के पीछे छः सात मार्चे खुदवाकर उसने तोपे रखवा दी ताकि इनके पीछे तोपची खड़े होकर आसानी से गोले दाग सके।

इब्राहिम लोधी की सेना की संख्या लगभग एक लाख थी। लेकिन उसके अधिकांश सैनिक भाड़े के सैनिक थे। जिनमें अनुशासन, योग्यता और वीरता का सर्वथा अभाव था। इन सबसे बढ़कर एक बात और भी शौचनीय थी कि इब्राहिम में स्वयं भी सैनिक योग्यता का अभाव था। बाबर की एक वैज्ञानिक व कुशल युद्ध पद्धति के सामने वह एक पुरानी युद्ध पद्धति से बाबर से लड़ने को तैयार था।

दोनों सेनाएं आठ दिन तक एक दूसरे के आमने सामने खड़ी रही। किन्तु किसी ने भी एक दूसरे पर धावा बोलने की हिम्मत नहीं की। 21 अप्रैल को बाबर ने अधीर होकर अपनी सेना को इब्राहिम की सेना पर आक्रमण करने का आदेश दिया। शीघ्र ही बड़ा भयानक युद्ध छिड़ गया। लेकिन बाबर ने चतुर दांवपेच और तोपखाने की मार के आगे इब्राहिम की सेना टिक न सकी। दो तीन घण्टों तक युद्ध होता रहा। अनुमान है कि इब्राहिम के अतिरिक्त उसके 1500 सैनिक इस लड़ाई में मारे गए। बाबर ने स्वयं लिखा है- "सर्व शक्तिमान ईश्वर की दया और क पा से एक कठिन काम मेरे लिए आसान हो गया और आधे दिन में ही दिल्ली की विशाल सेना धुल में मिल गई।" इस तरह बाबर ने एक शानदार विजय प्राप्त की तथा मुगल अफगान संघर्ष का प्रथम चरण समाप्त हो गया।

'तारीख-ए-सलातीन-ए-अफगाना' के अनुसार बाबर सात दिन तक पानीपत नगर में ठहरा। उसके हाथ इब्राहिम लोधी का खजाना 1500 हाथी, 27000 घोड़े तथा लड़ाई में काम आने वाला अन्य सामान लगा, जिस पर उसने अपना अधिकार जमा लिया। उस भूमि को शुभ मानकर उसने नगर के सम्मानित व्यक्तियों को बुलवाया तथा प्रत्येक को इनाम-इकराम से सम्मानित किया। सुल्तान मुहमद उगली को, जिसने इस युद्ध में बाबर की सहायता की थी, 10,000 अश्वारोहियों समेत पानीपत का हाकिम नियुक्त कर दिया तथा एक फसल की आय उसे अपने रख रखाव के लिए प्रदान की। इसके साथ-साथ बाबर ने जहां इब्राहिम लोधी का शव मिला था, उस स्थान पर एक मकबरा भी उसकी याद में बनावाया। इसके अतिरिक्त बाबर ने इसी स्थान पर एक बगीचा, एक मस्जिद और एक तालाब का निर्माण भी करवाया। यह बाग अब काबली बाग के नाम से जाना जाता है।

बाबर पानीपत से प्रस्थान करके सोनीपत पहुंचा। अहमद यादगार के अनुसार यहां पहुंचने पर यहां के प्रतिष्ठित चौधरियों, सिपाहियों एवं सर्राफों के विभिन्न समूह बाबर के पास आए और उसकी अधिनता स्वीकार की। बाबर ने उनको उचित रूप से सम्मानित किया। सोनीपत से बाबर ने दिल्ली की तरफ प्रस्थान किया और उसका दिल्ली पर बड़ी आसानी से कब्जा हो गया।

हरियाणा में मुगल राज्य की स्थापना का हरियाणा का सीमा ने विरोध किया तथा कई स्थानों पर विद्रोह का झंडा खड़ा कर दिया। सबसे पहले हिसार फिरोजा के पास हामीद खां सारंगखानी के नेत त्व में तीन हजार अफगानों ने विद्रोह कर दिया। इस विद्रोह को दबाने के लिए 21 नवंबर 1526 को बाबर ने तैमूर सुल्तान व अबुल फतेह के नेत त्व में एक सेना भेजी। दोनों में हिसार के नजदीक युद्ध हुआ। इसमें अफगानों की हार हुई। बहुत से अफगानों को मौत के घाट उतार दिया गया तथा बाकी जान बचाकर भाग गए।

इसके बाद विद्रोह की बारी मेवात की थी। यहां के सरदार हसन खां मेवाती ने अपने पुत्र नाहर खां के नेत त्व में एक सेना पानीपत के मैदान में इब्राहिम लोधी की सहायता के लिए भेजी थी। लड़ाई के बाद नाहर खां मुगलों के हाथों में पड़ गया और उसे बंदी बना लिया गया। बाबर के कुछ मित्रों ने उसे सलाह दी कि नाहर खां को बिना शर्त रिहा कर दिया जाए ताकि हसन खां मुगलों के पक्ष में आ जाए। बाबर ने ऐसा ही किया लेकिन हसन खां पर इसका कोई असर नहीं हुआ। उल्टा उसने राणा

सांगा का साथ दिया और लड़ते-लड़ते वीरगति को प्राप्त हुआ। लड़ाई के बाद हसन खां के पुत्र नाहर खां ने बाबर से सुलह कर ली और बाबर उसे कुछ परगनों की एक जागीर प्रदान की।

अहमद यादगार की 'तारीख-ए-सलातीन-ए-अफगाना' के अनुसार कैथल में मोहन मंढार नामक राजपूत ने मुगलो के खिलाफ विद्रोह का झण्डा खड़ा कर दिया। जब बाबर लाहौर से वापस लौट रहा था तो बाबर को सरहिंद के स्थान पर शिकायत मिली कि मोहन मंढार ने समाना के काजी की जागीर पर हमला कर दिया और काजी के पुत्र को मौत के घाट उतार दिया। बाबर ने अलीकुली को तीन हजार घुड़सवारों के साथ मोहन मंढार के गांव पर हमला करने के लिए भेजा। लेकिन सर्दी का अधिकता के कारण तीरंदाज अपने तीर नहीं चला सके और मुगलों के लिए लड़ना कठिन हो गया। यद्यपि मुगल वीरता से लड़े लेकिन वे मोहन के नेत त्व में बहादुर गांववालो के सामने टिक न सके और उनकी हार हुई। जब यह समाचार बाबर को मिला तो उसने मंढारो का दमन करने के लिए 6,000 घुड़सवारों की एक सेना जिसमें बहुत से हाथी भी थे तरसेम बहादुर और नौरंग बेग के नेत त्व में भेजी। यहां पहुंचकर मुगलों ने बड़ी चालाकी से काम लिया। उन्होंने अपनी सेना को, तीन भागों में बांट दिया। तथा पश्चिमी भाग को गांव पर हमला करने को कहा। गांव वाले मुगलो सं लड़ने के लिए आगे आए तो मुगलो की सेना ने पीछे भागना शुरू कर दिया। मंढारों ने दो मील तक उनका पीछा किया इस प्रकार मुगलों की चाल सफल रही। पीछे से तरसेम बहादुर ने गांव पर हमला करके उसमें आग लगा दी। मंढारो को मौत के घाट उतार दिया गया। 1,000 आदमी औरतों और बच्चों को बंदी बना लिया गया। मरने वालों की संख्या इतनी थी कि उनके सिरों से एक स्तंभ का निर्माण किया गया। विद्रोहियों के नेता मोहन को कमर तक जमीन में गाड़ दिया गया तथा फिर उस पर तीरों से हमला करके मार दिया गया।

हरियाणा के नव विजित प्रदेश को ठीक प्रकार से चलाने के लिए बाबर ने इसे चार सरकारों में बांट दिया। (i) दिल्ली सरकार, (ii) मेवात सरकार, (iii) हिसार सरकार, (iv) सरहिंद सरकार। इसके अतिरिक्त उसने दो विश्वस्त सरदारों अहसान तैमूर और बुगरा सुल्तान को क्रमशः नारनौल और समानाबाद की जागीरे प्रदान की।

हुमायूं का राज्यकाल

26 दिसंबर 1530 ई० को बाबर की म त्यु हो गई। बाबर की म त्यु के बाद उसका पुत्र हुमायूं गद्दी पर बैठा। नये शासक ने हरियाणा के प्रशासन में कोई फेरबदल नहीं किया। उसने मेवात सरकार मिर्जा हिंदाल को दे दी और हिसार तथा सरहिंद की सरकारें मिर्जा कामरान के हवाले कर दी। कामरान के पास पंजाब, काबुल और कंधार की सरकारें भी थीं। इतना महत्वपूर्ण क्षेत्र कामरान को देना हुमायूं की बड़ी भारी भूल थी। जब हुमायूं अफगानों के साथ युद्ध में व्यस्त था तो पीछे से हिंदाल ने विद्रोह कर दिया। कामरान ने भी ऐसा ही किया। लेकिन हुमायूं ने उसे हराकर सजा देने की बजाए उसे माफ कर दिया या। शेरशाह हुमायूं को 1539 में चौसा तथा 1540 में बिलग्राम की लड़ाई में हराकर हरियाणा समेत मुगल राज्य पर कब्जा कर लिया और हुमायूं को भाग कर जाना पड़ा।

शेरशाह के अधीन हरियाणा

शेरशाह का हरियाणा के साथ संबंध जन्म से था। उसका दादा इब्राहिम सूरी जो अफगानिस्तान में रोह नामक स्थान का रहने वाला था। सुलतान बहलोल लोधी के राज्य काल में भारत आया। सबसे पहले उसने हिसार के जमींदार जमाल खां के यहां नौकरी कर ली। जमाल खां ने उसे 40 सिपाहियों का सरदार बना कर नारनौल परगने के कुछ गांव उसे गुजर बसर के लिए दे दिए। इब्राहिम के अपने पुत्र हसन की सहायता से इस छोटी जागीर पर खूब उन्नति करके थोड़े ही दिनों में अपनी स्थिति को काफी मजबूत कर लिया। हसन खां सुलतान बहलोल लोधी के दरबारी उमर खां के यहां नौकरी कर ली। उमर खां ने हसन खां को शाहबाद का परगना जागीर के रूप में दे दिया। इब्राहिम की म त्यु के बाद हसन खां को नारनौल की जागीर भी मिल गई। यहीं पर 1486 में शेरशाह का जन्म हुआ। उसका बचपन का नाम फरीद था। शेरशाह ने बाद में दिल्ली का शासक बनने के बाद अपने दादा इब्राहिम सूरी का मकबरा नारनौल में बनवाया।

शेरशाह ने हरियाणा के शासन प्रबंध में विशेष रुचि ली क्योंकि यहीं उसकी जन्मभूमि थी। उसने सारे प्रबंध को चार सरकारों, दिल्ली, मेवात, हिसार और सरहिंद में विभाजित कर दिया। प्रत्येक सरकार का शासन प्रबंध मुख्यतः दो अधिकारियों के हाथ में था जिन्हें मुख्य शिकदार या शिकदार-ए-शिकदारान और मुख्य मुंसिफ या मुंसिफ-ए-मुंसिफान कहा जाता था। मुख्य शिकदार मुख्यतः सैनिक अधिकारी होता था। उसके पास एक सैनिक टुकड़ी रहती थी। उसका मुख्य काम सरकार में शांति

व्यवस्था कायम रखना था। उसका काम फौजदारी मुकदमों का फैसला करना भी था। दूसरे मुख्य मुंसिफ सामान्य रूप से न्यायधीश होता था जिसका कार्य दिवानी मुकदमों का निर्णय करना होता था।

शेरशाह ने प्रत्येक सरकार को आगे परगनों में बांटा। प्रत्येक परगने की व्यवस्था के लिए शिकदार नियुक्त किया। यह एक सैन्य अधिकारी होता था जो परगने में कानून व्यवस्था बनाए रखने के लिए उतरदायी था। इसके अतिरिक्त इसका अन्य कार्य बादशाह के फरमानों को लागू करना था। परगने का दूसरा अधिकारी मुंसिफ था। यह परगने के वित्त तथा लगान संबंधी कार्यो को देखता था और दिवानी मुकदमों का फैसला भी करता था। इसकी सहायता के लिए कानूनगो तथा खंजाची नामक अधिकारी भी होते थे।

शासन की सबसे छोटी इकाई ग्राम होती थी, जिसका प्रबंध पंचायत मुकदम व पटवारी द्वारा किया जाता था। पंचायत जिसमें गांव के प्रभावशाली व्यक्ति होते थे। लोगों के आपसी झगड़ों का फैसला करती थी। मुकदम गांव का मुखिया होता था। वह लगान इकट्ठा करता था तथा चौकीदार की सहायता से कानून और व्यवस्था कायम रखता था। पटवारी ग्राम का भूमि संबंधी रिकार्ड भी रखता था।

17 मई, 1545 को दुर्भाग्य से एक बारूदी सुरंग फटने से शेरशाह की म त्यु हो गई। उसके उतराधिकारी इस्लाम शाह तथा आदिल शाह अयोग्य सिद्ध हुए। चारों तरफ अराजकता तथा अव्यवस्था फैल गई। इस अराजकता का हुमायूं ने खूब फायदा उठाया और फरवरी 1555 ई० में उसने दिल्ली पर एक बार फिर अधिकार कर लिया। इस प्रकार हरियाणा एक बार फिर मुगलो के अधीन आ गया। परंतु भाग्य ने हुमायूं का साथ नहीं दिया और वह पुनः राज्य प्राप्त करने के थोड़े दिन बाद ही 26 जनवरी, 1556 ई० को अपने पुस्तकालय की सीढ़ियों से गिरने के बाद उसकी म त्यु हो गई। जब हुमायूं की म त्यु हुई तो अकबर पंजाब में था। उसके संरक्षक बैरम खां ने 14 फरवरी 1556 को कलानोर में ईटों का एक चबूतरा बनाकर अकबर का राज्यभिषेक कर दिया। इस समय अकबर की आयु केवल 13 वर्ष की थी और वह चारों तरफ से शत्रुओं से घिरा हुआ था। उसके शत्रुओं में सबसे खतरनाक हेमचंद्र हेमू था।

हेमचंद्र विक्रमादित्य (हेमू)

मध्यकालीन इतिहास में हेमू का नाम बड़े आदर से लिया जाता है। उसका जन्म आधुनिक हरियाणा के रिवाड़ी जिले के कुतुबपुर नामक स्थान पर हुआ था। उसके पिता का नाम पूर्णदास था। वह जाति से धुसर था, जो बनियो अर्थात् व्यापारी वर्ग की एक उपजाति थी। हेमू के पिता की आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं थी इसलिए उसे बचपन में अनेक बार कष्ट झेलने पड़े तथा वह अच्छी शिक्षा भी प्राप्त नहीं कर सका। उसे छोटी अवस्था में ही काम करके अपना पेट पालना पड़ा। बचपन से ही हेमू एक चतुर व परिश्रमी व्यक्ति था।

छोटी उम्र में ही हेमू ने सूर शासकों के यहां नौकरी कर ली। पहले वह सरकारी फेरीवाला बना, थोड़े समय बाद सरकारी ठेकेदार और फिर शाहना-ए-बाजार बन गया। शाहना-ए-बाजार अफगान राज्य में बहुत ही महत्वपूर्ण पद होता था। उसका कार्य सारे राज्यों के बाजारों की व्यवस्था देखना होता था। इसके बाद हेमू ने गुप्तचर विभाग का मुखिया तथा दरोगा-ए-डाक चौकी जैसे महत्वपूर्ण पदों को भी संभाला। अबुल फजल के अनुसार "चालाकी में निपुण होने के कारण तथा अपनी व्यापारिक चतुराई से हेमू ने इस्लाम शाह की नगरों में एक बहुत ही योग्य व्यक्ति जता दिया।" इस्लाम शाह राज्य के महत्वपूर्ण मामलों में हेमू से विचार विमर्श किया करता था।

इस्लाम शाह की म त्यु के पश्चात आदिल शाह बादशाह बना। हेमू ने आदिल शाह पर भी अपने व्यक्तित्व की गहरी छाप छोड़ी। आदिल शाह ने हेमू को अपना प्रधानमंत्री नियुक्त किया। प्रधानमंत्री बनते ही हेमू ने सारा प्रशासकीय काम अपने हाथों में ले लिया। उसने अयोग्य व्यक्तियों को अपने पद से हटाकर उनके स्थान पर योग्य व्यक्तियों को नियुक्त किया तथा न्याय वितरण की जिम्मेदारी भी खुद संभाली ली। अबुल फजल के अनुसार नाम के लिए तो बादशाह आदिल शाह था किंतु वास्तव में राज्य चलाने वाला हेमू था। हेमू ने प्रधानमंत्री पद के अतिरिक्त सेना के नेत त्व को भी अपने हाथों में ले लिया। कई विद्वानों का विचार है कि उच्च पद पर एक हिंदू को लगाने का कारण अफगान सरदार आदिल शाह से असंतुष्ट हो गए थे। लेकिन समकालीन इतिहासकार इसके विपरीत हैं। हेमू अफगानों के हितों तथा प्रसन्नता का सदैव ध्यान रखता था। बदायूंनी का भी विचार है कि हेमू कई बार सैनिकों को अपने यहां खाने के लिए बुलाता था और बड़ी तसल्ली करता था। परिणामस्वरूप सब अफगान लोग उससे प्रसन्न थे।

आदिल शाह की अयोग्यता का फायदा उठाते हुए बहुत से अफगान सरदारों ने अपनी-अपनी जगहों पर स्वतंत्र शासक होने की घोषणा कर दी। ताजखां किरानी ने दक्षिण बिहार पर अधिकार कर लिया, मोहमदखाँ सुर ने बंगाल पर कब्जा कर लिया और वह भारत का सम्राट बनने का स्वप्न देखने लगा। बाज बहादुर ने मालवा पर अधिकार कर लिया। इब्राहिम खां सुर और अहमद खां सुर अलग से अफगान राज्य के स्वामी होने का दावा पेश करने लगे। 'मजखान' के लेखक नियामत उल्लाह के अनुसार "प्रत्येक प्रांत और गांव विद्रोह की लपटों में थे।" ऐसे बुरे दिनों में हेमू ने 22 युद्ध करके अपने स्वामी आदिल शाह के सब शत्रुओं को सफाया कर दिया।

26 जनवरी 1556 को जब हुमायूं की म त्यु हो गई तो दिल्ली के खाली सिहांसन पर कब्जा करने के लिए आदिल शाह ने हेमू को भेजा। हेमू 7,000 घुड़सवारों 20 हाथियों तथा कुछ अफगान सरदारों के साथ मुगलों से लोहा लेने के लिए चल पड़ा। हेमू जब इटावा पहुंचा तो वहां के शासक कीयारखां ने थोड़ी सी लड़ाई के बाद हथियार डाल दिए। इटावा से हेमू कालपी पहुंचा। हेमू के नाम से यहां का सरदार अब्दुल्ला खां उज्बेग दिल्ली की तरफ भाग गया। इसके पश्चात हेमू आगरा की तरफ बढ़ा। यहां के गर्वनर सिकंदर खां उज्बेग ने हेमू से लड़ने की हिम्मत नहीं कि और वह आगरा को खाली करके दिल्ली भाग गया। इस प्रकार बड़ी आसानी से हेमू का दिल्ली पर कब्जा हो गया।

आगरा से हेमू दिल्ली की तरफ बढ़ा और उसने दिल्ली से 12 किलोमीटर दूर तुगलकाबाद में डेरा डाल लिया। यहां पर संभल के शादी खां भी हेमू की सहायता के लिए उससे आ मिला। अब मुगलों के सामने लड़ने के अलावा कोई रास्ता नहीं बचा था। और 7 अक्टूबर 1556 को दोनों सेनाओं का आमना सामना लड़ाई के मैदान में हुआ। हेमू ने अपनी सेना को तीन भागों में बांटा हुआ था। केंद्रीय भाग की कमान हेमू स्वयं संभाले हुए था। बाएं भाग की कमान अल्लाहदाद खां के हाथों में थी। जब की दाएं भाग का नेत त्व राय हुसैन डालवानी कर रहा था। अलवर के हाजी खां ने भी इस लड़ाई में महत्वपूर्ण योगदान दिया था, लेकिन समकालीन इतिहासकार उसकी स्थिति के बारे में मौन है। मुगलो की सेना की कमान तारदी बेग के हाथ में थी। अफजल खां, असरफ खां, मौलाना मीर मोहम्मद शेरवानी, हैदर मुहमद खां, इस्कंदर खां और अब्दुल उज्बेग उसकी सहायता कर रहे थे।

आक्रमण की शुरूआत मुगल सेना द्वारा हुई। मुगलों के बाएं पक्ष के जनरल इस्कंदर खां ने हेमू के दाएं पक्ष पर आक्रमण करके हरा दिया। इस लड़ाई में हेमू का एक जनरल राय हुसैन जिलवानी मारा गया। जब हेमू ने देखा कि मुगल सेना हौंसले और होश के साथ बढ़ रही है तो उसने हाल ही में अलवर से आई सेना और उसके जनरल हाजी खां को साथ लेकर सीधा तारदी बेग पर हमला बोल दिया। तारदी बेग इस सीधे हमले को सह न सका और युद्ध मैदान से भाग खड़ा हुआ। जब मुगलों की बाकी सेना को तारदी बेग के भागने का समाचार मिला तो वे सभी मैदान छोड़कर भाग खड़े हुए। भागती हुई मुगल सेना अपने पीछे बहुत सा धन, हाथी व घोड़े छोड़ गई। हेमू ने 160 हाथी, 1000 अरबी घोड़े और अतंतः धन राशि अपने कब्जे में ले ली।

इस स्थान पर हेमू का सोचने का ढंग बदल गया। उसने सोचा सारी अफगान सेना उसके इशारों पर नाचती है। आदिल शाह बड़ा ही निर्बल और अयोग्य व्यक्ति था और वह बहुत दूर भी था। और बिना सेवा के कुछ कर भी नहीं सकता था। प्रत्येक पहलू पर सोचने विचारने के बाद उसने स्वतंत्र होने का फैसला कर लिया। सबसे पहले उसने दिल्ली और आगरा से मिले बेशुमार धन तथा कीमती सामान को अफगान सेना में बांटकर उसे अपनी और कर लिया। इसके बाद हेमू ने 7 अक्टूबर 1556 को शाही छत्र के नीचे बैठकर दिल्ली में प्रवेश किया। उसने विक्रमादित्य की उपाधि धारण की तथा अपने नाम के सिक्के भी चलवाए। हेमू ने राजा बनते ही विजित प्रदेशों के प्रशासन को ठीक रूप से चलाने के लिए ठोस कदम उठाए। उसने दूर प्रदेशों पर अपने गर्वनर नियुक्त किए तथा दिल्ली और इसके आसपास के क्षेत्र विशेषकर हरियाणा पर इसका सीधा नियंत्रण लागू किया।

जिस समय दौलताबाद की हार की खबर अकबर के पास पहुंची उस समय अकबर जालंधर में सुलतान सिकंदर के साथ उलझा हुआ था। खबर पाते ही अकबर अपने फुफा ख्वाजा खिजर खां को सुल्तान सिकंदर का मुकाबला करने के लिए छोड़ दिया स्वयं दिल्ली की तरफ कुच किया। मुगलों के हारे हुए सरदार उसका सरहिंद के स्थान पर इंतजार कर रहे थे। सरहिंद के स्थान पर तारदी बेग की कायरता के कारण उसका वध कर दिया गया।

पानीपत की दूसरी लड़ाई

दिल्ली पर कब्जा करने के पश्चात हेमू ने लगभग एक लाख सेना के साथ पानीपत की तरफ कूच किया तथा पानीपत के पश्चिम में लगभग चार मील की दूरी पर डेरा डाल दिया। उधर मुगल सेना ने सरहिंद से चलकर पहला पड़ाव थानेसर में डाला। यहां पर अकबर ने बड़ी समझदारी से काम लिया। पहले उसने 10,000 घुड़सवारों की सेना अली कुली खां के नेत त्व में हेमू की ताकत का जायजा लेने के लिए भेजी। हेमू ने भी अपना तोपखाना मुबारक खां और बहादुर खां के नेत त्व में मुगलों की बढ़त को रोकने के लिए थोड़ा आगे भेज दिया था। अलीकुली खां ने जब उन्हें देखा तो उस पर हमला बोल दिया। हेमू का तोपखाना ज्यादा ताकतवर नहीं था। इसलिए मुगलो का उस पर कब्जा हो गया। हेमू की यह बड़ी भारी गलती थी। तोपखाने को एक कमजोर सैनिक टुकड़ी के साथ नहीं भेजना चाहिए था। तोपखाना चले जाने से हेमू की सेना का एक पक्ष कमजोर हो गया।

हेमू के तोपखाने पर कब्जा होने के समाचार के पश्चात अकबर की सेना ने थानेसर से कूच किया तथा पानीपत के मैदान में पड़ाव डाल दिया। सबसे पहले अकबर ने यहां पर एक दरबार लगाया जिसमें उसने अपने अमीरों को सम्मानित किया तथा उपाधियों से विभूषित किया। यहां पर बैरमखां ने उन्हें अपने बादशाह का साथ निभाने की शपथ दिलाई तथा कहा कि यदि वे लड़ाई हार गए तो भी अपने घर नहीं पहुंच सकेंगे क्योंकि वह यहां से 500 कोस दूर है।

पानीपत के मैदान में हेमू ने अपनी एक लाख सेना को तीन भागों में बांटा हुआ था। मध्य भाग की कमान वह स्वयं संभाले हुए थे जिसमें 30,000 अफगान व राजपूत घुड़सवार सैनिक व 500 हाथी थे। हेमू स्वयं अपने प्रसिद्ध हाथी हवाई के ओहदे पर बैठा था ताकि वह अपनी सेना का निरीक्षण आसानी से कर सके। उसके दाएं पक्ष की कमान सादीखां के हाथ में थी जबकि बाएं पक्ष का नेत त्व हेमू का भांजा रामया कर रहा था। मुगल सेना का नेत त्व बैरमखां के हाथ में था। उसकी सेना में प्रशिक्षित व अनुशासित चुगताई व उज्बेग सैनिक थे जो कि अपनी बहादुरी के लिए प्रसिद्ध थे।

लड़ाई की शुरूआत हेमू की सेना की तरफ से हुई। हेमू की सेना ने मुगलों के बाएं भाग पर आक्रमण कर दिया तथा उनके छक्के छुड़ा दिए। जब यह समाचार बैरमखां के पास पहुंचा तो उसने अपनी बाकी सेना को लड़ने के लिए कहा। मुगलों की सेना का मध्य भाग आगे बढ़ा तथा उन्होंने एक नाले में मोर्चा संभाल लिया, जिसे हेमू के हाथी पार नहीं कर सकते थे। इस समय मुगल जनरल अली कुली खां ने हेमू की सेना पर पीछे से धावा बोल दिया। इसी दौरान हेमू के दो जनरल सादी खां और भगवान दास मारे गए लेकिन उसने हिम्मत नहीं हारी और बहादुरी से लड़ता रहा। लेकिन भाग्य शायद मुगलो के साथ था। अचानक एक तीर हेमू की आंख में लगा जो पुतली को छेदता हुआ पीछे निकल गया। हेमू मुर्छित हो गया तथा हाथी के हौदे से गिर गया। जब सैनिको ने हौदा खाली देखा तो वे भाग खड़े हुए। थोड़ी देर बाद जब हेमू को होश आया तो हेमू ने तीर को कसकर पकड़ा और बाहर खीचा। तीर के साथ नेत्र भी बाहर निकल पड़ा। हेमू ने अपने घाव पर रूमाल बांधा और सारी पीड़ा तथा कष्ट की दशा होते हुए भी अदम्य साहस के साथ बचे खुचे सैनिकों को साथ लेकर शत्रु से फिर युद्ध करने लगा। लेकिन विशाल मुगल सेना के बीच घायल हेमू को थोड़े से सैनिकों के साथ बचकर निकलना असंभव था। हेमू एक बार फिर बेहोश हो गया। हेमू के महावत ने हाथी को जंगलों की तरफ ले जाकर उसे बचाने का प्रयास किया। लेकिन शाह कुली खां ने उसे पकड़ लिया। इस प्रकार बेहोश हेमू को अकबर के पास ले जाया गया जहां उसका वध कर दिया गया और इस प्रकार मुगलो की सत्ता पुनः स्थापित हो गई।

हेमू के बाद हेमू के परिवार के अन्य लोगों पर बड़ी मुसीबत आई। हेमू के पिता 80 वर्षीय पूर्णदास को इस्लाम स्वीकार करने के लिए मजबूर किया गया। जब उसने इनकार किया तो उसे कत्ल कर दिया गया। हेमू कि विधवा को पकड़ने के लिए मुगल सेना ने बड़े प्रयत्न किए किंतु वह बैजवाड़ा के जंगलों में जा छुपी और मुगलों के हाथ नहीं आई। हेमू के वंशज और जाति के लोगों को रेवाड़ी के आसपास से पकड़कर दिल्ली और आगरा की जेलों में ठुस दिया गया। किंतु जब कुछ समय पश्चात अकबर ने हिंदूओं के प्रति उदार नीति अपनाई तो इन लोगों को छोड़ दिया गया।

सतनामियों का विद्रोह

सतनामी मध्यकालीन भक्ति आंदोलन का एक पंथ था। इसकी स्थापना 1543 ई० में नारनौल के समीप बिजेसर गांव में एक भक्त बीरभान ने की थी। वास्तव में यह जमायत संत रेदास द्वारा चलाए गए रेदासी संगठन की एक शाखा थी। इस संगठन के लोगों को साध, सतनामी तथा मुण्डीया भी कहा जाता था क्योंकि ये लोग अपनी दाढ़ी, मुछ व सिर मुंडवा कर रखते थे।

यह जमायत जाति पाति को नहीं मानती थी तथा इसमें अहीर, खाती, चमार, सुनार व अन्य छोटे मोटे धंधे करने वाले लोग शामिल थे।

सतनामी लोग बड़े बहादुर थे। खफीखां उनके बारे में लिखता है कि "मई 1672 ई० की एक महत्वपूर्ण घटना हिंदू भक्त सतनामियों के विद्रोह की थी। इन्हें मुण्डीया कहा जाता था। ये लोग घर बारी थे तथा नारनौल परगने में रहते है। यद्यपि ये लोग फकीरों की तरह रहते हैं किंतु इनमें से अधिक या तो खेतीबाड़ी करते है या छोटे मोटे व्यापारिक धंधे इनके संगठन के सिद्धांतों के अनुसार ये लोग सच्चे नाम के साथ जीना चाहते हैं और कभी भी बेईमानी या अन्याय से धन नहीं कमाते। यदि कोई इन पर अत्याचार करता है तो ये बर्दाश्त नहीं करते। इनमें अधिकतर लोग सदैव हथियारों से लैस होकर फिरते हैं।" इरफान हबीब के अनुसार जाति पाति का विरोध करना, भीख न मांगना, गरीबों को न सताना, अन्यायी व दूराचारी पुरुष से दूर रहना, धनी तथा बेईमान व्यक्ति से दूर रहना आदि सतनामियों के प्रमुख सिद्धांत थे। अकबर व जहांगीर के समय मे सतनामी बड़े शांतिमय ठंग से अपने गांवों में रहते थे। किंतु औंरगजेब की नीति से बहादुर सतनामी में विद्रोह की भावना पनपने लगी। बादशाह के अहलकारों से रोज उनकी टक्कर हो जाया करती थी।

इस विद्रोह की शुरूआत एक छोटी सी घटना से हुई जिसने बाद में विकराल रूप धारण कर लिया। एक सतनामी किसान की एक सरकारी प्यादे से जो कि सरकारी खेतों की देखभाल कर रहा था, कहासुनी हो गई। प्यादे ने सतनामी के सिर पर एक लकड़ी दे मारी। सतनामी ने शोर मचाया तो बहुत से सतनामी घटनास्थल पर इकट्ठा हो गए और सरकारी प्यादे को बुरी तरह से पीट डाला। जब नारनौल के शिकदार को इस घटना का पता चला तो उसने फौरन एक सैनिक टुकड़ी सतनामियों को गिरफ्तार करने के लिए भेजी। किंतु इस समय सतनामी बड़ी संख्या में इकट्ठा हो चुके थे और उन्होंने इस सैनिक टुकड़ी को बुरी तरह पीटा और उनके हथियार छीन लिए।

सतनामियों के विद्रोह की ख़बर नारनौल के चारों तरफ जंगल की आग की तरफ फैल गई और उन्होंने औंरगजेब के विरुद्ध धर्म युद्ध का बिगुल बजा दिया। हजारों सतनामी युद्ध के मैदान में आ खड़े हुए। मनुची के अनुसार इसी समय एक बुढ़ी स्त्री उनके बीच आ गई और उसने उनका साहस बढ़ाते हुए घोषणा कि "वह ऐसा मंत्र पढ़ेगी कि उसकी ध्वजा के नीचे लड़ने वाले सतनामियों पर शत्रु के शस्त्रों का कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा और यदि किसी कारण कोई सतनामी मारा गया तो उसके स्थान पर 80 सतनामी खड़े हो जाएंगे। उसने आगे कहा कि यदि उन्होंने उसकी बात मानी तो वह उन्हें दिल्ली का मालिक बना देगी। क्योंकि बादशाह के पास दस हजार से ज्यादा सेना नहीं है उसकी सारी सेना शाह आलम के नेत त्व में शिवाजी के विरुद्ध अभियान पर गई हुई है।"

सतनामियों का साहस, जोश और संख्या इतनी अधिक थी कि 'मसीर-ए-आलमगीरी' में उनके बारे में लिखा है कि वे लोग अति विद्रोही है। ये अचानक जमीन से निकलने वाली सफेद चीटियों या आसमान से आने वाले टिड्डी दल की तरह इकट्ठे हो जाते हैं। उन्होंने नारनौल के फौजदार खरतलब खां की सेना को हराकर उसे मार डाला। तत्पश्चात् उन्होंने नारनौल नगर पर अधिकार कर लिया। सारे शहर को लूटा, मस्जिदो को ढहा दिया और अपनी सरकार बनाकर सारे जिले की व्यवस्था अपने हाथ में ले ली। जगह-जगह पर चौकियां बनाकर किसानों से मालगुजारी हासिल की गई और सारे नारनौल क्षेत्र में मुगल सरकार के सब चिन्ह गिरा दिए गए।

जब सतनामियों के विद्रोह की खबर दिल्ली पहुंची तो मुगल दरबार में बेचैनी और घबराहट फैल गई। औंरगजेब ने भी इस पर बड़ी चिंता व्यक्त की। औंरगजेब ने एक विशाल सेना शहजादा मुहमद अकबर तथा अपने प्रमुख तथा अनुभवी सेना नायकों जिनमें रतनदाज खां, हामीद खां, याहया खां, नजीब खां, समी खां भी शामिल थे। नारनौल के लिए रवाना कर दी। सतनामियों के मंत्रों की तथा बहादुरी की बातें सुनकर शाही सेना में काफी घबराहट थी। औंरगजेब को इसका पता चला तो सैनिकों के इस भय को दूर करने के लिए उसने खुद जादू टोने अपने हाथ में लिखकर भेजे जिन्हें हाथियों तथा घोड़ों के सिर पर लटका दिया गया तथा शाही सेना के झंडे में सिलवा दिया गया।

जब शाही सेना नारनौल के समीप पहुंची तो सतनामी उन पर टूट पड़े। एक बड़ा ही भयानक युद्ध हुआ। 'मसीर-ए-अलमगीरी' के अनुसार सतनामियों ने अपना बलिदान दिया। मुगल सेना को जान माल की काफी हानि हुई। मुहमद सफी मुस्तैदी के शब्दों में "प्रायः शाही अमीर व सिपाही मैदाने जंग में काम आए। 14-15 हजार की संख्या में से शाही सेना के बहुत थोड़े सैनिक बचकर वापस दिल्ली आए।"

हरियाणा में मुगल प्रशासन

मुगल शासन प्रबंध भारतीय विदेशी तत्वों का मिश्रण था। जादूनाथ सरकार के अनुसार "यह इरानी अरबी प्रणाली का भारतीय रूपांतर था।" भारत में साम्राज्य स्थापित करने से पहले मुगलों ने इराक के आबासिद खलीफा की शासन पद्धति को अपनाया था। क्योंकि यह शासन प्रणाली समकालीन मुगल शासकों के लिए एक आदर्श थी। लेकिन भारत में राज्य स्थापित करने पर उन्होंने अपनी यहां की शासन प्रणाली में उन देशी तत्वों को सम्मिलित करने की आवश्यकता अनुभव की जिनकी उपयोगिता दीर्घकालीन प्रयोग के पश्चात प्रमाणित हो चुकी थी। परिणामस्वरूप मुगलों ने अपने दरबार तथा उच्च कर्मचारी वर्ग की विदेशी मुस्लिम राज्य पद्धति के अनुसार संगठित किया। जबकि ग्रामीण शासन प्रबंध तथा भूमि कर प्रणाली का मूल आधार भारतीय रहा।

प्रांतीय प्रशासन

मुगल शासकों ने अपने साम्राज्य का शासन सुचारू रूप से चलाने के लिए साम्राज्य को कई भागों और उपभागों में विभाजित कर रखा था। राज्य की सबसे बड़ी इकाई प्रांत थी। जिसे सुबा कहा जाता था। प्रो० श्रीराम शर्मा के अनुसार अकबर ही पहला मुगल शासक था जिसने प्रांतीय शासन व्यवस्था का सुत्रपात किया। प्रांतीय शासन अपनी रूप रेखा में केंद्रीय शासन से मिलता जुलता था। इसके प्रशासनिक विभाग अपनी कार्य विधि में केंद्रीय विभागों से अधिक भिन्न नहीं थे।

प्रारंभ में बाबर ने जब हरियाणा प्रदेश को जीता तब इसके प्रशासन को सुचारू रूप से चलाने के लिए बाबर ने इसे चार सरकारों में बांटा था। दिल्ली सरकार, मेवात सरकार, हिसार सरकार व सरहिंद सरकार। इसके अतिरिक्त उसने नारनौल तथा समानाबाद की जागीर अपने दो विश्वसनीय सरदारों क्रमशः अहसान तैमूर तथा बुगारा सुल्तान को दी थी। अकबर के समय में हरियाणा प्रदेश का बहुत बड़ा भाग दिल्ली सुबे के अंतर्गत था तथा कुछ भाग आगरा सुबे में था। ये सुबे सरकारों में बंटे हुए थे तथा सरकारें परगनो में।

प्रांतीय शासन के मुख्य अधिकारी तथा उनके कार्य निम्न प्रकार थे।

सुबेदार अथवा सिपहसालार अथवा नाजिम

प्रांतीय शासन का मुखिया सिपहसालार होता था। अकबर के बाद उसे सुबेदार अथवा नाजिम के नाम से जाना जाने लगा। सुबेदार प्रांत में बादशाह का प्रतिनिधि होता था। उसके मुख्य कार्य थे-

1. प्रांत में शांति तथा व्यवस्था बनाए रखना।
2. प्रांत में निष्पक्ष न्याय वितरण करना।
3. प्रांत में क षि उद्योग तथा व्यापार को प्रोत्साहन देना।
4. प्रांत के लोगों के कल्याण के लिए सड़कों, कुंओं, नहरों तथा अस्पतालों का निर्माण करवाना।
5. भूमिकर एकत्रित करने वाले कर्मचारियों की सहायता करना।
6. प्रांतीय सेना का अध्यक्ष होने के नाते छोटे-छोटे विद्रोह को दबाना।

प्रांत में सूबेदार निरकुंश तथा स्वेच्छाचारी नहीं हो सकता था। उस पर कुछ प्रतिबंध होते थे। वह अपनी इच्छानुसार व्यक्ति को म त्युदंड नहीं दे सकता था। वह अपने नाम के सिक्के जारी नहीं कर सकता था। बादशाह की आज्ञा के बिना वह किसी शत्रु से युद्ध अथवा संधि नहीं कर सकता था। तीन या 5 वर्षो के बाद सुबेदारों को एक प्रांत में बदल दिया जाता था। इस प्रकार सुबेदारों को अपने चरित्र तथा व्यवहार को निष्कलंक रखना होता था।

दिवान

दिवान प्रांत में वित्त विभाग का मुख्य अधिकारी होता था। और उसका संबंध मुख्यतः भूमि प्रबंध से होता था। दिवान की नियुक्ति बादशाह केंद्रीय दिवान के परामर्श से करता था। उसका सीधा संबंध केंद्रीय दिवान के साथ था। जिसको वह नियमित रूप से सुबे की आय तथा शासन के संबंध में सूचना देता रहता था। प्रांतीय दिवान वास्तव में सुबेदार पर एक प्रकार का प्रतिबंध था। वह सुबेदार के अधीन नहीं होता था। प्रांतीय दिवान के कार्य इस प्रकार थे-

1. प्रांत की आय तथा व्यय का हिसाब रखना।
2. प्रांतीय कोष की देखभाल का प्रबंध करना।
3. भूमिकर निर्धारित करना तथा उसकी वसूली का उचित प्रबंध करना।
4. आवश्यकता के समय क षकों को ऋण देना।
5. दिवानी मुकदमों का फैसला करना।
6. केंद्रीय दिवान को क षकों की दशा की जानकारी देना।

बख्शी

केंद्रीय मीर बख्शी की तरह प्रांत में भी बख्शी होता था। बख्शी की नियुक्ति बादशाह मीर बख्शी की सलाह से करता था। बख्शी के निम्नलिखित कार्य थे-

1. प्रांतीय सैनिकों को भर्ती करना और उनमें अनुशासन बनाए रखना।
2. समय-समय पर घोड़ों का निरीक्षण करना।
3. सैनिक संगठन को सुद ढ़ बनाना।
4. बादशाह के आदेश पर सैनिकों को लेकर अभियानों में शामिल होना।

कई बार वह गुप्तचर विभाग के मुखिया के रूप में भी काम करता था। मंसबदारों को वेतन बख्शी की अनुमति के बाद ही दिया जाता था। कोई भी मंसबदार बख्शी की आज्ञा के बिना इधर उधर नहीं जा सकता था।

सदर तथा काजी

सदर की नियुक्ति बादशाह केंद्रीय सदर की सलाह से करता था। वह परोपकार तथा धार्मिक विभाग का मुखिया होता था। वह प्रांत के संत महात्माओं, विद्वानों तथा पीरो तथा फकीरों को धर्मार्थ दी गई भूमि का उचित प्रबंध करता था और उसके संबंध में उठने वाले झगड़ों का निर्णय करता था और उसके संबंध में उठने वाले झगड़ों का निर्णय भी करता था। वह सुबेदार अथवा दिवान के अधीन नहीं था। उसका अपना अलग कार्यालय था।

काजी प्रांत का मुख्य न्यायधीश होता था। वह राजस्व संबंधी झगड़ों को छोड़कर शेष सभी मुकदमों का निर्णय करता था। कई बार काजी और सदर का काम एक ही व्यक्ति को सौंप दिया जाता था।

वाकियानवीस

यह व्यक्ति राज्य में होने वाली घटनाओं तथा प्रांत में सरकारी कर्मचारियों के कार्यो के संबंध में सम्राट को गुप्त रूप से सूचनाएं देता था। वह स्वयं राजधानी में रहता था तथा उसके प्रतिनिधि परगनों तथा राजधानी के महत्वपूर्ण विभागों में घूमते रहते थे। इसके अधीन कई गुप्तचर व लेखक होते थे।

कोतवाल

प्रांत के नगरों का मुखिया कोतवाल होता था, उसके मुख्य कार्य थे- नगर में शांति स्थापित करना, नगर की सफाई का प्रबंध करना, शरारती तत्वों पर निगरानी रखना, कब्रिस्तान तथा शमशन भूमि का प्रबंध करना और नगर में आए विदेशियों की देखभाल करना।

सरकारों को शासन प्रबंध

मुगलकाल में प्रत्येक प्रांत सरकारों में विभक्त होता था। अकबर के शासन काल में हरियाणा प्रदेश दिल्ली तथा आगरा सुबों के अंतर्गत आता था। दिल्ली सुबे में हरियाणा क्षेत्र की छ सरकारें थीं- दिल्ली, रेवाड़ी, हिसार, सरहिंद, आगरा और नारनौल। आगरा सुबे में 4 सरकारें थी- (i) सहर पहाड़ी इसे होड़ल व ननेहटा परगने, (ii) तिजारा नगीना परगना, (iii) सहारनपुर इसमें इंद्री परगना आता था, (iv) कोल (अलीगढ)। इसमें केवल नूह का परगना था। ये सरकारें आजकल के जिलों के समान थी।

सरकार के प्रबंध के लिए निम्नलिखित कर्मचारी होते थे।

फौजदार

यह सरकार का सैनिक व कार्यपालक अधिकारी होता था जो सुबेदार के अधीन होता था। यह सरकार में शांति व व्यवस्था बनाए रखता था, सम्राट के आदेशों को लागू करता था। इसके अधिकार में एक छोटी सी सैनिक टुकड़ी भी होती थी। यह भूमि कर एकत्रित करने में आमील की सहायता करता था।

आमील गुजार

यह सरकार के वित्त विभाग का मुखिया होता था। इसके मुख्य कार्य थे- (i) सरकार में क षि भूमि को पेमाईस ठीक से करना, (ii) क षकों की सुख सुविधा का ध्यान रखना और यह देखना कि राज कर्मचारी उनसे अधिक कर वसूल न करे, (iii) कानूनी मुकद्दमों और पटवारियों के रजिस्टरों की पड़ताल करना, (iv) उच्च अधिकारियों को क षि की अवस्था तथा मंडियों में अनाज के भाव के संबंध में सुचित करना, (v) बजंर भूमि को खेती लायक बनाने के लिए कदम उठाना, (vi) उर्वरा शक्ति के आधार पर उपजाऊ भूमि का वर्गीकरण करना।

बितक्ची

बितक्ची आमील गुजार का सहायक होने के साथ-साथ उस पर एक प्रतिबंध भी था। बितक्ची का मुख्य कार्य भूमि तथा उपज संबंधी विभिन्न रिकार्ड तैयार करना। वह खजाने में भूमिकर जमा कराने वाले क षकों को रसीदें देता था। वह पटवारियों तथा मुकद्दमों आदि के रजिस्टरों की पड़ताल करने में भी आमील गुजार की सहायता करता था। इसके अतिरिक्त वह गांवों की सीमाएं निर्धारित करता था।

खजानेदार अथवा पोतदार

प्रत्येक सरकार में एक खजानेदार होता था जो क षकों से एकत्रित हुए धन को सरकारी कोष में सुरक्षित रखता थ। खजाने की एक चाबी खजानेदार के पास तथा दूसरी आमील गुजार के पास होती थी। खजानेदार अपनी मर्जी से खजाने से कोई भी रकम किसी को नहीं दे सकता था।

परगने का शासन प्रबंध

प्रत्येक सरकार परगनों में विभक्त थी तथा प्रत्येक परगने में कई गांव होते थे। परगने में निम्नलिखित प्रशासनिक अधिकारी होते थे-

1. **शिकदारः**- शिकदार परगने का मुख्य कार्यकारी अधिकारी होता था। उसके कार्य थे- परगने में शांति व्यवस्था बनाए रखना, विद्रोह को दबाना, चोरों को दण्ड देना। साधारण फौजदारी मुकदमों का निर्णय करना, उच्च अधिकारियों के आदेशों का पालन करना, आमील को भूमिकर एकत्रित करने में मदद करना।
2. **आमिलः**- यह परगने के राजस्व विभाग का मुखिया होता था और क षकों का इससे सीधा संबंध था। उसके मुख्य कार्य राजस्व निर्धारण करने तथा उसकी वसूली करने से संबंधित थे। वह भूमि की पैमाइश संबंधी रिकार्डो का निरीक्षण करता था, ताकि किसी क षक के साथ अन्याय न हो सके। वह समय पर लगान न देने वाले क षकों के विरुद्ध उचित कदम उठाता था। वह दिवानी मुकदमों का फैसला भी करता था।
3. **कानूनगो पोतदार व कारकुनः**- कानूनगो परगने में पटवारियों का मुखिया था। एक परगने में एक से अधिक कानूनगो होते थे। वह परगने की भूमि तथा भूमि संबंधी सभी रिकार्ड रखता था। पोतदार परगने का खजांची होता था। उसका मुख्य कार्य किसानों से मालगुजारी लेकर खजाने में जमा करना था। परगने में कुछ कारकुन भी होते थे जो फारसी भाषा में क षि संबंधी रिकार्ड रखते थे। अकबर के शासन काल में कारकुन के स्थान पर बितक्ची नामक अधिकारी काम करता था।
4. **ग्राम प्रबंधः**- गांव का प्रबंध मुकद्दम तथा ग्राम पंचायतों के हाथों में होता था। प्रत्येक ग्राम में एक पंचायत होती थी जिसमें गांव के प्रभावशाली एवं बुद्धिमान व्यक्ति होते थे। मुकद्दम गांव का भूमिकर एकत्रित करता था और चौकीदार की सहायता से गांव में शांति बनाए रखता था। गांव की व्यवस्था ग्राम पंचायत देखती थी। ग्राम पंचायत गांव की सफाई, शिक्षा, सिंचाई आदि का प्रबंध करती थी। इसके अतिरिक्त ग्राम पंचायत ग्रामीणों के छोटे मोटे झगड़ों का निर्णय भी करती थी। पंचायत के निर्णयों का मुगल सरकार उचित सम्मान करती थी।

मुगल कालीन हरियाणा की आर्थिक स्थिति

मुगल कालीन हरियाणा का क्षेत्र आज की भांति अधिकांशतः एक समतल मैदान था। केवल इसके उत्तर में शिवालिक व दक्षिण में अरावली की पहाड़ियां तथा पश्चिम और दक्षिण पश्चिम में रेत के कुछ टीले है। बारह मास बहने वाली नदी केवल यमुना नदी थी। जो कि इस प्रदेश की पूर्वी सीमा निर्धारित करते हुए बहती थी। लेकिन बरसाती नदियां भी थी- घग्गर, सरस्वती, चौतंग, मार्कण्डा उत्तरी क्षेत्र में तथा साहबी, कसावटी तथा दोहन आदि दक्षिण क्षेत्र में। यहां की भूमि उर्वरा भूमि थी लेकिन वर्षा की कमी थी और सिंचाई के लिए बारह मासी बहने वाली नदियों की भी कमी थी जिसके कारण क षि बहुत ज्यादा उन्नत दशा में नहीं थी। पशुधन के रूप में अवश्य ही यह क्षेत्र प्रसिद्ध था।

कषि

हरियाणा की आर्थिक स्थिति में क षि का महत्वपूर्ण स्थान रहा है। सदियों से यहां के लोगों का मुख्य धंधा क षि रहा है और मुगल काल में भी ऐसा ही था। मुगल काल में 90% जनसंख्या क षि करके अपना जीवन निर्वाह करती थी। किसान एक साल में दो फसलें लेता था- खरीफ और रबी की। मुख्य फसलें- चावल, बाजरा, ज्वार, मकई, तिल, कपास, नील आदि थी तथा रबी की मुख्य फसले- गेहूं, चना, जौ, मसूर, सरसो, तंबाकू आदि होती थी। इस प्रकार यहां की क षि की मुख्य विशेषता यह थी कि बड़ी संख्या में खाद्य तथा बिना खाद्य फसलों का उत्पादन होता था। आईने अकबरी में भी रबी मौसम के लिए 16 फसलों का तथा खरीफ के लिए 25 फसलों का उल्लेख मिलता है। पैदावार में जहां वर्षा अधिक होती थी वहां गेहूं गन्ना कपास, आदि बहुतायत से होता था। लेकिन खुश्क क्षेत्र में ज्वार, बाजरा, मुंग, मोठ, चना, जौ आदि अधिक होते थे।

कौन से क्षेत्र में कौन सी फसल होती थी समकालीन ग्रंथों में इनका विवरण मिलता है। इब्न बतुता ने अपने यात्रा विवरण सिरसा के चावलों की प्रशंसा करते हुए लिखा है "यहां का चावल बड़ा ही अच्छा है। इसकी उपज भी खूब है। यहां से यह देहली भेजा जाता है।" तैमूर ने अपनी आत्मकथा में सिरसा में गन्ने की फसल के खूब होने का जिक्र किया है। शर्फुद्दीन के "जफरनामा" में पानीपत में उत्तम किस्म के गेहूं होने का उल्लेख है। बाल किसान ब्राह्मण के अनुसार सिरसा में कपास खूब होता था। अबुल फजल की आईने अकबरी में मध्य में अच्छी फसलें होने का उल्लेख है। लेकिन गन्ने की फसल का उल्लेख उसने विशेष रूप से किया है।

डिलाईट जो यहां जहांगीर के समय में आया ने यहां पर उन्नत क षि का उल्लेख किया है। मोतमदखां ने अपने "इकबाल नामा-ए-जहागीर" में यहां के उत्तरी क्षेत्र में उत्तम किस्म के आमों का उल्लेख किया है। गुडगावां और फरीदाबाद जिलों में नील की अच्छी पैदावार होने का उल्लेख करते हुए यहां से 1,000 गाठे नील प्रतिवर्ष होने का वर्णन करता है। वर्नियर के अनुसार भी नील यहां काफी मात्रा में पैदा होती थी। पलवल में यह चावल और गन्ने की पैदावार का उल्लेख करता है। बाजरे की फसल भी यहां खूब होने का उल्लेख करता है। जार्ज टामस ने अपने संसमरणों में हिसार, हासी, भिवानी क्षेत्र में गेहूं, जो, चना, बाजरा, ज्वार, मुंग आदि फसल होने का उल्लेख करता है।

सिंचाई के साधन

सिंचाई के लिए क षक आमतौर पर वर्षा पर निर्भर करते थे। वर्षा के अतिरिक्त सिंचाई के लिए क त्रिम तरीकों का प्रयोग किया जाता था इनमें कुएं तथा तालाब का मुख्य रूप से इस्तेमाल किया जाता था। कुंए से पानी निकालने के लिए कई तरीकों का सहारा लिया जाता था। जहां पानी की सतह ऊंची थी वहां देकली का इस्तेमाल किया जाता था। चड़स का प्रयोग भी होता था। सबसे उपयुक्त सिंचाई का तरीका प्रशीयन व्हील या साखीया को समझा जाता था। यह लकड़ी और मिट्टी के बर्तनों द्वारा बना होता था और गरारियों के माध्यम से चलाता था। अधिक कीमत होने के कारण संभवतः आम किसान इसका प्रयोग नहीं कर सकता था। मुगल सम्राट कुंए खुदवाने में क षकों की सहायता करते थे। जार्ज टामस ने भी यहां पर कुंओं से की जाने वाली सिंचाई का उल्लेख करते हुए बताया है कि यह कुंए काफी गहरे होते थे। इसलिए एक गांव में एक या दो ही कुंए होते थे। जिससे क षक मिलकर पानी निकालते थे। लेकिन बाबर ने अपनी आत्मकथा में लिखा है कि कुछ क्षेत्र में जहां पानी का स्तर ऊंचा होता था जैसे करनाल व पानीपत का क्षेत्र, वहां कुंओं में रहट का प्रयोग होता था। कुंओं के अतिरिक्त कुछ स्थानों पर तालाबों से भी सिंचाई की जाती थी। लेकिन तालाब थोड़े समय के लिए ही काम में लाए जाते थे।

नहरें

फिरोज तुगलक ने अपने शासन काल में क षकों की स्थिति सुधारने के लिए नहरों का निर्माण करवाया था। इन नहरों में सबसे बड़ी नहर पश्चिमी यमुना नहर थी। यह यमुना नदी में से ताजेवाला से निकाली गई थी और हिसार तक पहुंचती थी। रास्ते में हजारों एकड़ भूमि को जल प्रदान करती थी।

दूसरी नहर सतलुज नदी से निकलवाकर झज्जर तक पहुंचाई गई थी। इसे पूरा करवाने में सुल्तान को कोई 50,000 मजदूर 2-3 वर्षो तक लगाने पड़े। तीसरी नहर फिरोजाबाद नहर थी जो सिरमौर की पहाड़ियों के पास से निकलवाकर हासी तक बाद में हिसार तक पहुंचाई गई थी। चौथी नहर घग्गर से खुदवा कर सिरसा के किले के नीचे से लेकर हरणी खेड़ा फिरोजाबाद तक ले जाई गई। यमुना से भी एक नहर इस कस्बे तक लाई गई थी, यह पांचवीं नहर थी।

लेकिन फिराज के बाद अकबर तक इन नहरों की तरफ किसी भी शासक ने ध्यान नहीं दिया। जिसके कारण इन नहरों की हालत खराब हो गई। अकबर ने इन नहरों की मरम्मत अवश्य करवाई लेकिन ऐसा लगता है मरम्मत अच्छी प्रकार से नहीं हो पाई क्योंकि वारिस के "बादशाहनामा" और इनायत के शाहजहां नामा से ज्ञात होता है कि शाहजहां के शासन काल तक आते-आते ये नहरें बिल्कुल खराब हो गई थी। शाहजहां ने इन नहरों को फिर से ठीक करवाया। उसने पश्चिमी यमुना नहर से सफीदो के पास से एक अन्य नहर भी निकलवाई जो शाहजहां बाद (दिल्ली) तक जाती थी। इस नहर का नाम "नहरे बरिश्त" रखा गया। शाहजहां द्वारा नहरों की तरफ ध्यान दिए जाने के कारण ही उसके समय मे क षि की काफी उन्नति हुई। लेकिन अठाहरवीं सदी की अराजकता के समय ये सब नहरे लगभग बर्बाद हो गई।

यद्यपि देश के अन्य भागों में ज्यादातर किसान लकड़ी के हल का प्रयोग करते थे लेकिन हरियाणा के क षक लोहे की फाल वाले हल का इस्तेमाल करते थे। यद्यपि इस बारे में हमारे पास स्त्रोतों का अभाव लेकिन हमारे पास इस बात के पुख्ता प्रमाण है कि पूर्व मध्य काल में भी हरियाणा के क षकों द्वारा लोहे के फाल वाले हल का प्रयोग किया जाता था। किसान किस प्रकार की खाद का इस्तेमाल करते थे। इस बारे में भी अधिक जानकारी नहीं है लेकिन हरियाणा में पशु धन प्रचूर मात्रा में होने के कारण किसान संभवतः गोबर से बनी खाद का इस्तेमाल करते थे। हरियाणा के किसानों को भूमि की उर्वरा शक्ति को बनाए रखने के लिए फसलों के हेर फेर का भी ज्ञान था।

भू लगान प्रणाली

मुगल काल में बाबर के समय हरियाणा क्षेत्र के क षकों से संभवतः लगान 50% की दर से उगाहा जाता था इसलिए किसान खुश नहीं थे। और इसीलिए उत्तरी हरियाणा क्षेत्र में उसे किसानों के सख्त विरोध का सामना करना पड़ा था। लेकिन शेरशाह सूरी ने अपने थोड़े से समय में क षकों की दशा सुधारने का प्रयास किया। उसने $^1/_3$ भाग लगान तय किया था। शेरशाह के बाद अकबर ने किसानों की दशा सुधारने की तरफ विशेष ध्यान दिया।

अकबर ने भूमि कर निर्धारण के लिए हरियाणा क्षेत्र में "जब्ती प्रणाली" की व्यवस्था की। यह प्रणाली उसके दिवान मुजफर खां और टोडर मल की देन थी। इस प्रणाली को लागू करने के पीछे अकबर का उद्देश्य था- (i) राज्य के भाग को किसी ठोस आधार पर निश्चित करना, (ii) राज्य के भाग को नकद व जिन्स में देने संबंधी ऐसी व्यवस्था करना की राज्य व क षक किसी को भी हानि न पहुंचे, (iii) जिन्सो के भाव संबंधी ऐसी व्यवस्था करना की राज्य को अपनी वार्षिक आय का निश्चित अनुमान हो जाए।

इस जब्ती प्रणाली के तहत अकबर के शासन काल में प्रत्येक क षक, ग्राम, परगने की क षि योग्य भूमि की पैमाइश की गई। पैमाइश के लिए अकबर ने 41 अगुल के गज का प्रयोग किया जबकि शेरशाह के समय में 32 अगुल का गज था। रस्सी की जरीब के स्थान पर नए नमूने की जरीब जिसे तनाब कहा जाता था, लागू की गई। यह जरीब बांस की थी और इसके दोनों सिरों पर लोहे की पतियां लगी हुई थी। इस सुधार जरीब के सिकुडने या टूटने का खतरा नहीं था। बीघा 3600 वर्ग गज का होता था। भूमि की पैमाइश के बाद भूमि का वर्गीकरण किया गया जो कि चार भागों में बांटी गई।

1. **पोलजः**- जिस भूमि में बारह महीने खेती होती थी उसे पोलडा नाम दिया गया। यह प्रथम वर्ग की भूमि थी।
2. **परौतीः**- ऐसी भूमि जो साल में कुछ महीने उर्वरा शक्ति प्राप्त करने के लिए छोड़ दी जाती थी उसे परौती कहा जाता था। इसे दूसरे वर्ग में रखा गया।

3. **छच्छरः**- यह भूमि लगातार तीन या चार साल तक बिना काश्त किए छोड़ दी जाती थी इसे छच्छर कहा जाता था। इसे तीसरे वर्ग में रखा गया था।

4. **बंजरः**- यह सबसे निम्न किस्म की भूमि होती थी। यह भूमि पांच या इससे भी अधिक वर्षो के लिए बिना काश्त के छोड़ दी जाती थी।

आईने अकबरी के उल्लेख से पता चलता है कि पहले दो वर्गो (पोलज व परौती) भूमि के उपजाऊपन के आधार पर फिर तीन भागों में विभक्त किया गया था- उत्तम, मध्यम और हीन। इन तीनों किस्मों की औसत उपज के आधार पर सरकार का भाग निश्चित किया जाता था।

भूमिकर केवल बोई हुई भूमि पर ही लिया जाता था। अकबर के समय में भूमिकर भूमि की उपजाऊ शक्ति के आधार पर निश्चित किया जाता था। पोलज व परौती किस्म की भूमि से उपज का $^1/_3$ भाग भूमिकर के रूप में लिया जाता था। छच्छर भूमि से पहले साल $^1/_{15}$ दूसरे साल $^2/_{15}$ तीसरे साल $^1/_5$ चौथे साल $^4/_{15}$ और पांचवें वर्ष $^1/_3$ भाग लिया जाता था। इसी प्रकार बंजर भूमि से $^1/_{20}$ भाग से प्रारंभ होकर पांचवें वर्ष उपज के $^1/_3$ भाग तक पहुंच जाता था। मुगल लगान नकदी रूप में लेना अधिक पसंद करते थे।

अकबर के बाद जहांगीर और शाहजहां के शासन काल में लगान की दर में मामूली सी फेरबदल हुई। लेकिन औंरगजेब की परिस्थितियों से मजबूर होकर धन एकत्रित करने के लिए भूमिकर बढ़ाना पड़ा। उसे लंबी-लंबी लड़ाईयां लड़नी पड़ी थी। जिनके लिए उसे धन की आवश्यकता थी। भूमि कर बढ़ाने के साथ-साथ उसने किसानों पर जजीया आदि कई अन्य कर भी लाद दिए। परिणामस्वरूप औंरगजेब को जगह-जगह किसानों के विद्रोह का सामना करना पड़ा। जैसे नारनौल के सतनामियों का विद्रोह और बल्लभगढ़ के जाटों का विद्रोह।

औंरगजेब के बाद बहादुरशाह ने अकबर की नीति को अपनाकर स्थिति को सुधारने का प्रयत्न किया। लेकिन सफलता नहीं मिली। बहादुर शाह के बाद उसके उत्तराधिकारी ने लगान की दर बढ़ाकर $^2/_5$ भाग कर दी। लेकिन उन दिनों कोई भी कर नहीं देता था।

भूमिकर साल में दो बार फसल काटने के बाद एकत्र किया जाता था। मुगलों ने भूमि कर तय करने के लिए जब्ती प्रणाली को अपनाया था। परगने में भूमि कर एकत्रित करने का काम आमिल करता था। जिसकी सहायता के लिए कानूनगो, पटवारी तथा कुछ अन्य कर्मचारी होते थे। बिना काश्त की भूमि का कोई कर नहीं लिया जाता था।

बहादुरशाह के बाद भूमि कर एकत्रित करने के लिए इजारेदारी प्रणाली अपनाई गई। इसके अंतर्गत भूमि कर उगाहने का ठेका दिया जाता था। यह एक शोषणकारी प्रणाली थी। कमजोर शासकों के समय पर प्रणाली ठीक प्रकार से नहीं चल पाई तथा प्रजा व इन इजारेदारों में प्रतिदिन लड़ाई चलती रहती थी। जो इजारेदार शक्तिशाली थे वे तो शक्ति के बल पर पूरा लगान वसूल कर लेते थे। वसूली की दर भी कहीं-कहीं तो $^2/_5$ से अधिक थी जिसको की अदा करना क षकों के बलबुते से बाहर की बात थी। अतः कहीं-कहीं किसान बगावत करते थे अन्यथा इनका शोषण होता रहता था।

हरियाणा में सूफी मत

सूफी मत की उत्पत्ति के संबंध में विद्वानों के कई मत हैं। यूसुफ हुसैन के विचार में सूफियों का जन्म इस्लाम से हुआ और उन पर बाहर के विचारों और रिवाजों का कोई प्रभाव नहीं पड़ा। डॉ० ए० एल० श्रीवास्तव का इससे मतभेद है उनका कहना है कि सूफी मत पर हिंदू विचारों और रिवाजों का बहुत प्रभाव पड़ा। सूफियों का ईश्वर से प्रेम हिंदू धर्म से लिया गया। अहिंसा और न लड़ने के विचार सूफियों ने हिंदू, बौद्धों और जैनियों से लिए। उनमें जो रिवाज शरीर को यातनाएं देने और भूखे मारने के हैं वे भी जैनों और बौद्धों के लिए। डॉ० ताराचंद का मत है कि सूफी मत कोई सरल चीज न थी। वह एक नदी की तरह थी जिसमें कई छोटी-छोटी नदियां कई स्थानों पर मिल गई। सूफियों का मौलिक स्त्रोत कुरान शरीफ और हजरत मोहमद का जीवन था। उन्होंने ईसाई धर्म से भी कुछ लिया। हिंदू धर्म बौद्ध धर्म और पारसियों से भी कुछ विचार लिए। प्रो० के० ए० निजामी का विचार है कि सूफियों कि चिश्ती सिलसिले ने हिंदूओं के कई रीति-रिवाज अपनाए। शेख के सामने झुकना। अतिथियों को पानी पिलाना, सिर मुंडवाना और मांगने का और बर्तन और प्याला भी हिंदूओं और बौद्धो से लिया।

सूफी शब्द की उत्पति के संबंध में भी विद्वानों के कई विचार है। कुछ का विचार है कि इस शब्द का उत्पत्ति "सफा" शब्द से हुई जिसका अर्थ है पवित्र। मुसलमानों में भी संत पवित्रता व त्याग का जीवन व्यतीत करते हैं, वे सूफी कहलाए। एक विचार और है सूफी शब्द की उत्पत्ति "सूफ" नामक शब्द से हुई, जिसका अर्थ है उनी। मुहमद साहब के पश्चात जो संत उन के कपड़े पहन कर अपने मत का प्रचार करते थे, वे सूफी कहलाए। कुछ विद्वानों का यह भी विचार है कि सूफी शब्द की उत्पत्ति ग्रीक भाषा के शब्द "सोफिया" से हुई जिसका अर्थ है "ज्ञान"। एक मत यह भी है कि मदीना में मुहमद साहब द्वारा बनाई गई मस्जिद के बाहर सफा अर्थात मक्के की एक पहाड़ी पर जिन व्यक्तियों ने शरण ली तथा खुदा की अराधना में लगे रहे, वे सूफी कहलाए। सूफी शब्द का प्रयोग ईसा की नवीं शताब्दी से प्रचलित होने का प्रमाण मिलता है। सूफी लोग किसी भी धर्म व जाती से बैर न रखने वाले लोग थे।

सूफियों की उत्पत्ति इस्लाम के वाहदत-उल-वुजूद सिद्धांत से हुई। इसका अर्थ है ईश्वर एक है और वह संसार की चीजों के पीछे है। ईश्वर के सिवाए और किसी की सत्ता नहीं। ईश्वर से मिलाप तभी होता है जब मनुष्य के भाव ईश्वर के संपर्क में आते हैं और वह निव ति मार्ग अपनाता है। वाहदत-अल-वुजूद सिद्धांत शेख मुही-उदीन, इब्न उल अरनी (1165 से 1240 ई०) ने ही दिया। इस सिद्धांत को भारत के सूफियों ने मान्यता दी। ईश्वर से मिलने के लिए सूफियों को कई स्थितियां से गुजरना पड़ता था। ईश्वर को मिलने के लिए सूफी लोग संसार की सभी चीजें भूल जाते थे। ना वे राज सत्ता से वास्ता रखते थे ना सांसारिक वस्तुओं से, सूफियों का लक्ष्य ईश्वर को मिलना और मनुष्य मात्र की सेवा करना था।

सूफियों ने कामकाज के केंद्र को खानकाह कहा जाता था। दूर-दूर से लोग अध्यात्मिक उन्नति के लिए वहां आते थे। कई खानकाहो में यात्रियों और अनुयायियों के रहने और खाने का प्रबंध भी बंदोबस्त था। शुरू-शुरू में खानकाहो में रहने वाले लोग स्थानीय लोगों के दान पर निर्भर करते थे। परंतु धीरे-धीरे उनकी लोकप्रियता के कारण पर्याप्त धन आ गया। जिससे वे लोगों को खिला भी सकते थे और रहने का प्रबंध भी करते थे। सूफियों का इतना आदर और सम्मान था कि जब वे मर भी जाते थे तो उनकी कब्रों की पूजा होती थी और उन्हें पवित्र स्थान समझा जाता था।

सूफी मत का इस्लाम से कई बातों में मतभेद हैं। परंतु प्रायः सभी सूफी मुसलमान थे और सिद्धांतो का विवेचन करते समय इस्लाम को अपनी आंखों से ओझल नहीं होने देते थे। जहां कहीं उन्हें ऐसा लगता कि उनके कथन व आचरण के साथ इस्लाम का मेल नहीं खाता। वहां वे कुरान व हदीस का सहारा लेते थे। सूफियों को अपने स्वतंत्र विचार प्रकट करने के कारण कई यातनाएं सहनी पड़ी, परंतु वे पीछे नहीं हटे। सभी विरोधों के होते हुए भी सूफी मत इस्लाम की ओर उन्मुख रहा।

हरियाणा में सूफी मत का विकास सुलतानों के समय से हुआ। हरियाणा में सबसे पहले पैर जमाने वाला चिश्ती सिलसिला था। इसका यह नाम इसके संस्थापक ख्वाजा मोइनुद्दीन चिश्ती के नाम पर पड़ा था। इसका मुख्य केंद्र हाँसी मे था। हरियाणा में इसके मुख्य संत फरीद-उद-दीन-मसुद गंजेशाकर थे। वह बाबा फरीद शकरगंज के नाम से विख्यात है। वे शेख कुतुबुद्दीन बख्त्यार काकी के शिष्य थे। शिक्षा पूरी होने के बाद वे हासी आकर बस गए। उनके धार्मिक कार्यो के कारण चिश्ती सिलसिला इस क्षेत्र में एक अध्यात्मिक आंदोलन बन गया और उसे व्यापक लोकप्रियता मिली। उन्होंने अपने कई शिष्यों को प्रशिक्षण दिया। उसने कई खानकाहे बनाई। वह इतना लोकप्रिय था कि उसके कई शिष्य व यात्री उन्हें घेरे रहते थे। जितनी उनकी प्रतिष्ठा भारत में थी और किसी सूफी संत की न थी। उन्हें एकांत अच्छा लगता था। उनका विचार था कि सम्राटों और अमीरों से दूर रहना चाहिए क्योंकि जो दरवेश उनमें मित्रता करता है अंत में उसे दुख होता है। उसने निम्न वर्गो और दीन दुखियों के लिए प्यार और उदारता के द्वार खोल दिए। उसको अपने जीवन काल में ही अध्यात्मिक और मानसिक शांति प्राप्त हो गई। उसने असंख्य पथ भ्रष्ट और पद दलित मनुष्यों को सत्य और आस्था का प्रकाश दिया। उसका संदेश हिंदू व मुसलमानों दोनों को प्रिय था। उस संदेश में कर्मकाण्डो और आडंबरों को त्याग कर दोनों जातियों को एक सूत्र में बांधने की भावना प्रबल थी। उसने घ णा हिंसा और वैरभाव को त्याग कर सहानुभूति व पारस्परिक प्रेम का पाठ पढ़ाया। उनका व्यक्तित्व अत्यंत प्रभावशाली, विनम्र, उदार एवं मधुरभाषी था। उन्होंने सारी वाणी में किसी भी धर्म का खण्डन नहीं किया। फलस्वरूप आज भी उनकी समाधि सबके लिए तीर्थ स्थान बनी हुई है।

हाँसी के दूसरे महत्वपूर्ण सूफी संत शेख जमालुदीन थे। वे कुफा के अबु हमीफा के वशंज थे। और हाँसी के खातिब थे। शेख जमाल नौकरी छोड़कर शेख फरीद के शिष्य बन गए। शेख जमाल बहुत ही पढ़े लिखे वे ज्ञानी व्यक्ति थे। उन्होंने फारसी मे "दिवान" और अरबी में 'उलहमात' नामक दो पुस्तके लिखीं। ये पुस्तके समकालीन धार्मिक विचार एवं संस्थाओं पर महत्वपूर्ण

प्रकाश डालती है। शेख जमाल की म त्यु भी हाँसी में हुई। हासी को अन्य सूफी संतों में शेख कुतुबुद्दीन मन्नवट मुख्य है जो कि शेख निजामुद्दीन औलिया के शिष्य थे। हाँसी के एक अन्य सूफी संत शेख नूरदीन फिरोज तुगलक के समकालीन थे। इन्होंने मुस्लिम धर्मत्व पर अरबी व फारसी में काफी पुस्तके लिखी। अफीफ हमे बतलाते हैं कि फिरोज तुगलक ने शेख नूरदीन से प्रार्थना की कि वे उनके बसाए नए शहर हिसार फिरोजा जाकर रहे और लोगों का उदार करें। लेकिन शेख ने यह कहकर इनकार कर दिया कि हाँसी उनके पूर्वजों का ग ह स्थान है। इसलिए वे यही रहेंगे। और भाग्य का खेल देखिए हिसार पर मगोलो का आक्रमण हुआ जबकि हासी इससे सुरक्षित रहा तथा इस नगर ने हिसार से भागे लोगों को शरण दी। शेख जलालुदीन तबरेजी जो कि सुरावर्दी सिलसिले से संबंध रखते थे भी कुछ समय हाँसी में रहे।

हरियाणा के अन्य नगर जहां-जहां पर सूफीमत का काफी प्रभाव रहा वे थे- नारनौल, कैथल, झज्जर, हिसार और पानीपत। शेख मुहमद उन प्रारंभिक सूफियों में से थे जो कि शेख मोईनुदीन चिश्ती के साथ भारत आए थे। उनका 1243 ई० में एक हिंदू धर्माघ ने कत्ल कर दिया था। उनकी दरगाह नारनौल में है। शेख नासिरुदीन महमूद जिन्हें "दिल्ली का चिराग" भी कहा जाता है। लोगों को शिक्षा देते थे कि नारनौल में शेख मोहमद की दरगाह पर प्रार्थना करने से सब कष्ट दूर हो जाते हैं। उनके एक शिष्य सैयद ताजुदीन शीरवार का निधन नारनौल में ही हुआ। बर्नी हमें कैथल झज्जर व हिसार के कई सूफी संतों की जानकारी मिलती है। इनमें के सैयद मुंजीबुद्दीन, सैयद मुगीसुदीन, सैयद अलाउदीन और मौलाना जलालुदीन केथल थे। मलिक ताजुदीन जफर, मलिक जमालुदीन, मलिक जमाल तथा सैयद अली झज्जर के व गोला मीर हिसार के प्रमुख सूफी संत थे।

चौदहवीं शताब्दी में शेख शरफुदीन पानीपत के प्रसिद्ध सूफी संत थे जो कि अबु अली कलंदर के नाम से प्रसिद्ध थे। इनकी दरगाह भी पानीपत में है। इन्हीं के समकालीन हजरत ख्वाजा शमसुदीन तुर्क थे। उनके गुरु शेख अलाउदीन साबरी ने उन्हें पानीपत में रहकर धार्मिक कार्य करने की सलाह दी। लेकिन वे लोगों की अध्यात्मिक इच्छा को शांत नहीं कर पाए। और बलबन की सेना में भर्ती हो गया। लेकिन शीघ्र ही वे अपने सैनिक कार्य से तंग आ गए और नौकरी छोड़कर वापस पानीपत लौट आए। यहां उनका संपर्क अबुल अली कलंदर से हुआ। शीघ्र ही दोनों में मित्रता हो गई और वे अपनी म त्यु तक पानीपत में ही रहे।

अबुल फजल और बदायूंनी के विवरणों से हमे पता चलता है कि मुगलों के समय में सूफी मत हरियाणा के अन्य भागों में फैल गया। इस समय हाँसी का पहले वाला स्थान नहीं रहा था। तथा थानेसर व पानीपत सूफी मत नये केंद्र बन गए थे। मुगलों के समय में हजरत जलालुदीन थानेसर के प्रसिद्ध सूफी संत थे। बदायूंनी के अनुसार वे गंगोह के शेख अब्दुल कुदूस के शिष्य थे। वे अपने बाह्य तथा भीतरी ज्ञान में प्रवीण थे। उन्होंने अपना सारा जीवन ईश्वर भक्ति तथा धर्म प्रचार में लगा दिया। सम्राट अकबर भी एक बार बैरम खां के साथ तथा दूसरी बार अबुल फजल के साथ उनके दर्शन करने थानेसर आए थे। उनकी म त्यु 1582 ई० में हुई। शेख चेहली जिनका संगमरमर का बना मकबरा आज भी थानेसर में है मुगलो के समय के एक अन्य प्रसिद्ध सूफी संत थे। शेख चेहली दारा सुकोह के अध्यात्मिक गुरु थे।

शेख अमान्नुलाह पानीपती मुगलों के समय में पानीपत के प्रसिद्ध सूफी संत थे। इन्होंने कई पुस्तके भी लिखी। हिंदू तथा मुसलमान सभी इनका आदर करते थे। शेख अब्दुल कबीर, शेख निजामुदीन शेख, सलीम-ए-चिश्ती, कबीर उल औलिया पानीपत के मुगलो के समय में कुछ अन्य सूफी संत थे।

शेख निजामुदीन मुगलो के समय में नारनौल में चिश्ती सिलसिले के प्रसिद्ध सूफी संत थे। यद्यपि वे ग्वालियर के शेख खातून के शिष्य थे लेकिन उनके अध्यात्मिक गुरु उसके बड़े भाई शेख इस्माईल थे। वे उन चंद सूफियों में से एक थे जिन्होंने भी अपनी मर्जी से संन्यासी जीवन चुना था। वे ससांरिक इच्छाओं को छोड़ चूके थे। बदायूंनी हमें बतलाते है कि वे धार्मिक क्रियाएं पूरी करने के लिए नशीली चीजों का इस्तेमाल करते थे। मुगल सम्राट अकबर 1578 ई० में उनसे मिलने गए लेकिन वे उनसे प्रभावित नहीं हुए इनकी म त्यु 1588-89 ई० में हुई।

मुगलों के समय में शेख जुनैद गुरबती व मोहनाती हिसार में सूफीमत के प्रचारक थे। शेख जुनैद की कब्र नागोरी गेट से 300 मीटर की दूरी पर आज भी है। शेख गुरबती ने ख्वाजरिम के शाह हुसैन द्वारा बुलाई गई दरवेशों की सभा में भक्ति गीत गाया था। मुगलों के समय हरियाणा में अन्य सूफी संत निजामुदीन हुसैन (झज्जर) मुल्लाशाह मोहम्मद (शाहबाद) अब्दुल कादिर जीलानी (सढौरा) शाह दुजान जिनके नाम पर झज्जर जिले का दुजाना कस्बा है भुल्ला नसीरुदीन तरखान (सफीदो) अब्दुल शकुर सिलमा (सिरसा) शेख अब्दुल कुदूस (महेंद्रगढ़) गुलाम कादर जिलानी (रोहतक) आदि के प्रमुख है।

उपरोक्त विवरण के आधार पर हम कह सकते हैं कि हरियाणा क्षेत्र समस्त मध्यकाल में सूफियों के चिश्ती सिलसिले का प्रभाव क्षेत्र रहा। चिश्ती सिलसिले के संत सादगी व पवित्रता का जीवन व्यतीत करते थे। इन्होंने अपनी इच्छा से निर्धनता का स्वीकारा। वे व्यक्तिगत संपत्ति को आत्मिक उन्नति और विकास के मार्ग में बाधा मानते थे। इनके निवास स्थान प्रायः मिट्टी के बने होते थे। यद्यपि इनमें अधिकतर विवाहित थे तथापि उन्होंने सादगी का जीवन नहीं त्यागा। वे सुलतानों से अपने लिए कोई पदवी स्वीकार नहीं करते थे। जो लोग इनको अपनी इच्छा से देते थे उसी में वे अपना निर्वाह करते थे। यद्यपि कभी-कभी ये संत भूखों मरने लगते थे तथापि वे अमीरों व सुल्तानों को याचना नहीं करते थे। हाँसी के सूफी संत मौलाना रहानूदीन जो कि शेख निजामुदीन औलिया के शिष्य थे, को मुहमद तुगलक ने जब जागीर देनी चाही तो उन्होंने लेने से इनकार कर दिया। अपनी इच्छाओं का दमन करने के लिए ये उपवास रखते थे। उनके कपड़े साधारण होते थे। फटे पुराने कपड़े पहनकर वे गरीबी में रहना पसंद करते थे। सूफी संत मन की पवित्रता में विश्वास रखते थे। ईश्वर प्राप्ति के लिए वे "अहं" को मिटाना आवश्यक समझते थे।

चिश्ती संत उदार विचारों के थे। वे ईश्वर के प्रति प्रेम और मनुष्य मात्र की सेवा में विश्वास रखते थे। उनका विश्वास अद्वैतवाद में था। वे मनुष्य मात्र की सेवा को भक्ति से ऊंचा समझते थे। दुखी दरिद्रों की सेवा करना वे अपना परम क र्तव्य समझते थे। वे निजी संपत्ति में विश्वास नहीं रखते थे।

भक्ति आंदोलन

मध्य कालीन भारत के भक्ति आंदोलन के प्रचारक अध्यात्मिक संत थे जिनके विचार कई प्रकार से समान थे। उनका किसी विशेष संप्रदाय से लगाव न था। उनका उद्देश्य कोई अलग धार्मिक पंथ चलाने का नहीं था। वे किसी धर्म विशेष के बंधन से परे थे। उनका किसी धर्म पुस्तक में अंध विश्वास नहीं था। उन्होंने किसी विशेष प्रकार के रीति रिवाजों को नहीं अपनाया। उनमें से अधिकांश ने मूर्ति पूजा का विरोध किया। वे केवल एक ईश्वर को मानते थे। उनका मत था कि प्रभु भक्ति अथवा प्रभु प्रेम से ही मोक्ष मिल सकता है। भक्ति का अर्थ है एकाग्रचित और निस्वार्थ होकर ईश्वर की पूजा करना। उन्होंने भक्त के प्रेम की तुलना, सेवक की मालिक के प्रति भक्ति, मित्र के मध्य प्रेम, शिशु के प्रति मां का वात्सल्य और अपनी प्रिया के प्रति प्रियतम के स्नेह की।

डॉ० ताराचंद, डॉ० कुरैशी तथा निजामी का मत है कि भक्ति आंदोलन मुसलमानो के भारतीय समाज पर संपर्क का परिणाम था। यूसुफ हुसैन ने लिखा है कि भक्ति आंदोलन को दो कालों में बांटा जा सकता है। पहले काल का समय भगवद्गीता से लेकर तेहरवीं शताब्दी ई० तक का था जब इस्लाम भारत के अंदर फैल गया। दूसरे काल का समय तेहरवीं से लेकर सोलहवीं शताब्दी ई० तक का था। इस काल में इस्लाम और हिंदू धर्म के संपर्क में परस्पर विचारों का प्रभाव पड़ा। यहां यह बात उल्लेखनीय है कि इस्लाम का भाईचारा हिंदूओं पर लागू न हुआ। इसलिए इस्लाम का हिंदू धर्म पर प्रभाव न पड़ा। न इस्लाम के सिद्धांत और व्यवहार ऐसे थे जो हिंदूओं में एक विश्वास पैदा करते कि सभी मनुष्य समान है। मध्यकालीन अध्यात्मवादी संत एक कट्टर इस्लाम और कट्टर हिंदू में अधिक अंतर नहीं मानते थे। जहां तक इस्लाम के सूफी मत का मध्यकालीन संतों पर प्रभाव का संबंध है। इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता कि मध्य कालीन संतों के काव्य व सूफी कविताओं में काफी समता है। निकट संपर्क होने के कारण दोनों के बीच अवश्य ही आदान प्रदान हुआ होगा।

भक्ति आंदोलन के कई मूल तत्व थे। उसके संतों का यह आदेश था कि इष्ट देव की भक्ति में भजन और गीत गाये जाएं। उनके द्वारा ईश्वर और उसकी स ष्टि के प्रति प्रेम भावना को विकसित करना चाहिए। धर्म गुरु की पूजा करनी चाहिए क्योंकि वह ईश्वर के रहस्यों का ज्ञान देता है। ईश्वर प्रेम में डूबे व्यक्ति को अपने स्वयं की इच्छा नहीं रखनी चाहिए। उसे पूर्ण रूप से अपनी भावनाओं और इच्छाओं का त्याग कर देना चाहिए। जो व्यक्ति ईश्वर से प्रेम करता है उसे सबको समान समझना चाहिए। उसे जाति व्यवस्था की कठोरता को कम करना चाहिए। ईश्वर भक्ति भावना के प्रसन्न होता है। वह व्यर्थ के धार्मिक कर्मकाण्डो, रीति रिवाजों और अनुष्ठानों की परवाह नहीं करता। वह केवल अगाध भक्ति व सच्चा प्रेम चाहता है। ईश्वर प्राणी हृदय में निवास करता है, मंदिर और मूर्ति में नहीं। तीर्थ यात्राओं का भी कोई लाभ नहीं। ईश्वर किसी विशेष भाषा में व्यक्त की जाने वाली भक्ति से प्रसन्न नहीं होता। वह हृदय की भाषा से प्रसन्न होता है।

जब मध्य काल में पूरे भारत में भक्ति आंदोलन की लहर चल रही थी तो हरियाणा भी इससे अछूता नही रहा। यहां पर भी

अनेक संत हुए जिन्होंने निर्गुण भक्ति का प्रचार किया। तथा हिंदी तथा खड़ी बोली में अनेक पुस्तकों एवं वाणियों की रचना की जिनमें से कुछ निम्न प्रकार से है।

नाथ पंथी

हरियाणा में मध्यकाल में भक्ति आंदोलन की शुरूआत नाथ पंथियों से हुई। ऐसा प्राप्त साक्ष्यों के आधार पर कहा जा सकता है। प्रथूदक (पेहवा) और रोहतक उनके मुख्य केंद्र थे। नाथ पंथ की स्थापना तेरहवीं शताब्दी में अस्थल बोहर (जिला रोहतक) में चौरंगीनाथ ने की थी। उन्होंने खड़ी बोली में कई साहित्यिक क तियों का स जन किया। पर अब "वायुत्रि भूवन उपदेश" और 'प्राणेसघाली' केवल दो उपलब्ध है। इन रचनाओं में निर्गुण भक्ति एवं दार्शनिकता की झलक मिलती है। इनके बाद नाथ संप्रदाय के ही अन्य संन्यासी मस्तनाथ थे। इनका कार्य क्षेत्र भी रोहतक ही था। इनकी वाणीयां ठेठ हिंदी में लिखी हुई है।

सूरदास (1497 से 1554 ई०)

सूरदास का जन्म फरीदाबाद जिले के सीही नामक ग्राम में हुआ था। सूरदास जन्म से अंधे थे लेकिन फिर भी उनकी गिनती विश्व के महान कवियों में होती है। सूरदास कवि भी थे और संत भी। उसने ईश्वर के प्रति भक्ति का प्रचार किया। उसके विचारों से हरियाणा के ही नहीं बल्कि उत्तर भारत के करोड़ों पुरुष और स्त्रियां प्रभावित हुई। उन्होंने कई पुस्तके लिखी जिनमें से 'सुरसागर', 'साहित्य रत्न' और 'सुर सरावली' मुख्य है। सुरसागर में क ष्ण के जीवन के बाल्य काल का वर्णन है। सूरदास ने अपने विचार भागवत पुराण से लिए परंतु सुर सागर एक मौलिक ग्रंथ है। इसमें क ष्ण भगवान के प्रति अगाध भक्ति व प्रेम दर्शाया गया है। यह पुस्तक ब्रज भाषा में है।

वीरभान

वीरभान दादू दयाल का समकालीन था। उनका जन्म 1543 ई० में नारनौल के समीप बिजेसर नामक गांव में हुआ। उसने सतनामियों के संप्रदाय की स्थापना की। उसका एक ईश्वर में विश्वास था जिसको उसने सतनाम अथवा सत्य का नाम दिया। उसका जाति भेदभाव में विश्वास न था। वह मूर्ति पूजा का विरोधी था। उसने शुद्ध जीवन व योगाभ्यास पर जोर दिया। उसने अपने अनुयायियों से कहा कि न तो वे मांस खाएं और न ही शराब इत्यादि वस्तुओं का सेवन करे। उनकी वाणियों की पुस्तक ग्रंथ साहब कहलाती है। इनकी वाणियों पर दादू पंथ का काफी प्रभाव है।

गरीब दास

गरीब दास अठाहरवीं शताब्दी के प्रसिद्ध संत और कवि थे। उनका जन्म 1717 ई० में झज्जर जिले के छुडानी नामक ग्राम में एक जाट परिवार में हुआ। वह भक्ति आंदोलन के निर्गुण पंथ से प्रभावित थे। उन्होंने अनेक पदों की रचना की जिनकी संख्या करीब 24 हजार है। इनको 'मिखरबोध' नामक ग्रंथ में संकलित किया गया हे। 'बीजक' और 'रत्न सागर' उनकी दो अन्य प्रसिद्ध रचनाएं हैं। उनके जीवनी लेखक के० सी० गुप्ता के अनुसार मध्यकालीन भारत के किसी अन्य संत ने अध्यात्मिक जीवन के बारे में इतनी नहीं लिखा होगा जिनता कि संत गरीब दास ने लिखा। उन्होंने एक संप्रदाय की स्थापना की उसके अनुयायियों को गरीब दासी कहा जाता है। इसकी शाखाएं पंजाब, हरियाणा, उत्तर प्रदेश, राजस्थान, दिल्ली व गुजरात तक फैली हुई है।

संत गरीब दास एक ईश्वर व मनुष्य मात्र के आपस में भाईचारे में विश्वास रखते थे। वे गरीब-अमीर, ऊंच-नीच में कोई भेदभाव नहीं रखते थे। उन्होंने विभिन्न धर्मो में आपस में कटुता पर प्रहार किया और सभी धर्मो और संप्रदायों में एकता की वकालत की। कबीर की तरह गरीब दास भी हिंदू धर्म और इस्लाम में काफी तथ्यों में समानता देखते थे इसलिए उनके अनुयायियों में हिंदू-मुस्लिम सभी थे। गरीब दास के अनुसार माया आदमी की शत्रु है तथा केवल ईश्वर का नाम ही इससे बचा सकता है। उनके अनुसार भक्ति, ज्ञान से, अहंकार को मारने से, विषयों पर नियंत्रण करने से, गुरु में विश्वास रखने से और ईश्वर से प्रेम करने से मिलती है।

निश्चल दास

निश्चल दास का जन्म हाँसी तहसील के कुगड़ नामक ग्राम में 1791 में एक जाट परिवार में हुआ। वे दादू पंथ के अनुयायी थे। वे एक महान कवि तथा संत थे। उन्होंने संस्क त में अनेक पुस्तकों की रचना की। इनमें "विचार सागर" "व ति प्रभाकर" "मुक्ति प्रकाश" प्रमुख हैं। इनके अनेक अनुयायी थे, इनमें बुंदी के राजा रामसिंह भी एक थे। स्वामी विवेकानंद भी इनके रचनाओं से बहुत प्रभावित हुए।

निगुर्ण भक्ति के अन्य संत कवियों में नारनौल के नित्यानंद जिन्होंने "सत्य सिद्धांत प्रकाश" और 'बाराह खड़ी' नामक पुस्तकों की रचना की। गरीब दास के पुत्र जैत राम ने भी निगुर्ण भक्ति का प्रचार किया तथा "जन्मकथा" नामक ग्रंथ की रचना की जो संत गरीब दास के जीवन पर आधारित है। गरीब दास के एक शिष्य दयाल दास से अद्वैत दर्शन पर एक ग्रंथ विचार परीक्षा लिखा, जो कि प्रश्न उत्तर शैली में है।

भक्ति आंदोलन का प्रभाव

भक्ति आंदोलन के संतो ने लोगों के सामने जीवन का एक ऐसा लक्ष्य रखा जिस पर साधारण लोग बिना किसी कठिनाई के चल सकते थे। उनको ब्राह्मणों पर निर्भर नहीं रहना पड़ता था। भक्ति के संतो के धार्मिक उपदेशो ने जन साधारण को आकर्षित किया। उनके सामने सीधा प्रमात्मा का मार्ग रखा गया। जिसमे ब्राह्मणों द्वारा लोगों के शोषण का कोई स्थान नहीं था। भक्ति आंदोलन के संतो ने, समता मात भाव व मित्रता का प्रचार किया। कई संतों ने इस बात पर जोर दिया कि मुसलमानों व हिंदुओं के बीच गलत भावनाएं दूर की जाएं। उन्होंने समाज को सुधारने की कोशिश की। उन्होंने तीर्थ यात्राओं का विरोध किया, जिन पर बहुत धन खर्च होता था। उन्होंने जाति प्रथा की निंदा की। उन्होंने लोगों में नई जाग ति पैदा की, खासतौर पर निम्न वर्ग के लोगों में। उन्होंने उनका समाज में स्थान ऊंचा करने का प्रयत्न किया।

भक्ति आंदोलन का एक उद्देश्य हिंदू मुस्लिम एकता स्थापित करना था। इसके संतों ने हिंदू मुस्लिम भेदभाव दूर करने का उपदेश दिया। उन्होंने बतलाया कि दोनों ही एक ईश्वर की संतान हैं इसलिए दोनों को मिल जुलकर रहना चाहिए।

भक्ति आंदोलन के विषय में प्रो० के० दामोदरन ने लिखा है कि भक्ति आंदोलन का विस्तार भारत के कई भागों में निम्न रूपों में हुआ। परंतु इसके कई मौलिक सिद्धांत थे। वे सिद्धांत थे धर्मो की भिन्नता के बावजूद लोगों की एकता, प्रमात्मा के सामने सबकी समता, जाति प्रथा का विरोध, भक्ति पर जोर और मूर्ति पूजा, तीर्थ यात्राओं, शारीरिक यातनाओं और धार्मिक आडंबरों का विरोध। लोगों के आत्म सम्मान को मान्यता दी गई। लोगों में जाग ति उत्पन्न हुई और काम करने की प्रेरणा मिली। परंतु इस आंदोलन में विवेक पर जोर न दिया गया और न ही विवेक द्वारा सामाजिक समस्याओं का समाधान करने के लिए प्रयत्न किया गया। संत लोग सामाजिक और आर्थिक समस्याओं का कारण न ढूंढ सके और न ही उसके सुधार का कोई सुझाव दे सके।

डॉ० ए० एल० श्रीवास्तव ने लिखा है कि भक्ति आंदोलन भारत की सभी दिशाओं में फैल गया और उसका प्रभाव कई शताब्दियों तक रहा। यह आंदोलन लोगों का आंदोलन था और इसका ईसाई धर्म से कोई संबंध नहीं था। भक्ति आंदोलन के दो लक्ष्य थे। पहला लक्ष्य था हिंदू धर्म में सुधार ताकि अपने आप में मुसलमानों के प्रहारों से बचा सके। दूसरा लक्ष्य था कि हिंदुओ और मुसलमानों में समझौता कराया जाए और उनमें परस्पर प्रेम की भावना उत्पन्न की जाए। भक्ति आंदोलन का पहला लक्ष्य पूरा हो गया लेकिन दूसरा लक्ष्य पूरा न हुआ। भक्ति आंदोलन का यह प्रभाव अवश्य पड़ा कि क्षेत्रीय साहित्य में बड़ी उन्नति हुई।

डॉ० यूसुफ हुसैन का मत है कि भक्ति आंदोलन से हिंदू और मुस्लिम सभ्यताओं का संपर्क हुआ और दोनों के द ष्टिकोण में परिवर्तन हुआ। इस आंदोलन में हिंदुओं और मुसलमानों के भक्तों को एक स्थान पर मिलने का अवसर पैदा किया। भक्ति भागी संतो ने समता का प्रचार किया और जाति प्रथा और धार्मिक आडंबरों का विरोध किया। इन संतो के विचार परंपरा से आए विचारों से भिन्न थे। उन्होंने ऐसा समाज बनाने का प्रयत्न किया जिसमें समता और न्याय हो और सब धर्मो के लोग अध्यात्मिक और नैतिक उन्नति कर सके।

अध्याय-8

मराठों का आगमन

(Sources of Modern Period)

औंरगजेब की म त्यु के बाद चारों तरफ अराजकता फैल गई। औंरगजेब के पुत्रों में ग हयुद्ध आंरभ हो गया। इस स्थिति का लाभ उठाकर स्थानीय सरदार स्वतंत्र हो गए। जहां तक हरियाणा का प्रश्न है यहां की स्थिति काफी खराब हो गई। शाही सत्ता की कीमत लोगों की नजरों में ना के बराबर रह गई। यहां भी कई स्थानीय शक्तियां उभरकर आ गई पर उन्होंने अपने-अपने क्षेत्र में शांति तथा व्यवस्था को कायम रखा। इनमें फरुख नगर में फौजदार खां, बल्लभगढ़ में गोपाल सिंह, रेवाड़ी में राव नंदराम, हिसार में सहदाद खां और कुंजपुरा में मेनजोंबल खां मुख्य थे। रोहतक, पानीपत, सोनीपत और करनाल के क्षेत्र केवल नाममात्र के ही मुगलों के अधीन थे। ऐसी परिस्थितियों में मराठों का आगमन हुआ।

मराठे शिवाजी के वंशज थे। पेशवाओं के अधीन वे अब सारे दक्षिण भारत पर राज्य कर रहे थे। ऐसी अराजकता के समय मराठों का उत्तरी भारत में आगमन अचानक ही नहीं हुआ। मराठे सबसे पहले साहू के समय में दिल्ली आए। बालाजी विश्वनाथ पहला पेशवा था जो कि 1718 में साहू और हुसैन अली के बीच की हुई संधि पर मुगल सम्राट फरुख शियर की सहमति की मुहर लगवाने दिल्ली आया था। इसके बाद पेशवा बाजीराव की मां राधाबाई जब कुरुक्षेत्र समेत उत्तरी भारत के धार्मिक स्थानों की तीर्थ यात्रा के लिए आई तो मुगलों समेत अन्य स्थानीय सरदारों ने भी उसका राजकीय मेहमान की तरह स्वागत किया। परंतु इस प्रकार की मराठा आमद का कोई खास राजनैतिक प्रभाव नहीं पड़ा।

मराठों का दिल्ली में आगमन 1750 ई० में हुआ। इस समय दिल्ली दरबार में ईरानी और तुरानी अमीरों के आपसी झगड़े चरम सीमा पर थे। मराठे इन झगड़ों में गहरी रुचि लेने लगे। इसी के चलते 1753 ई० मल्हार राव होल्कर के पुत्र खाण्डे राव ने सेना सहित दिल्ली में प्रवेश किया। इस समय वजीर इतंजाम-उद-दौल्ला मीर बख्शी इमाद उल मुल्क में आपस में झगड़ा चल रहा था। इंतजाम अवध के नवाब, सूरजमल तथा राजपूतों के साथ मिलकर बाहरी शत्रुओं से निपटने के लिए एक संघ बनाना चाहता था। जबकि इमाद मराठों के साथ मिलकर मुगल सम्राट पर अपना प्रभाव कायम रखना चाहता था। इस संघर्ष में मराठों ने इमाद का साथ दिया। उन्होंने अहमदशाह को बादशाह तथा इंतजाम को प्रधानमंत्री के पद से हटाकर उनके स्थान पर आलमगीर को बादशाह इमाद को प्रधानमंत्री नियुक्त किया। इसके बाद मराठों ने दिल्ली व उसके आसपास के गांव को लूटना शुरू किया। मराठों ने जब दिल्ली के उत्तर के गांव को लूटना शुरू किया तो जलालपुर और उसके आसपास के दहिया गोत्र के किसानों ने नरेला के पास उनपर हमला कर दिया तथा उनके घोडों और दूसरी संपत्ति लूट ले गए। इसका बाद में बदला लेने के लिए मराठा सेना ने जलालपुर, नाहरा, नाहरी तथा आसपास के गांवों की संपत्ति तथा अनाज को लूटकर दिल्ली में बेच दिया। जब इसकी शिकायत शाही प्रशासन का की गई तो भी कुछ हासिल नहीं हुआ। ऐसे में इमाद ने मराठों को 82 लाख रुपये देना स्वीकार कर लिया। लेकिन वह इसका केवल $^{1}/_{3}$ भाग ही दे पाया।

25 अक्टूबर 1754 ई० को मुगल सम्राट आलमगीर ने मराठों के प्रति अपनी क तज्ञता प्रकट करते हुए हरियाणा में हिंदूओं के प्रसिद्ध पवित्र स्थान कुरुक्षेत्र उन्हें प्रदान किया। किंतु मराठे इससे संतुष्ट नहीं हुए। उनकी सेनाओं ने यमुना को पार करके उत्तर पश्चिमी क्षेत्र पर अधिकार करने के लिए आगे बढ़ गई। रोहतक तथा हिसार के बिलौच सरदार उनके आते ही भाग खड़े हुए। अन्य गुजर तथा राजपूत सरदारों ने भी उनकी अधीनता स्वीकार ली।

इसी समय दक्षिण की परिस्थितियों के कारण मराठों को बाध्य होकर हरियाणा से वापस लौटना पड़ा। रघुनाथ राव की सेना गुड़गांवा, झज्जर, नारनौल, सिधांणा और पुष्कर होकर जबकि होल्कर की सेना नारायणा, रेवाड़ी पट्टौदी होकर वापस लौटी।

मराठों के वापस लौटने के बाद जो शून्यता आई उसका लाभ कई शक्तियों ने उठाया। इन्हीं में से एक कुतुब शाह नाम व्यक्ति भी था। इसे सहारनपुर तथा मेरठ की जागीरे मिली हुई थी लेकिन बाद में ईमाद ने इन जागीरों को मराठों को दे दिया और कुतुब शाह को बेदखल कर दिया। अतः इसने मराठों के मुड़ते ही उत्तरी हरियाणा पर कब्जा कर लिया। जब यह ख़बर वजीर इमाद के पास पहुंची तो उसने अपनी खास सीनदान रेजीमेंट जिसकी संख्या 11,000 थी कुतुब शाह के विरुद्ध भेजी। यद्यपि इस सेना को कुतुब शाह को खदेड़ने के लिए भेजा गया था लेकिन उन्होंने पहले पानीपत तथा दूसरे कस्बों के निर्दोष लोगों को लूटा। अंत में 11 मार्च 1755 ई० को कुतुब शाह जिसकी सेना की संख्या 2,500 थी और शाही सेनाओं में करनाल के पास युद्ध हुआ, और इस लड़ाई में शाही सेनाओं की हार हुई।

इस युद्ध से कुतुब का हौंसला अधिक बढ़ गया और उसने सरहिंद पर आक्रमण कर दिया। यहां उसका युद्ध पंजाब के तत्कालीन सूबेदार अदीना बेग से हुआ, जिसने उसे 11 अप्रैल 1755 को बुरी तरह हरा दिया। कुतुब भाग गया, इस प्रकार अदीना बेग का उत्तरी हरियाणा के बहुत बड़े भाग पर कब्जा हो गया।

यह स्थिति अधिक दिन तक कायम नहीं रह सकी। नादिर शाह के उत्तराधिकारी अहमद शाह अब्दाली ने पंजाब पर आक्रमण करके अदीना बेग को हरा दिया। इस प्रकार सरहिंद की सरकार के अंतर्गत आने वाला सारा उत्तरी हरियाणा उसके कब्जे में आ गया। केवल कूंजपुरा के नवाब ने 20 लाख रुपये देकर अपनी रियासत को बचा कर रखा। इसके बाद अहमद शाह अब्दाली दिल्ली की तरफ बढ़ा और 23 जनवरी 1757 को बिना किसी रोक के दिल्ली के निकट पहुंच गया। अब्दाली अटक से दिल्ली तक बिना किसी विरोध के दिल्ली तक पहुंच गया लेकिन यहां पर उसकी टक्कर मराठा सरदार अतांजी मनकेश्वर से हुई। यह मथुरा में 5,000 मराठे सैनिक टुकड़ी का कमांडर था। इसे मुगल सम्राट ने अब्दाली को रोकने के लिए बुलाया था। अतांजी की अब्दाली की सेना से नरेला के पास टक्कर हुई। इस लड़ाई में 100 मराठा सैनिक शहीद हुए तथा उन्हें पीछे हटना पड़ा। अतांजी दिल्ली से अपना सामान लेकर फरीदाबाद आ रूका। यह जाट राजा सूरजमल का इलाका था। यहां उसे वीर जाटों की सहायता मिली और उसने यहां सरवर खां नामक एक अफगान सरदार को हराया। परंतु शीघ्र ही अब्दाली का दिल्ली के ऊपर कब्जा हो गया। नजीब के रूहेले सैनिक भी उससे आ मिले।

दिल्ली पर कब्जा करने के बाद अब्दाली को अतांजी से निपटना था। अब्दाली 20 हजार सैनिकों की सेना जहान खां के नेत त्व में भेजी। जाट तथा मराठा सैनिकों ने उनका डटकर मुकाबला किया लेकिन उन्हें हार का सामना करना पड़ा। विजयी सेना ने फरीदाबाद कस्बे को जलाकर राख कर दिया। इस युद्ध में 600 मराठा व जाट सैनिक मारे गए। अतांजी ने यहां से हटकर पलवल के पास डेरे जमा लिए। यहां स्थानीय लोगों से उन्हें सहायता मिली। अब अब्दाली को स्वयं इस दिशा में आना पड़ा। जब वह बल्लभगढ़ के पास पहुंचा तो सूरजमल के सैनिकों ने उस पर हमला कर दिया। इस लड़ाई में बहुत से अफगान मारे गए तथा उनके 150 घोड़े छीन लिए। अब्दाली ने अब करारा जवाब देने का आदेश दिया लेकिन बिना तोपखाने के वे आगे नहीं बढ़ सके। अब दिल्ली से तोपे मंगवाई गई और स्वयं अब्दाली ने युद्ध का संचालन किया। यहां सूरजमल के वीर पुत्र जवाहर सिंह ने उनका डटकर मुकाबला किया। जवाहर मल हार गया लेकिन वह बचकर भाग निकला। अब्दाली को काफी सामान लूट में मिला। इसके बाद अब्दाली ने मथुरा और व ंदावन को खूब लूटा। जब मथुरा लुट रहा था तो मराठे भाग निकले। मथुरा को बचाने के लिए जाट सेनापति जवाहर सिंह फिर आगे आया और शत्रु का नौ घंटे तक मुकाबला करता रहा, अंत में वह हार गया। विजयी सेनाओं ने मथुरा व उसके आसपास के क्षेत्र पर बहुत अत्याचार किया। बहुत से लोगों को मौत के घाट उतार दिया। विलियम इर्विन के अनुसार लाशों से भर जाने के कारण यमुना का पानी बहना बंद हो गया और गंदे पानी के कारण हैजा फैल गया। जिसके कारण रोजाना बहुत से अफगान सैनिक मरने लगे और अफगान सेना को वापस लौटना पड़ा।

1756 ई० के कुर्रानी आक्रमण के बाद पेशवा के लिए यह आवश्यक हो गया कि एक मजबूत सेना उत्तर की तरफ भेजी जाए। इसी नीति पर अमल करते हुए रघुनाथ राव तथा मल्हार राव होल्कर के नेत त्व में एक मजबूत सेना भेजी गई। रघुनाथ राव पूना से चलकर 14 फरवरी 1757 को इंदोर में होल्कर के साथ आ मिला। अहमद शाह अब्दाली ने दिल्ली में नजीब-उद-दौल्ला को बैठा दिया था जो उसके एजेंट के रूप में कार्य कर रहा था। जब मराठे दिल्ली के पास पहुंचे तो मराठों के भय से नजीब ने मजबूर होकर दिल्ली को छोड़ने और 5 लाख मराठो को देना स्वीकार कर लिया।

दिल्ली से नजीब को निकालने के पश्चात मराठों ने सितंबर 1757 में हरियाणा में प्रवेश किया। यहां मल्हार राव होल्कर ने रोहतक के बिलौच सरदार कामगार खां से कर वसूल किया। इसके बाद मराठा औरतों ने 9 मार्च 1758 ई० को सोमवती

अमावस्या के दिन कुरुक्षेत्र में पवित्र स्थान किया। जब वे स्नान करके वापस लौट रही थी तो सरहिंद के अफगान गर्वनर अब्दुल समद खान के सैनिकों ने उन पर हमला कर दिया। मराठों ने वीरता से मुकाबला किया। इसमें बहुत से अफगान सैनिक मारे गए और अपने घोड़े तथा अन्य सामान छोड़कर भाग गए। इसके बाद मल्हार राव होल्कर तरावड़ी व करनाल को लूटा। यहां पर यह बताना अति आवश्यक है कि इस समय मराठे अपनी विजयों से उन्मत होकर बड़े घमण्डी और उदण्ड हो गए थे। और इसी घमण्ड के कारण वे हिंदू तथा मुसलमान में कोई फर्क नहीं समझते थे और दोनों को बराबर लूटने खसोटने लग पड़े थे। उन्होंने हरियाणा के हिंदू किसानों के साथ बहुत बुरा व्यवहार किया। उनकी फसलें बर्बाद कर दी और घरों को लूट लिया। जब किसानों ने उनके सरदार मल्हार राव होल्कर से शिकायत की कि मराठा सैनिक उनकी फसल नष्ट कर रहे हैं तो मल्हार राव होल्कर ने बड़ा अटपटा जवाब दिया "सिपाही ऐसा ही किया करते हैं।"

हरियाणा पर अधिकार करने के पश्चात मराठों ने रघुनाथ राव और होल्कर के नेत त्व में पंजाब को विजय करने के लिए थानेसर होते हुए अंबाला के पास मुगल की सराय में डेरे डाल लिए। अदीना बेग की सहायता से शीघ्र ही उन्होंने सरहिंद को जीत लिया और वहां पर अब्दाली द्वारा नियुक्त अब्दुल समद खां और जंगबाज खां को कैद करने के पश्चात शहर को खूब लूटा। मराठों के डर से तैमूर शाह और जहान खां भी अप्रैल 1758 में पंजाब छोड़कर अफगानिस्तान भाग गए। मराठों का शीघ्र ही अटक पेशावर और मुल्तान पर कब्जा हो गया। अदीना बेग को पंजाब का गर्वनर नियुक्त कर रघुनाथ राव वापस दक्षिण लौट गया। पंजाब विजय से अहमदशाह अब्दाली और मराठों के बीच लड़ाई होना तय हो गया।

पानीपत का तीसरा युद्ध

जब अहमदशाह अब्दाली को पंजाब पर मराठों के अधिकार का समाचार मिला तो वह 1760 ई० में काबुल छोड़कर पंजाब की तरफ बढ़ा। इस समय उसे रूहेला और अवध के नवाब का सहयोग भी प्राप्त था। शीघ्र ही उसने पंजाब पर अधिकार कर लिया और लाहौर, गोइंदवाल सरहीद, अंबाला होते हुए तरावड़ी तक आ पहुंचा।

इधर पेशवा ने आक्रमणकारी का मुकाबला करने के लिए सदाशिव राव भाऊ और अपने बेटे विश्वास राव को एक सेना देकर जिसके पास सैनिक साजो सामान तथा पैसे की कमी थी उत्तर की तरफ रवाना किया। रास्ते में चंबल के पास मल्हार राव जनको जी और जाट राजा सूरजमल भी उसके साथ आ मिले। सूरजमल ने मराठों को सलाह दी कि सीधी लड़ाई के बजाए गुरिल्ला युद्ध पद्धति से काम लिया जाए तथा मराठों को अपने परिवार, भारी समान को ग्वालियर, झांसी या भरतपुर के किले में छोड़ देना चाहिए। मल्हार राव सूरजमल के सुझाव से सहमत था लेकिन भाऊ ने इसे मानने से इंकार कर दिया। इससे सूरजमल उनका साथ छोड़कर चला गया।

इस प्रकार भाऊ ने सदाशिव राव, मल्हार राव होल्कर जनको जी, बलवंत राव के साथ मिलकर दिल्ली पर कब्जा किया तथा फिर शत्रु का मुकाबला करने के लिए पानीपत के ऐतिहासिक मैदान में आ डटा। इधर अब्दाली की सेनाओं ने भी पानीपत में डेरा डाल लिया। भाऊ जो मराठा सेना का प्रधान सेनापति भी था। मौका देखकर शत्रु जब नींद में हो आक्रमण करना चाहता था। लेकिन उसने पाया कि शत्रु जरूरत से ज्यादा मुस्तैद है और हर समय लड़ने के लिए तैयार रहता है तो उसने अपने तोपखाने के सेनापति इब्राहिम गार्दी के कहने पर यह योजना रद्द कर दी। नई योजना के तहत शत्रु पर जब तक प्रहार नहीं करना था जब तक की रसद न मिलने के कारण वह भूख से निढाल न हो जाए। ऐसा समय आने तक मराठों की सेना को सुरक्षात्मक ठंग से अपने मोर्चे पर डटे रहना था।

मराठों ने अपना कैंप पानीपत शहर उत्तर पश्चिम में लगाया। यह शहर नहर के समीप था, जो पीने के पानी का मुख्य स्त्रोत था। यह कैंप काफी लंबा चौड़ा था। इसकी पूर्व से पश्चिम तक लंबाई लगभग 10 कि०मी० तथा पूर्व से पश्चिम तक चौड़ाई 4 कि०मी० थी। एक काफी चौड़ी और गहरी खाई इसके चारों तरफ खोद दी गई और इसके अंदर की तरफ मिट्टी की एक दिवार खड़ी कर दी गई थी। इस पर तोपें रखी गई थी। मराठों के ये कैंप की सुरक्षा की सारी तैयारियां इब्राहिम गार्दी के नेत त्व में हुई थी।

दूसरी तरफ अब्दाली ने बदलते हुए हालात के कारण अपने कैंप की व्यवस्था में कई बार तब्दीली की। अफगानों का कैंप बहराम पुर, बादौली, मिर्जापुर, गोयनला और छाजपूर गांवों में फैला हुआ था। अब्दाली ने सुरक्षा की द ष्टि से इसे काफी मजबूत बना

रखा था। इसके चारों तरफ खाईयां खोद दी गई थी और जगह-जगह बड़े-बड़े व क्ष गिराकर रूकावटें खड़ी कर दी गई थीं। यमुना नदी इसके करीब से गुजरती थी।

प्रो० जादूनाथ सरकार के अनुसार अब्दाली की सेना की संख्या 60,000 हजार थी इनमें आधे सैनिक (23 हजार घुड़सवार और सात हजार पैदल) अब्दाली के अपने सैनिक थे जबकि आधे (7 हजार घुड़सवार और 23 हजार पैदल) उसके भारतीय सहयोगियों के थे। दूसरी तरफ मराठों की सेना की संख्या 45,000 थी। इनमें घुड़सवार, पैदल और तोपखाना शामिल था। मराठों की सेना भिन्न-भिन्न सामंतों द्वारा इकट्ठी की गई सेना थी जिनमें आपस में परस्पर कोई सहयोग की भावना नहीं थी। इसके अलावा मराठा घुड़सवारों के पास लड़ाई का पूरा साजो सामान यहां तक कि पहनने के लिए पूरे वस्त्र तक नहीं थे। मराठों के सैनिकों की बंदूकें भी बड़ी भारी, जिनका निशाना भी सही नहीं बैठता था। मराठा सेना के साथ बहुत से युद्ध न करने वाले लोग भी इनकी रक्षा की जिम्मेदारी भी मराठा सैनिकों पर थी, यह एक भारी कमी थी। दूसरी तरफ अफगानों के पास बेहतर नस्ल के घोड़े लड़ाई का पूरा साजो सामान तथा हल्का तोपखाना था जिसे जरूरत पड़ने पर इधर से उधर ले जाया जा सकता था। इसके अलावा अफगान सेना एक अनुशासित सेना थी।

इसमें कोई शक नहीं कि मराठा सेनापति भाऊ अति शूरवीर था परंतु वह कूटनीति और सामरिक विद्या में पारंगत नहीं था। उसमें जोश तथा भावुकता भी जरूरत से ज्यादा थी। इसी जोश और भावुकता के कारण वह युद्ध मैदान की बारीकियों को नहीं समझ सका और शत्रु को कमजोर समझने की भूल कर बैठा। दूसरी तरफ अब्दाली बहुत ही चतुर व्यक्ति था। जो युद्ध की बारीकियों को बेहतर पहचानता था। सबसे पहले अब्दाली ने अपनी सेना को मराठों के तीनों और भेजकर उसकी रसद लाइन काट दी। अब मराठों का संपर्क दोआब दिल्ली के राजपूताना से नहीं हो सकता था। अब केवल उत्तर की तरफ से रास्ता खुला था लेकिन कुछ समय पश्चात अब्दाली के कमांडर दलेरखां ने कुंजपूरा को फिर विजय कर लिया और रसद पहुंचाने का यह द्वार भी बंद हो गया। इस तरह से मराठा सेना चारों तरफ से कटकर एक तरह से पानीपत के मैदान में कैद होकर रह गई।

दूसरी तरफ अब्दाली की स्थिति काफी अच्छी थी। वह यमुना के उस पार रुहलों की रियासत के संपर्क में था जहां से उसे प्रचूर मात्रा में रसद मिल रही थी। लेकिन भाऊ को दो महीने से अनाज का एक दाना भी बाहर से नहीं मिला। इकट्ठा किया हुआ राशन खत्म हो गया और भूख से उनके सैनिकों तथा चारे की कमी के कारण उनके पशुओं का बुरा हाल हो गया।

इतने पर भी भाऊ ने साहस नहीं छोड़ा 1 नवंबर से 15 जनवरी के मध्य उसकी तथा शत्रु सेना के बीच कई झड़पें हुई। आंरभ में मराठों को इनमें कुछ सफलता मिली लेकिन इसका कोई खास परिणाम नहीं निकला। 14 जनवरी के आते-आते भूख ने भाऊ की सेना का मनोबल गिरा दिया और इसके बाद भाऊ ने भूख से मरने की बजाए शत्रु पर आक्रमण करना उचित समझा और 14 जनवरी को मराठों ने अब्दाली की सेना पर आक्रमण कर दिया।

यह युद्ध केवल 6-7 घंटे चला। सुबह 9 बजे शुरू होकर सांय 3.30 पर खत्म हो गया। आंरभ में मराठों को कुछ सफलता प्राप्त हुई। लेकिन जैसे-जैसे दिन व्यतीत होता गया अब्दाली का पलड़ा भारी होता गया। मराठों ने डटकर मुकाबला किया। दोपहर बाद विश्वास राव को गोली लगी और वह मर गया। जब यह समाचार भाऊ को मिला तो वह शत्रु पर टूट पड़ा। लेकिन वह लड़ते-लड़ते वीरगति को प्राप्त हो गया। इसी समय मल्हार राव होल्कर युद्ध मैदान से अपनी सेना के साथ भाग गया। उसके भागते ही मराठा सेना में भगदड़ मच गई। एक घंटे में ही मराठा सेना का सफाया हो गया। पूना में पेशवा को यह समाचार एक व्यापारी ने इस प्रकार दिया। "दो मोती टूट गए, 27 मोहरें नष्ट हो गई। चांदी और तांबे की कितनी हानि हुई इसका अनुमान नहीं लगाया जा सकता।" सर जादूनाथ सरकार का कहना है कि महाराष्ट्र में कोई ऐसा घर नहीं था जिसे अपने कुटुंब के किसी न किसी सदस्य के लिए शोक न करना पड़ा हो। कई वंशों के तो एकमात्र मुखिया ही इस युद्ध में काम आए और कई वंशों की सारी पीढ़ी खत्म हो गई।

मराठों की हार के कारण

पानीपत में मराठों की हार के क्या कारण थे। सर जादूनाथ सरकार, एच० आर० गुप्ता, टी० एस० शेजवालकर आदि विद्वानों ने इनका विस्तार से वर्णन किया है। इनमें से कुछ इस प्रकार हैं-

1. इन विद्वानों के अनुसार मराठों की हार के कारण नजीब उलाह के रूप में मुस्लिम ताकतों का पुर्नःउत्थान था। इसके

अलावा एक मौलवी शाह वल्ली उल्लाह ने इस बात का प्रचार किया कि भारत में एक बार फिर मराठे, जाट तथा सिक्ख द्वारा स्थापित हिंदू राज्य को खत्म किया जाए और इसके स्थान पर मुस्लिम राज्य की स्थापना की जाए। इसलिए इन्होंने अहमद शाह अब्दाली को भारत पर आक्रमण करने का निमंत्रण दिया।

2. मराठा सरदारों सिंधिया और होल्कर में आपस में शत्रुता थी यह भी उनकी हार का मुख्य कारण बना। होल्कर दिल से नहीं चाहता था कि पेशवा उत्तरी भारत में अपने पैर फैलाए। इसीलिए वह लड़ाई वाले दिन शत्रु से मिल गया और मैदान छोड़कर भाग खड़ा हुआ।

3. मराठा सेना अफगान सेना से कम थी साथ ही मराठे न तो अफगानों की तरह संगठित थे और न ही उनके पास अच्छे अस्त्र शस्त्र थे। तोपखाने की कमी ने उनकी निर्बलता को और अधिक गंभीर बना दिया था।

4. मराठों ने अपनी रसद का प्रबंध अच्छी तरह से नहीं किया था और भूख ने उनकी सेना का हौसला तोड़ दिया।

5. मराठे राजनीति व कूटनीति के क्षेत्र में दक्ष नहीं थे। वे भरतपुर के जाट, राजस्थान के राजपूत एवं पंजाब के सिक्खों को अपनी तरफ नहीं मिला पाए, जो कि उत्तरी भारत में इनके महत्वपूर्ण सहयोग हो सकते थे।

6. मराठे स्थानीय लोगों की सहानूभुति नहीं बटोर पाए उनकी लूटमार की नीति और अत्याचारों ने हरियाणा के लोगों को उनका शत्रु बना दिया। जब पानीपत के युद्ध में हारे हुए मराठा सैनिक उनके गांव से गुजरे तो किसानों ने उन्हें लूट लिया और उनके साथ दुर्व्यवहार किया। जब सैनिकों ने हिंदू धर्म की दुहाई दी तो मल्हार राव होल्कर के शब्दों में थोड़ा परिवर्तन करके किसानों को दोहरा दिया "किसान ऐसा ही किया करते हैं।"

पानीपत के युद्ध के बाद अपने देश में विद्रोह हो जाने के कारण अब्दाली वापस लौट गया। किंतु अब्दाली ने वापस लौटने से पूर्व हरियाणा प्रदेश के उत्तरी भाग को सरहिंद के गर्वनर जैन खां के अधीन कर दिया और शेष बचे हुए क्षेत्र को मुगल साम्राज्य का पूर्ववत भाग बना रहने दिया। अब्दाली ने दिल्ली का सर्वेसर्वा रूहेला सरदार नजीबुदौल्ला को मान लिया था। अतः अब्दाली के लौटते ही पानीपत के नीचे के समस्त हरियाणा पर नजीब का अधिकार हो गया।

31 मार्च 1770 ई० को नजीब की म त्यु हो गई। उसकी म त्यु के साथ ही दिल्ली में एक बार फिर अफरा-तफरी मच गई। ऐसे हालात में मराठे जो 1761 ई० में हार चुके थे एक पुनः संगठित होकर राजनैतिक सत्ता हथियाने के लिए दिल्ली की तरफ मुड़े। दिल्ली पर अधिकार करने के लिए उन्होंने अनुभव किया कि इसके लिए उन्हें तत्कालीन बादशाह शाह आलम का सहयोग आवश्यक है। शाह अलम इस समय दिल्ली से बाहर इलाहाबाद में अंग्रेजों की शरण में था। शाह आलम अंग्रेजो की सहायता से दिल्ली पर पुनः काबिज होना चाहता था। लेकिन अंग्रेजों ने उसकी इस बात पर कोई ध्यान नहीं दिया। अब शाह आलम के पास मराठों की सहायता लेने के अलावा कोई रास्ता नहीं बचा था। अतः मराठों की सहायता से 6 जनवरी 1772 ई० को शाह आलम एक बार फिर दिल्ली का बादशाह बन गया।

अब दिल्ली की हुकूमत एक तरह से मराठों के हाथों में थी और मुगल सम्राट शाह आलम केवल इनकी कठपुतली के सिवाए कुछ भी नहीं था। लेकिन मराठे इतना महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त करके भी इसे अपने अधिकार में नहीं रख पाए और थोड़े समय पश्चात शाही सेना के एक महत्वपूर्ण गुट के नेता मिर्जा नजफ से उनकी टक्कर हुई और मिर्जा नजफ ने उन्हें दिल्ली से बाहर खदेड़ दिया। इस प्रकार मिर्जा नजफ दिल्ली राज्य का सर्वेसर्वा बन गया। दिल्ली पर कब्जा होने के पश्चात मिर्जा नजफ ने हरियाणा की तरफ ध्यान दिया और देखते-देखते समस्त हरियाणा पर उसका अधिकार हो गया। लेकिन मिर्जा नजफ व्यवस्था के नाम पर कुछ नहीं कर पाया। 26 अप्रैल 1982 को मिर्जा नजफ की म त्यु हो गई। उसके मरते ही एक बार फिर चारों तरफ अराजकता और अव्यवस्था फैल गई।

मराठों का पुनः आधिपत्य

मिर्जा नजफ के मरते ही दिल्ली दरबार एक बार फिर राजनैतिक षड़यंत्रें का अड्डा बन गया। बादशाह शाह आलम जो इस समय बहुत बूढ़ा हो चुका था इन्हें रोकने में असमर्थ था। अतः उसने मराठा सरदार महादजी सिंधिया को सहायता करने के लिए आमंत्रित किया। सिंधिया इसके लिए तुरंत दिल्ली आ पहुंचा। किसी में भी इतना साहस नहीं था कि सिंधिया का विरोध कर सके। बादशाह ने तुरंत सिंधिया को शाही सेना का प्रधान सेनापति और दिल्ली राज्य का संचालक नियुक्त कर दिया। इसके बदले में सिंधिया ने बादशाह को 65,000 हजार रुपये खर्चा देना तय कर लिया।

महादजी सिंधिया

महादजी सिंधिया प्रसिद्ध मराठा सरदार रानोजी सिंधिया का पुत्र था। 1750 ई० में अपने पिता की म त्यु के पश्चात महादजी ग्वालियर का शासक बना। उसमें एक महान शासक के गुण थे। ग्वालियर का राज्य उन दिनों अपनी शक्ति की चरम सीमा पर था। उसने अपनी सेना को पश्चिमी ढंग से प्रशिक्षण देने के लिए फ्रांसीसी सेनापतियों को रखा हुआ था। इस सेना की सहायता से उसने 1785 में दिल्ली पर अधिकार किया। महादजी सिंधिया लगभग दो वर्ष तक दिल्ली की व्यवस्था पर काबिज रहा। इसी दौरान उसके विरोधी सक्रिय हो गए। इनमें कुछ मुगल सरादार, रुहेले सरदार तथा राजस्थान के राजपूत सामंत थे। इन सबने मिलकर 1787 ई० में सिंधिया को फिर दिल्ली से निकाल दिया।

सिंधिया के दिल्ली से निकलते ही रुहेले सरदार गुलाम कादिर ने दिल्ली पर आक्रमण कर उस पर अधिकार कर लिया। रुहेले सरदार ने बड़े क्रूर ढंग से दिल्ली को लूटा। उसने शाह आलम तथा उसके परिवार के साथ बहुत बुरा व्यवहार किया। बेगमों और राजकुमारियों का अपमान किया और शाह आलम को अंधा कर दिया। सिंधिया इस समय में दक्षिण से कुमुक आने का इंतजार कर रहा था। सहायता मिलते ही 1789 ई० में उसने दिल्ली पर आक्रमण कर दिया। रुहेले उसके आक्रमण को सहन नहीं कर सके और भाग खड़े हुए। उसने गुलाम कादिर को कैद करके उसका वध कर दिया। शाह आलम सिंधियां की इस कार्रवाई से बड़ा प्रसन्न हुआ और खुश होकर सिंधिया को समस्त भार सौंप दिया। अब महादजी सिंधिया सही अर्थो में दिल्ली का प्रशासक था।

दिल्ली पर कब्जा करते ही महादजी ने हरियाणा की तरफ ध्यान दिया, जो कि सारे का सारा मुगलों के हाथों से निकल चुका था। उत्तर में सिखों ने अंबाला करनाल और जींद के जिले अपने अधिकार में कर लिए थे। रेवाड़ी, गुड़गावां, झज्जर और रोहतक के इलाकों पर नजफ कुली खां स्वतंत्र रूप से शासन कर रहा था। गोकलगढ़ उसकी राजधानी थी तथा वह राजपूतों से मिलकर मराठों के खिलाफ संगठन तैयार करने में लगा हुआ था। उत्तर पश्चिम में फतेहाबाद रानिया व सिरसा में भट्टी लोगों का स्वतंत्र राज्य था। सिंधिया को इन सब प्रदेशों को जीतने का कार्य करना था।

उसने सर्वप्रथम सिखों की ओर ध्यान दिया। 1789 के अंत में उसने जनरल अंबाजी इगले को अंबाला, करनाल और जींद पर आक्रमण करने हेतू भेजा। सिख बड़ी बहादुरी से लड़े और कई महीने तक युद्ध होता रहा। लेकिन थोड़े दिनों पश्चात सिंधिया ने सोचा की सिखों को शत्रु बनाने के बजाए मित्र बनाना अधिक उचित रहेगा और उसने सिख सरदार बाघेल सिंह की मदद से सभी सिख सरदारों से संधि कर ली।

इसके बाद सिंधिया ने अपने विश्वस्त सेनापति इस्माइल बेग को भेजा। इस्माइल बेग ने सबसे पहले गुड़गावां पर आक्रमण कर उससे छीन लिया। उसने फिर रोहतक के कस्बे बेरी पर आक्रमण कर उसे जीत लिया। तत्पश्चात उसने रेवाड़ी की तरफ कूच किया। नजफ कुली खां यहां भी परास्त हुआ और रेवाड़ी पर इस्माइल का अधिकार हो गया। रेवाड़ी से दो मील उत्तर की ओर स्थित गोकुल गढ के किले में इस्माइल के पिता मुनीम खां को रखकर इस क्षेत्र की व्यवस्था उसके अधीन कर दी। इसके बाद इस्माइल बेग पश्चिम की ओर बढ़ा। नजफकुली खां का उसके साथ कन्नौज के स्थान पर मुकाबला हुआ। दोनों सेनाओं में भंयकर युद्ध हुआ। बहुत से सैनिक और अधिकारी मारे गए लेकिन विजय इस्माइल बेग की ही हुई। नजफ कुली खां 10 तोपें, कुछ हाथी और दूसरा सामान छोड़कर भाग गया। नजफ कुली खां ने भाग कर अपने आपको कन्नौज के किले में बंद कर लिया। इस्माइल ने पूरे इलाके को अपने कब्जों में ले लिया। कुछ मास तक दोनों पक्षों में छिटपुट झड़पें होती रही लेकिन कोई बड़ा युद्ध नहीं हुआ।

दिसंबर में इस्माइल ने कोसली पर अधिकार कर लिया इसके बाद आगे बढ़कर दादरी को जीत लिया। दादरी को अपने मातहत के अधीन रखकर नजफ कुली के पीछे कन्नौड चला गया। कन्नौड एक कम उपजाऊ और जलविहीन प्रदेश है जहां बालू के टीले है। उन दिनों जल के अभाव की गंभीर समस्या पैदा हो गई थी क्योंकि नजफ कुली खां किले की दीवार के आठ मील दूर के सभी किले भरवा दिये थे। इस्माइल ने 15-16 मील की दूरी से ही कन्नौड को घेर लिया और वहां अन्न पहुंचाना बंद कर दिया। इसी दौरान उसके सैनिकों ने आसपास के क्षेत्रों पर कब्जा कर लिया। इस्माइल ने कन्नौड का घेरा तीन मास तक जारी रखा और फिर उसने घेरा उठा लिया। क्योंकि गुलाम कादिर को हराने के पश्चात सिंधिया आर्थिक कठिनाइयों में फंस गया था। अतः विवश होकर उसने अपने मातहत अफसरों को जो रुपया देने का वचन दिया था, वह भंग करना पड़ा। इनमें इस्माइल बेग भी एक था। रुपया न मिलने की सुरत में उसने घेरा उठाने में ही लाभ नजर आया।

नवंबर 1789 में सिंधिया ने होल्कर से समझौता करके उसे मेवात व पानीपत का क्षेत्र दे दिया। होल्कर ने काशी राव होल्कर को मथुरा से उत्तर की तरफ भेजकर शीघ्र ही समस्त मेवात पर कब्जा कर लिया। उसके कार्यकर्ता नुह के थानेदार गोपाल हरी को इस्माइल के आदमियों ने मारकर भगा दिया। इसके बाद इस्माइल ने सिंधिया को दोहरी चाल अपनाने का इल्जाम लगाते हुए एक पत्र लिखकर भला बुरा कहा लेकिन सिंधिया ने इसका कोई उत्तर नहीं दिया। फलस्वरूप इस्माइल राजपूताने के मराठा विरोधी संघ में शामिल हो गया। उसने फरवरी 1790 ई० में राजपूतों के साथ निम्न शर्तो पर मित्रता की संधि कर ली। जोधपुर के राजा ने उसको सात लाख और जयपुर के राजा ने पांच लाख देना स्वीकार किया। इसमें दो लाख तो उसी समय देने थे और शेष उस समय जब सिंधिया से लड़ाई शुरू हो जाए। इस्माइल के वचन की जमानत के रूप में उसके परिवार को जयपुर में रहना था।

जब महादजी सिंधिया को इस संधि का पता चला तो उसने गोपाल भाऊ के नेत त्व में उसके खिलाफ एक बड़ी सेना भेजी। जब इस्माइल को इस बात का पता चला तो उसने नजफ कुली की छीनी हुई जागीरे उसे वापस लौटा कर उसे अपने पक्ष में कर लिया। नजफ कुली 2,000 घुड़सवारों के साथ उससे आ मिला। गोपाल भाऊ की शत्रु से पहली टक्कर रेवाड़ी के नजदीक पटौदी नामक कस्बे में हुई। मराठा सेना के इस्माइल के अधिकारी से पटौदी कस्बा छीन लिया। फिर मराठा सेना ने इस्माइल बेग के पिता मुनीम बेग को गोकुल गढ़ के किले में घेर लिया। यहां से गोपाल भाऊ शत्रु की खोज में पश्चिम की ओर चला। जब उसकी सेना नारनौल के पास पहुंची तो इस्माइल बेग पीछे हटकर पाटन भाग गया। मराठा सेना ने उसका पीछा किया। अब इस्माइल की हालत बड़ी विचित्र थी। उसका पिता और उसके अधिकतर साथी उससे बिछड़ गए थे।

इसी समय नजफ कुली खां की विधवा का पत्र इस्माइल को मिला, उसने कन्नौज के किले और खजाने को उसे सौंपने का जिक्र किया गया था। इस्माइल कन्नौज की तरफ चल पड़ा। लेकिन जब वह कन्नौज के नजदीक पहुंचा तो खाण्डेराव होल्कर ने उसका रास्ता रोक लिया। इस लड़ाई में इस्माइल की हार हुई क्योंकि उसके बहुत से सैनिक जिन्हें वेतन नहीं मिला था को धन देकर मराठों ने खरीद लिया। अंत में उसके पास केवल 400 सैनिक रह गए तथा वह दुर्ग के पास पहुंच गया। लेकिन तब तक नजफ कुली की विधवा का मन बदल चुका था। वह अब जान चुकी थी कि इस्माइल के पास अब सैनिक ताकत नहीं बची है। अतः इस्माइल मजबूर होकर माधोगढ़ के पहाड़ी किले में चला गया। कन्नौड और माधोगढ़ दोनों किलों का सिधिया की सेना ने घेरा डाल लिया। तीन मास बाद 16 फरवरी 1792 को खाण्डेराव ने माधोगढ़ के किले पर अधिकार कर लिया। इस्माइल किले को छोड़कर कन्नौड भाग गया। मराठा सेना ने कन्नौड पर भी कब्जा कर लिया। इस्माइल को गिरफ्तार कर आगरा के किले में कैद कर लिया गया और कुछ समय बाद उसका वध कर दिया गया।

सिखों और इस्माइल से निपटने के बाद फतेहाबाद, सिरसा और राणीया के शासक भट्टी लोगों को परास्त कर उन्हें अपने अधीन कर लिया। इस प्रकार समस्त हरियाणा सिंधिया के अधीन हो गया।

मराठा प्रशासन

हरियाणा प्रदेश के प्रशासन को सुचारू रूप से चलाने के लिए उसे निम्न चार जिलों में बांट दिया गया।

1. **देहली जिलाः** इसमें राजधानी और आसपास का क्षेत्र सम्मिलित था।
2. **पानीपत जिलाः** इसमें करनाल व दिल्ली के बीच का उत्तरी हरियाणा सम्मिलित था, जिसमें आज के सोनीपत, पानीपत, करनाल तथा कुरुक्षेत्र जिले आते हैं।
3. **हिसार जिलाः** इसमें हिसार तथा रोहतक जिले के कुछ भाग सम्मिलित थे।
4. **मेवात का जिलाः** इसमें गुड़गावां, रेवाड़ी, नारनौल तथा महेंद्रगढ़ सम्मिलित थे।

सिंधिया ने प्रत्येक जिले का प्रशासन एक राज्यपाल के अधिकार में दे रखा था। राज्यपाल की सहायता के लिए कई छोटे अफसर होते थे जो राज्यपाल के अधीन कार्य करते थे। प्रशासन की सबसे छोटी इकाई ग्राम होते थे। ग्राम की व्यवस्था पंचायतों द्वारा की जाती थी। गांव को लगभग हर काम में स्वतंत्रता दी हुई थी। दूसरी तरफ यह भी कहा जा सकता है यदि मालगुजारी ठीक प्रकार से दे देते थे तो गांव के किसी कार्य में हस्तक्षेप नहीं होता था।

दौलत राव सिंधिया

1749 ई० महादजी सिंधिया की म त्यु हो गई। उसकी म त्यु के साथ ही चारों तरफ अव्यवस्था तथा अराजकता फैल गई। सिंधिया को अयोग्य भतीजा दौलतराव सिंधिया स्थिति को संभाल न सका। अतः 1803 ई० में अंग्रेज मराठा युद्ध में हार के पश्चात सर्जी अर्जन गांव की संधि के अनुसार हरियाणा प्रदेश अंग्रेजों को सौंप दिया। इस प्रकार समस्त हरियाणा पर अंग्रेजो का अधिकार हो गया।

जाटों का उदय

जाट एक क षक जाति है। ये समस्त हरियाणा में आबाद थे। औंरगजेब के शासन काल से पूर्व उनका मुख्य धंधा खेती बाड़ी करना ही था। परंतु औंरगजेब की आर्थिक शोषण और धार्मिक भेदभाव की नीति के कारण ये विद्रोह पर उतर आए और इन्होंने हल छोड़कर तलवार उठा ली। फरीदाबाद के पास तिलपत गांव का एक वीर पुरुष गोकुला इनका नेता था। गोकुला को कई जगह औला तथा कई जगह कान्हरदेव भी कहा गया है। उसके अदम्य साहस और महान वीरत्व के गुण थे। जोड़ तोड़ व संगठन बनाने की कला में भी वह माहिर था। उसने क षकों को सैनिक व राजनीतिक विद्रोही बना दिया। वह क षकों के ही लिए मुगलों से लड़ता हुआ 1670 ई० में वीर गति को प्राप्त हुआ।

गोकुला की म त्यु के बाद जाटों को नेत त्व उसके योग्य पुत्र राजाराम (1670-1680) में संभाला। राजाराम के सफल नेत त्व से जाटों ने कई मुगल सेनापतियों को हराया। 1687 ई० में उसके हाथों मुगल सेनापति उधरखां मारा गया। थोड़े समय बाद राजाराम ने महावतखां को लूटा। मार्च 1688 ई० में उन्होंने सिकंदरा स्थित अकबरे के मकबरे को लूट लिया। वहां से वे सोने चांदी के बर्तन दिए व मूल्यवान कालीने, गलीचे इत्यादि उठा ले गए। छतों व दिवारों में जड़े रत्न व कीमती पत्थर उखाड़ लिए गए। महान मुगल सम्राट की कब्र को खोद कर उसकी अस्थियों को आग में डाल दिया। फतुहाते आलमगोरी से ज्ञात होता है कि अपने दादा के मकबरे की विनाश की सूचना पाकर औंरगजेब को गहरी ठेस लगी और वे गुस्से से पागल हो उठा। उसने शहजादा बेदार बख्त को एक बड़ी सेना के साथ जाटों को उनकी इस गुस्ताखी की सजा देने के लिए भेजा। राजाराम और मुगल सेनाओं में भंयकर युद्ध हुआ। 14 जुलाई 1688 ई० को राजाराम युद्ध करता हुआ वीर गति को प्राप्त हुआ।

राजाराम मर गया लेकिन वह अपने पीछे ठोस स्थाई संगठन जन जाग ति तथा अन्याय के विरुद्ध लड़ने की भावना पीछे छोड़ गया। अब मुगलों की जन विरोधी आर्थिक व धार्मिक नितियों का विरोध करने के लिए जाट क षकों का जिन्होंने तलवारें उठा ली थी एक मजूबत संगठन तैयार था।

बल्लभगढ़ राज्य का उदय

औंरगजेब की म त्यु के बाद पैदा हुई अराजकता की परिस्थिति का लाभ उठाकर कई नए स्वतंत्र राज्य अस्तित्व में आए उनके बल्लभगढ़ फरीदाबाद जिले का एक छोटा सा कस्बा है। मुगलों के समय में बल्लभगढ़ और उसके आसपास जाट लोग बसते थे जिनका नेता चौधरी गोपाल सिंह था। वह बड़ा ही वीर तथा साहसी व्यक्ति था। वह दिल्ली तथा आगरा मार्ग से होकर आने वाले कारवां को लूट लेता था। उसने मुगलों के अधीन दिल्ली के साथ लगते फरीदाबाद परगने को भी खूब लूटा। तत्कालीन मुगल शासकों ने उसे रोकने की कई बार कोशिश की लेकिन वे असफल रहे। अंत में मुगल बादशाह फरुख शियर को उससे समझौता करना पड़ा और उसे फरीदाबाद का चौधरी स्वीकार कर लिया। अब फरीदाबाद से उगाहे गए करों में से हर रुपये में एक आना उसका होता था।

गोपाल सिंह के बाद उसका पुत्र चरण दास बल्लभगढ़ की गद्दी पर बैठा। वह और भी अधिक वीर तथा साहसी पुरुष था। उसने मुगलों की सत्ता को अस्वीकार करते हुए कर भेजने से इंकार कर दिया। इस पर मजबूर होकर मुगल सेना ने उस पर आक्रमण कर दिया। इस युद्ध में चरणदास की हार हुई। उसे पकड़कर दिल्ली लाया गया और जेल में डाल दिया गया। चरणदास का पुत्र बल्लभसिंह उर्फ बल्लू बड़ा ही चतुर व कूटनीति में निपुण था। उसने भरतपुर के राजा से सहायता लेकर बड़ी होशियारी से अपने पिता को रिहा करवा लिया।

बल्लभ ने बल्लभगढ़ के किले का निर्माण करवा कर उसमें अपना मुख्यालय स्थापित कर लिया। उसने बड़ी निपुणता से कार्य किया और दिल्ली तथा फरीदाबाद के बीच के सारे इलाके पर अधिकार कर लिया। बल्लभगढ़ के जाट शासकों के साथ उसके अच्छे संबंध थे जो जरूरत पड़ने पर उसकी सहायता करते रहते थे। रिवाड़ी के अहीर शासक से भी उसकी मित्रता था। इन

सबके कारण बल्लभ इतना शक्तिशाली हो गया था कि वह मुगलों की कोई परवाह नहीं करता था। अहमदशाह जब मराठों की सहायता से दिल्ली का बादशाह बना तो उसने अपने प्रधानमंत्री इमाद को बल्लभ से निपटने के आदेश दिए। मराठे भी यही चाहते थे। इस प्रकार मराठों और मुगलों की मिली जुली सेना ने 1753 ई० में बल्लभगढ़ पर आक्रमण कर दिया। इस मिली जुली सेना का नेत त्व अकीबत खां कर रहा था। बल्लभ ने भी अपनी सेना को तैयार करके लड़ने का आदेश दिया, पर थोड़ी देर बाद दोनों में सुलह हो गई और बल्लभ ने बकाया कर की रकम देना स्वीकार कर लिया।

मुगल सरदार इकाबत जब जाट इलाके में लगान वसूली के लिए घुसा तो पलवल व उसके आसपास के जाट किसानों ने विद्रोह कर दिया। यही नहीं उन्होंने इकाबत द्वारा भेजे गए फतेपुर के थानेदार को भी मार भगाया। इसके कारण इकाबत को दोबारा बल्लभगढ़ पर आक्रमण करना पड़ा लेकिन लड़ाई से पहले बल्लभ को अपना वायदा पूरा करने के लिए शहर से बाहर बुलाया। बल्लभ अपने पुत्र और 250 अंगरक्षकों के साथ उपस्थित हुआ। लेकिन यहां पर इकाबत और बल्लभ के बीच तू-तू मैं-मैं हो गई। इससे इकाबत के अंगरक्षकों ने उसका कत्ल कर दिया। यहां बल्लभ का पुत्र भी मारा गया। इसके बाद इकाबत ने बल्लभगढ़ के किले पर हमला कर दिया। जाट बड़ी वीरता से लड़े लेकिन अंततः हार गए। इकाबत को यहां बहुत सा धन और सैनिक सामान हाथ लगा। इस जीत की खुशी में इमाद ने "निजामुल-मुल्क आसफ जाह की उपाधि धारण की और इसके ऊपर बल्लभगढ़ का नाम निजामगढ़ रख दिया।"

अहमदशाह इमाद की इस कारगुजारी से बहुत प्रसन्न हुआ और फरीदाबाद तथा बल्लभगढ़ का सारा इलाका उसे दे दिया। लेकिन इमाद के पतन के बाद बल्लभ के उत्तराधिकारी ने भरतपुर के राजा सूरजमल की सहायता से अपना राज्य पुनः प्राप्त कर लिया। लेकिन अब बल्लभगढ़ राज्य की वह शान शौकत न रही। इस राज्य के उत्तराधिकारी केवल भरतपुर के संरक्षण में ही अपना अस्तित्व कायम रख सके।

भरतपुर राज्य का उदय

जाट सरदार राजाराम 14 जुलाई 1688 को वीरगति हो प्राप्त हुआ। इसके बाद जाटो की कमान उसके वीर तथा सुयोग्य भतीजे चुड़ामन ने संभाल ली। वह भी जीवन भर औंरगजेब के साथ लड़ता रहा। औंरगजेब की 1707 में म त्यु हो गई। इसके बाद बहादुर शाह बादशाह बना। उसने चुड़ामन की शक्ति व राजनैतिक स्थिति स्वीकार कर ली। इस प्रकार भरतपुर राज्य की नींव पड़ी। बहादुर शाह के काल में चुड़ामन ने अपनी शक्ति को ओर भी बढ़ा लिया। मुआंसिरुल उमरा के अनुसार "उसने स्वच्छदंता तथा ध ष्टता की हदें पार कर दी थी। निर्भिकता के साथ वह शाही परगनों पर छापे मारता था। उसने विनाश तथा लूटमार करके आगरा सूबे की शांति व व्यवस्था का अंत कर दिया। यही नहीं इस समय जाटों ने दिल्ली तक अपना कार्य क्षेत्र व्यापक कर दिया था।" इस प्रकार हरियाणा का वह भाग जो दिल्ली व राजस्थान के बीच स्थित था अब सारा चुड़ामन के कब्जे में चला गया। 20 अक्टूबर 1721 को चुड़ामन की म त्यु हो गई। चुड़ामन की म त्यु के बाद जाट शक्ति के आगे बढ़ाने का कार्य बदन सिंह (1723-1755) के नेत त्व में जारी रहा।

महाराजा सूरजमल

जाटों का सबसे प्रसिद्ध शासक सूरजमल (1755-1764 ई०) था। प्रो० के० सी० यादव के अनुसार "वह अत्यंत बुद्धिमान व्यक्ति था। वह सैन्य गुणों में अद्वितीय था। उस सरीखा लड़ाकू, उस सरीखा वीर, उस सरीखा सफल सेनानायक उस काल में शायद ही कोई हो। इनके साथ-साथ वह निहायत चतुर कूटनीतिज्ञ भी था। वास्तव में उसमें अफगान, पठान, रुहेले और मराठों के सब गुण विद्यमान थ। चालाकी और चुस्ती, बुद्धिमता और सूझ-बूझ, हिम्मत और साहस में वह इन सबके बराबर था। अपने इन्हीं गुणों के बलबुते पर उसने भरतपुर के छोटे ठिकाने को एक शक्तिशाली राज्य में बदल दिया। राजस्थान के राजपूत शासक, दक्षिण के मराठे, दिल्ली के मुगल और उत्तर प्रदेश के रुहेले सब उसका लोहा मानते थे"। डॉ० हरिराम गुप्त का कथन है कि "वह अपने समय का सबसे सुयोग्य शासक था"।

पानीपत के तीसरे युद्ध के समय सूरजमल ने मराठों को सलाह दी थी कि वे अपना भारी सामान, परिवार इत्यादि लड़ाई के मैदान में जाने से पहले पीछे कासी या ग्वालियर छोड़ दे, तथा सीधी लड़ाई की बजाए गुरील्ला युद्ध से काम ले और सीधा पानीपत जाने की बजाए यमुना पार से अब्दाली के मुख्य साथी रोहीलो के इलाके पर आक्रमण करके रसद का रास्ता बंद कर दे। लेकिन सदाशिव राव भाऊ ने सूरजमल की यह बात नहीं मानी इसलिए सूरजमल ने मराठों का साथ नहीं दिया। नतीजा इस युद्ध में मराठों की हार हुई।

पानीपत के युद्ध के बाद सूरजमल ने हरियाणा की तरफ ध्यान दिया और अपनी सेनाओं को हरियाणा पर अधिकार करने के लिए भेजा। इस समय हरियाणा की राजनैतिक व सामाजिक परिस्थितियां कई कारणों से सूरजमल के अनुकूल थी। प्रथम यहां की अधिकांश जनता जाट थी जो पूर्ववर्ती शासकों के अत्याचारों से दुखी थी इसलिए वे सूरजमल से सहानुभूति रखती थी। दूसरे इस समय जाटों ने बल्लभगढ़ के स्थान पर एक छोटा सा राज्य भी कायम कर लिया था। इस राज्य के शासकों ने सूरजमल की हरियाणा विजय में सहायता की। तीसरे हरियाणा के अधिकांश तत्कालीन जमींदार बाहर आए हुए बिलौच व पठान आदि थे जो यहां की प्रजा के साथ सामाजिक एवं सांस्क तिक रूप से जुड़े हुए नहीं थे। जबकि सूरजमल यहां के समाज और संस्क ति से बखूबी जुड़ा हुआ था। इस प्रकार सूरजमल ने बड़ी आसानी से मेवात, झज्जर, रोहतक के काफी बड़े भूभाग पर अपना अधिकार जमा लिया। यहां के स्थानीय छोटे-छोटे सरदार या तो भाग गए या फिर उन्होंने सूरजमल की अधीनता स्वीकार कर ली।

हरियाणा के जीते हुए प्रदेशों की बागडोर सूरजमल ने अपने पुत्र जवाहर सिंह को सौंप दी। यद्यपि जवाहर सिंह ने अपना उत्तरदायित्व ठीक प्रकार से संभाला, पर जवाहर यहां पूर्ण रूप से शांति स्थापित करने में असफल रहा। इसका मुख्य कारण था मेवातियों की लूटमार। इन दिनों इस इलाके में कई मेवाती डाकू सक्रिय थे। इनमें सबसे खतरनाक सानुल्वा था। उसने डाकूओं का एक गिरोह बना रखा था। तावडू के बिलौच सरदार असादुल्लाखां का उसे संरक्षण प्राप्त था जिसे वह लूट का आधा माल देता था। वह दूर-दूर तक लूट मार करता और असादुल्लाखां के इलाके में आ छुपता। उससे जनता बेहद दुखी थी। जवाहर सिंह को जब इस बात का पता चला तो उसके लिए उसे खत्म करना जरूरी हो गया।

जवाहर सिंह ने योजना बनाई की डाकू सानुल्वा तभी खत्म हो सकता है जब उसके संरक्षण बिलौच सरदार को खत्म किया जाए। जवाहर ने बिलौच सरदार को सानुल्वा को उसके हवाले करने को कहा लेकिन बिलौच सरदार ने साफ इंकार कर दिया। इस काम में फरख नगर के शासक मुसावी खां ने भी उसका साथ दिया। अब सूरजमल ने जवाहर को बिलौचों पर आक्रमण करने का आदेश दिया। लेकिन असादुल्लाखां और मुसाबीखां की संयुक्त सेनाओं ने जाटो के आक्रमण को निष्फल बना दिया और जवाहर सिंह को वापस लौटना पड़ा। लेकिन 1763 ई० में जवाहर सिंह ने फरुखनगर पर फिर चढ़ाई कर दी। मुसावी खां ने भी डटकर मुकाबला किया। जवाहर सिंह की हार होने ही वाली थी कि सूरजमल सेना वे तोपे लेकर उसकी सहायता के लिए आ गया। दो महीने तक किले का घेरा चलता रहा और अंत में 12 दिसंबर 1763 ई० को किला जीत लिया गया। मुसावी खां को भरतपुर के किले में बंदी बनाकर डाल दिया गया।

सूरजमल ने इस नवविजीत प्रदेश को भी अपने बेटे जवाहरसिंह को सौंप दिया। अब सूरजमल ने रुहेले सरदार नजीब पर आक्रमण कर दिया। लेकिन एक दिन 25 दिसंबर 1764 ई० को जब वह हिण्डन नदी पार कर रहा था तो उसका धोखे से कत्ल कर दिया गया और बुरे दिनों में ग ह कलह में फंस गए।

सूरजमल की म त्यु के बाद जवाहर सिंह को यहां से लौटना पड़ा। उसके लौटते ही नजीब ने हरियाणा प्रदेश पर आक्रमण कर दिया। यहां के जाट किसानों ने उसका डटकर मुकाबला किया लेकिन अंत में विजय नजीब की हुई। इस प्रकार अधिकतर हरियाणा एक बार फिर मुगलों के अधीन आ गया।

सिखों का हरियाणा में प्रवेश

अब्दाली के भारत छोड़ते ही पंजाब के सिखों ने भी विद्रोह के झण्डे बुलंद कर दिए। सैनिक रूप से सिख उस समय दो दलों में बंटे हुए थे- बुढ़ादल तथा, तरुण दल। बुढ़ा दल में अहलुवालिया, सिंहपुरिया, डल्लेवालिया, करोड़ सिंघिया, निशान वालीया और शहीद मिसले शामिल थी और उसका नेत त्व जस्सा सिंह अहलुवालिया करता था। तरुण दल में राम गढ़िया कन्हैया, सुक्रचकीया, भर्गी नकाई मिसले शामिल थी। इसका नेत त्व हरिसिंह भर्गी करता था। जनवरी 1764 ई० में सिखों के दोनों दलों ने मिलकर सरहिंद के दुर्रानी गर्वनर जैन खां, जिसे अहमदशाह अब्दाली लौटते समय इस पद पर नियुक्त कर गया था पर आक्रमण कर दिया। जैन खां ने कुछ समय तक सिखों का मुकाबला किया लेकिन अंत में हार गया तथा मारा गया। जैन खां से सिखों को एक विस्त त भू भाग प्राप्त हुआ जो यमुना नदी से लेकर पश्चिम में बहावलपुर तक तथा उत्तर में सतलुज से लेकर दक्षिण में हिसार, रोहतक तक फैला हुआ था। इसकी वार्षिक आय 1 लाख रुपये बैठती थी। इस समस्त क्षेत्र पर सिखों ने अपने सामर्थ्य के अनुसार अधिकार कर लिया।

हरियाणा क्षेत्र पर जिन सिख नेताओं ने कब्जा किया वे इस प्रकार थे। दल खालसा के नेता जस्सा सिंह अहलुवालिया ने नारायणगढ़ के आसपास के सारे क्षेत्र पर अधिकार कर लिया। जय सिंह निशानवालिया ने खरड़ के परगने पर कब्जा कर लिया। कर्म सिंह शहीद ने शहजादपुर और केसरी के इलाके पर कब्जा कर लिया। जस्सु सिंह डल्लेवालिया ने मुस्तफाबाद तथा अरनौली के क्षेत्रों पर अधिकार कर लिया। रामसिंह भर्गी के पुत्रों ने बुडीया जगाधरी दामला के 204 गांवों पर अधिकार कर लिया। गुरबख्श सिंह करोड़ सिंधिया ने छछरोली तथा चरक के क्षेत्र पर कब्जा कर लिया। कर्मसिंह ने बिलासपुर, दयाल सिंह ने कोट, जोध सिंह ने धर्म कोट के परगनों पर कब्जा कर लिया। मेघा सिंह सिंधु ने शाहबाद और इस्लामाबाद और गुरबख्श सिंह शहीद ने तगोंर के क्षेत्र पर अधिकार जमा लिया। साहबसिंह और गुरदत सिह नामक दो भाईयों ने लाडवा, इन्द्री बबाईन और शाहगढ़ के 117 गांवों पर अधिकार कर लिया। मीत सिंह और उसके दो भतीजों भंगा सिंह और भाग सिंह ने पेहवा तथा थानेसर के परगनों पर अधिकार कर लिया। गजपत सिंह ने सफीदों, पानीपत, जींद और बाजीदपुर के क्षेत्र पर अधिकार जमा लिया।

सिखों द्वारा हरियाणा में लूटमार

अब सिखों का सरहिंद से लेकर पानीपत तक के समस्त क्षेत्र पर अधिकार हो गया। पानीपत के आगे के इलाके पर दिल्ली वजीर नजीबुदौला का अधिकार था। नजीब ने सिखों को अपने इलाके में घुसने नहीं दिया तो उन्होंने लूटमार करनी शुरू कर दी। नवंबर 1765 ई० में सिखों ने जस्सा सिंह, तारा सिंह और श्याम सिंह के नेत त्व में पानीपत के आसपास के क्षेत्र पर आक्रमण कर दिया। उन्होंने नगर तथा कस्बों को लूटा तथा दूर-दूर के गांवों से कर वसूल किया। जब यह खबर नजीब के पास पहुंची तो उसने सेना लेकर सिखों को वापस खदेड़ दिया। इसी समय सिखों ने जाट राजा जवाहर सिंह से सांठ गांठ कर अपनी स्थिति को मजबूत कर लिया। दिसंबर 1765 में सिख रेवाड़ी नगर तक पहुंच गए। रेवाड़ी पर उन दिनों मुगल जागीरदार नागरमल खत्री का अधिकार था। सिखों ने रेवाड़ी नगर बुरी तरह लूटा। तत्कालीन इतिहासकार नूरूदीन के अनुसार "रेवाड़ी के केवल वे ही मनुष्य सिखों की लूट से बच पाए जो इस क्षेत्र के अहीर जागीदार के गोकलगढ़ स्थित दुर्ग में शरणागत हो गए थे।" रेवाड़ी के बाद सिखों ने नारनौल तथा कन्नौज पर आक्रमण किया। यह इलाका इस समय जयपुर राज्य का अंग था। जयपुर के राजा माधो सिंह ने सिखों के विरुद्ध मराठा सेनापति महादजी सिंधिया से सहायता मांगी। जब मराठा सेना सहायता के लिए आ गई तो सिख वापस लौट गए।

1762 ई० के अंत में सिखों ने एक बार फिर नजीब के क्षेत्र पर आक्रमण किया। नजीब जब सेना लेकर आया तो सिख बिना लड़े ही वापस लौट गए, परंतु मार्च 1768 में सिखों की संयुक्त सेनाओं ने जस्सा सिंह के नेत त्व में पानीपत तथा सोनीपत पर आक्रमण कर दिया। इस बार जब नजीब लड़ने के लिए वापस आया तो सिख पीछे हटने के बजाए जमकर लड़ने लगे। इस बार सिखों की विजय हुई। इस विजय से खुश और उत्साहित होकर सिखों ने दिल्ली पर आक्रमण कर दिया। लेकिन आपसी फूट के कारण वे वापस चले गए। 1770 ई० में सिखों ने एक बार फिर पानीपत और दिल्ली के इलाकों को बुरी तरह से लूटा, इसी समय नजीब की म त्यु हो गई और उसका पुत्र उनका विरोध करने की स्थिति में नहीं था। इस प्रकार 1772 ई० तक सिख हरियाणा प्रदेश जिस पर उनका अधिकार नहीं था लूटते रहे।

जार्ज टामस का हरियाणा शासन (1797 से 1802)

जार्ज टामस का जन्म आयरलैंड में टिप्पीटेरी नामक स्थान पर हुआ। उसके माता पिता निर्धन थे इसलिए अपनी कोई विधिवत शिक्षा भी नहीं हो पाई। छोटी सी आयु में ही उसने घर छोड़ दिया और एक साधारण नाविक बन गया। सन् 1782 ई० में जब उसका जहाज मद्रास पहुंचा तो वहां उतर पड़ा और दक्षिण भारत जंगली कबीलाई सरदार पोलीगरों के साथ मिलकर लूटमार करने लगा। इसके बाद वह निजाम की सेना में तोपची बन गया। लेकिन छः महीने में ही वह इस काम से तंग आ गया और 1787 ई० में दिल्ली आ गया। इसके बाद वह बेगम सुमरू की सेना में भर्ती हो गया और थोड़ी ही समय में अपने साहस तथा प्रभावशाली व्यक्तित्व के कारण बेगम का विश्वास पात्र बन गया।

कई इतिहासकारों का यह भी मानना है कि बेगम टामस से प्रेम करने लगी थी। कुछ समय पश्चात बेगम ने उसके साथ अपनी एक गोद ली हुई पुत्री का विवाह कर दिया और उसे टप्पल की जागीर की वार्षिक आय 70,000 रुपये थी। अपने नये पद को टामस बड़ी जिम्मेदारी के साथ संभाला। उसने कानून भंग करने वालों का सख्ती से दमन किया, सिख आक्रमणकारियों को हराकर भगा दिया और टप्पल की जागीर का भूमिकर पहले से दुगना कर दिया।

लेकिन यहां भी टामस अधिक दिन तक नहीं टिक पाया। सन् 1792 में फ्रांसीसी सिपाहियों की बर्खास्तगी को लेकर बेगम की सेना के फ्रांसीसी अधिकार टामस के विरोधी हो गए। इन फ्रांसीसियों के नेता लवासी था जो बेगम का प्रेमी भी था। लवासी की सलाह से बेगम ने टासम को सेवायुक्त कर दिया। टामस ने इसे अपना अपमान समझा और विद्रोह कर दिया तथा टप्पल नहीं छोड़ा। बेगम सुमरू की सेना ने आक्रमण करके उसे बंदी बना लिया लेकिन उसकी पिछली सेवाओं को देखकर उसे छोड़ दिया गया।

यहां से टामस अनूप शहर पहुंचा। उस समय उसके साथ 250 सैनिक भी थे। यहां पर उसे 1793 ई० में मराठा गर्वनर अप्पा खाण्डेराव ने अपनी सेवा में ले लिया तथा एक सैनिक टुकड़ी भी उसके अधीन कर दी। टामस को मेवात प्रांत की जिम्मेदारी सौंपी गई। मेवात के लोग बागी स्वभाव के थे तथा किसी को भी कर नहीं देते थे। टामस ने एक सेना खड़ी की और मेवात के बागी क षकों से बलपूर्वक भूमिकर वसूल किया। उसने अपने सैनिकों का वेतन देने के लिए लूटमार भी करनी पड़ी। उसने बेगम सुमरु की जागीर को कई बार लूटा। 1794 ई० में उसने बहादुरगढ़ तथा झज्जर को भी लूटा। खाण्डेराव ने जार्ज टामस के कार्यो से प्रसन्न होकर झज्जर पटौदी और आसपास के गांव उसे जागीर में दे दिए।

हरियाणा के स्वतंत्र राज्य के रूप में

अप्पा खाण्डेराव के बाद टामस ने मराठों की नौकरी छोड़ दी। क्रामटन के अनुसार "अब टामस अपनी जीविका अर्जित करने के लिए स्वतंत्र डाकू बन गया। वह पड़ोस के गांव व कस्बों पर धावे बोलने लगा। वह संपत्ति के मामूली नियमों की भी उपेक्षा करता था।" लेकिन शीघ्र ही टामस ने अपने लिए एक स्वतंत्र राज्य स्थापित करने का निर्णय लिया। उसने रेवाड़ी, दिल्ली और करनाल जिलों के पश्चिम और पटियाला के दक्षिण में एक ऐसे प्रदेश को चुना जिस पर किसी का भी कब्जा नहीं था और इसे अपनी रियासत बना लिया। हाँसी का उसने अपनी राजधानी बना लिया। यह प्रदेश अण्डाकार था। इसकी सीमाएं निश्चित नहीं थी और सदा बदलती रहती थी। यह साधारण तथा 32 से 48 मीटर तक लंबा चौडा था। इसके उत्तर में घघर नदी थी जो सिखों के प्रदेश से इसको अलग करती थी। पश्चिम में भट्टी लोगों का प्रदेश था, इसके आगे बीकानेर की मरू भूमि थी तथा दक्षिण में रेवाड़ी जिला था। यह सारा प्रदेश ऐसा था जहां पर वर्षा की कमी थी तथा पानी गहरे कुंओं से निकाला जाता था।

टामस ने कुछ समय बाद अपनी सीमाओं का और अधिक विस्तार कर लिया। अब उसके राज्य में आजकल के, गुड़गावां, रोहतक, सोनीपत, हिसार तथा भिवानी जिलों का काफी क्षेत्र सम्मिलित था। इस नवनिर्मित राज्य में उस समय के 14 परगने और 253 गांव थे जिनकी आमदनी 2 लाख 86 हजार रुपये थी। इसके अतिरिक्त उसकी सेवाओं के बदले में मराठों से उसे कुछ परगने मिले हुए थे, जिनमें 151 गांव थे और इनकी आमदनी 1 लाख 44 हजार रुपये थी। ये परगने थे- झज्जर, बेरी, मांडोठी, पटौदी और बादली। टामस ने अपनी प्रजा पर बड़ी उदारता तथा न्याय के साथ शासन किया और बाहर के आक्रमणकारियों से उनकी रक्षा की। उसके प्रयत्नों से उसकी राजधानी हाँसी एक अच्छा नगर बन गई, जिसकी जनसंख्या 6,000 थी। यहां उसने एक टकसाल भी स्थापित की जहां उसके नाम के सिक्के ढाले जाते थे। इन सिक्कों को "सिक्का ए साहीब" कहते थे। इसके अलावा उसने अपनी तोपें स्वयं ढाली और तोडेदार तथा टोपेदार बंदूके बनाई। वह बारूद भी स्वयं बनाता था।

जार्ज टामस जैसा महत्वकांक्षी और साहसी व्यक्ति अपने इस सीमित राज्य से भला कैसे संतुष्ट रह सकता था। वह एक विस्त त राज्य स्थापित करना चाहता था। ऐसी अवस्था उसकी अपने पड़ोसी सिख राज्य से टक्कर होना अनिवार्य था। सन् 1798 में जब शाह जमान ने पंजाब पर आक्रमण किया और सिख उसका मुकाबला करने में लगे हुए थे। तो टामस ने इसे उपयुक्त मौका जानकर जींद के राजा भाग सिंह पर आक्रमण कर दिया। राजा भाग सिंह ने 3,000 सैनिकों के साथ उसका मुकाबला किया और जार्ज टामस को पीछे हटना पड़ा। इस युद्ध में टामस के 440 आदमी मारे गए लेकिन जींद से कुछ दूर जाने के बाद टामस ने अपनी सेनाओं को दोबारा संगठित किया। फिर अचानक जींद नरेश पर आक्रमण करके उसे हरा दिया। इस प्रकार टामस का जींद पर कब्जा हो गया।

अन्य सिख सरदार इस समय राजा भाग सिंह की सहायता नहीं कर सकते थे। क्योंकि वह स्वयं पंजाब पर शाह जमान के आक्रमण के कारण अपना अस्तित्व बचाने में लगे हुए थे। यहां तक कि पटियाला का राजा साहीब सिंह जो कि जींद के राजा का रिश्तेदार था ने भी सहायता देने में अपनी असमर्थता प्रकट कर दी। किंतु उसकी वीर बहन बीबी साहिब कौर को यह अच्छा नहीं लगा और वह स्वयं सेना लेकर राजा भाग सिंह की सहायता के लिए रवाना हो गई। ज्यों ही बीबी की सेना टामस

की सेना के नजदीक पहुंची तो टामस ने उस पर आक्रमण कर दिया। टामस की सेना का प्रहार इतना प्रबल था कि बीबी को पीछे हटना पड़ा। इससे विवश होकर पटियाला के राजा को युद्ध में कूदना पड़ा। इसी समय नाभा के राजा जसवंत सिंह की सेनाएं भी जींद पहुंच गई। बीबी साहिब कौर ने सिख सेनाओं को फिर इकट्ठा किया और 9,000 सैनिकों के साथ फिर आगे बढ़ी। वह शीघ्र ही टामस की दो चौकियों पर कब्जा करने में सफल हो गई। इस युद्ध में टामस के काफी सैनिक मारे गए। अतः विवश होकर फरवरी 1799 में टामस को जींद छोड़ना पड़ा और हाँसी को वापस चल पड़ा।

सिखों ने लौटते हुए टामस का पीछा किया। नारनोद के स्थान पर टामस ने पीछे मुड़कर उन पर अचानक आक्रमण कर दिया सिख इस अचानक हमले के लिए तैयार नहीं थे। वे टामस के सामने ठहर नहीं सके और वे पीछे भाग खड़े हुए। उनके 200 घोड़े, कई हाथी, टेंट तथा अन्य सामान टामस के हाथ लगा, सिख तुरंत जींद वापस चले गए। किंतु शहर के दरवाजे बीवी साहिब कौर ने बंद करवा दिए और उनको बुज दिल कहकर ताने दिए। वह लड़ने के लिए स्वयं तैयार हुई और फौजों को वापस कुच करवा दिया। दूसरी तरफ इस समय जार्ज टामस भी लड़ाई से तंग आ गया था, अतः उसने अपने दिवान उदयचंद के द्वारा संधि करने की बात चलाई। यह तय हुआ कि दोनों पार्टियां अपनी उन सीमाओं में रहे जो उनकी पहले थी। पटियाला के राजा साहीब सिंह ने इस संधि को मानने से इंकार कर दिया लेकिन बीबी साहीब कौर ने अपने भाई के मना करने पर भी संधि पर हस्ताक्षर कर दिए। पटियाला के राजा ने क्रोध में आकर अपनी बहन को कैद में डाल दिया।

टामस को इस बात का पता चला तो वह एक वीर स्त्री का अपमान सहन नहीं कर सका और उसने जनवरी 1800 में पटियाला पर आक्रमण कर दिया। टामस ने वहां काफी लूटमार की। इसके पश्चात उसने सिरसा पर आक्रमण किया। सिरसा का दुर्ग भट्टी मुसलमानों के हाथ में था। यहां भी टामस की विजय हुई और यहां भी उसने लूटमार की। इसी समय जींद के राजा ने दौलत राव सिंधिया के फ्रैंच जनरल पैरो जो कि मराठों का उत्तरी भारत में प्रधान सेनापति था, को रुपये देकर अपनी और कर लिया। फ्रैंच जनरल भी टामस का विनाश चाहता था। उसने दूसरे सिख सरदारों को भी टामस के विरुद्ध इकट्ठा करके एक संघ बना लिया।

जनवरी 1801 में पैरो ने जार्ज टामस पर आक्रमण कर दिया। उसके पास इस समय पैदल सेना की दस बटालियने, 3,000 घुड़सवार और 500 रुहेले सैनिक थे। टामस उस समय जींद को लूटने में लगा हुआ था। वह लड़ा नहीं और पीछे हट गया। पैरो की सेना के एक भाग ने एल० एफ० स्मिथ और ई० फैलिक्स स्मिथ के नेत त्व में जार्ज गढ (आधुनिक जहाजगढ जिला झज्जर) को घेर लिया। यह गढ जार्ज टामस ने बनवाया था और अपने नाम पर इसका नाम रखा था। दुर्ग की रक्षा के लिए टामस ने हासी से कूच किया। 29 सितंबर को उसने पैरो पर आक्रमण करके उसे हरा दिया। दोनों स्मिथ बचकर भाग गए और दूसरे फ्रैंच जनरल बोगेन से जो उनकी सहायता के लिए आ रहा था जा मिले। टामस हाँसी लौटने के लिए रवाना हुआ परंतु बोगेन ने उसे रोक लिया। दोनों में जमकर युद्ध हुआ और दोनों ओर के 600 सैनिक मारे गए।

इसी दौरान सिख घुड़सवार बोगेन की सहायता के लिए आ गए। उन्होंने टामस को झज्जर दक्षिण की ओर दो मील की दूरी पर चारों तरफ से घेर लिया। जार्ज की सप्लाई लाइन कट गई और उसके खेमे में खाद्य सामग्री का अभाव हो उठा। आटा एक रुपये का आठ सेर बिकने लगा और उसके बहुत से सैनिक उसका साथ छोड़कर भाग गए। किंतु वह फिर भी बहादुरी के साथ डटा रहा। जब उसने देखा कि स्थिति संभल नहीं सकती तो वह कुछ विश्वस्त सरदारों के साथ 10 नवंबर की रात को अपने खेमे से निकल पड़ा। उसके साथ केवल घुड़सवार थे उसका तोपखाना व अन्य सामान शत्रु के हाथ पड़ गया।

बोगेन ने उसका पीछा किया और उसे हासी में घेर लिया। अब टामस के पास ना तो धन था ना कोई स्वामी भक्त साथी। परिस्थितियों से दबकर अंत में उसने 23 सितंबर 1801 को बोगेन के सामने आत्मसमर्पण कर दिया। उसके राज्य पर अधिकार करने बोगेन उसे ब्रिटिश भारत जाने की इजाजत दे दी। वह जनवरी 1802 में अनूप शहर चला गया। वर्षा ऋतु में वह स्वदेश लौटने के लिए रवाना हुआ किंतु बंगाल में बहराम पुर के स्थान पर 22 अगस्त 1802 को उसकी म त्यु हो गई।

अध्याय-9

हरियाणा में सामाजिक व धार्मिक आंदोलन

(Socio-Religious Movements in Haryana)

आर्य समाज

आर्य समाज के प्रवर्तक स्वामी दयानंद थे। उन्होंने इस संस्था की स्थापना हिंदू समाज में फैली कुरीतियों को दूर करने तथा एक स्वस्थ समाज के निर्माण हेतू 10 अप्रैल 1875 को बम्बई में की थी। स्वामी जी संस्क त के उच्चकोटि के विद्वान थे। उनका वेद शास्त्रों का अध्ययन भी अद्वितीय था। वे एक महान देशभक्त थे और भारत को स्वतंत्र देखना चाहते थे। उन्होंने अपने प्रसिद्ध ग्रंथ 'सत्यार्थ प्रकाश' में देशवासियों को सबसे पहले स्वराज का नारा दिया। उनका कहना था कि विदेशी राज्य कितना ही अच्छा हो स्वराज्य की बराबरी नहीं कर सकता। अपने एक अन्य ग्रंथ "आर्य भिविनय" में उन्होंने अपने अनुयायियों से कहा कि प्रत्येक आर्य का कर्तव्य है कि अपने देश के उत्थान के लिए और स्वराज के लिए प्रयत्न करे।

स्वामी जी पहली बार पंजाब से आते हुए हरियाणा के शहर अंबाला में 17 जुलाई 1878 को आए। इस स्थान पर स्वामी जी को रेलगाड़ी बदलने के लिए ठहरना पड़ा था क्योंकि यहां से उन्हें रूड़की जाना था। लेकिन स्वामी जी का सही मायने में आगमन 1880 ई० में हुआ, जब स्वामी जी ने हरियाणा की प्रसिद्ध नगरी रेवाड़ी में आकर ठहरे। यहां पर स्वामी जी ने छोटे तालाब पर रेलवे स्टेशन के समीप राव मानसिंह की छतरियों के बीच बैठकर उपदेश देना आरंभ किया। स्वामी जी के उपदेश का विषय आठ गप्पो का खण्डन था। इन आठ गप्पो में अट्ठारह पुराण, मूर्तिपूजा, संप्रदाय, तंत्र ग्रंथ और वाग मार्ग, मद्य और मादक द्रव्यों का प्रयोग, पर स्त्रीगमन, चोरी, छल, झूठ आदि का खण्डन होता था। उन्होंने रेवाड़ी में आर्य समाज की एक शाखा भी स्थापित की। और थोड़े समय पश्चात रोहतक तथा हरियाणा के अन्य भागों में भी आर्य समाज की शाखाएं स्थापित हो गई।

हरियाणा क्षेत्र में आर्य समाज के शीघ्र फैलाव के कारण

सर्वप्रथम हरियाणा प्रदेश में बड़े-बड़े नगरों का अभाव था। इसके कारण यहां की ग्रामीण जनता प्राचीन आर्य मर्यादाओं को ही मानने वाली रही थी। उनके खानापान में स्वभावतः ही मांस का अभाव रहा। अतः आर्य समाज का मांस न खाने का प्रचार उनके स्वभाव के अनुकूल पड़ता था। दूसरे हरियाणा में जाट व ब्राह्मण दोनों की खेती करते थे। उनमें विद्या का भी अभाव था इसलिए दोनों की समान रूप से धर्म के विषय में बहुत अधिक रूढ़ीवादी नहीं थे।

तीसरा कारण था कि यहां की ग्रामीण जनता का विशेष रूप से सदियों से गौ से संबंध रहा है और आर्य समाज के पर्वतक महर्षि दयानंद ने "गौ करुणा निधि" लिखकर गोधन की उपदेयता को प्रमाणित किया है। इससे यहां के लोग आर्य समाज की और उन्मुख हुए।

चौथे हरियाणा की क षक जातियों में जाटों का स्थान प्रमुख है। स्वामी दयानंद जी की 'सत्यार्थ प्रकाश' के ग्यारहवें समुल्लास में दी गई 'जाट की कहानी' का प्रभाव यहां के लोगों पर विशेषकर जाटों पर पड़ा तथा वे सभी आर्य समाजी हो गए। सत्यार्थ प्रकाश की इस कथा ने उन्हें जागरूक बनाया। वैतरणी पार करने की झूठी आशा को त्यागकर वे पोप पंथी ब्राह्मणों की बातों पर अविश्वास करने लगे।

पांचवां कारण यह था कि वैदिक साहित्य के प्रमाणों के आधार पर हरियाणा ब्राह्मण काल से लेकर महाभारत काल तक एक यज्ञीय प्रदेश रहा। इस प्रदेश में वेदों के अध्ययन और अध्यापन की परंपराएं प्राचीन थी। अतः आर्य समाज में वैदिक मान्यताओं की पुष्टि देखकर यहां के निवासी स्वतः ही उसकी ओर उन्मुख हो गए।

छठा हरियाणा में आर्य समाज के शीघ्र प्रसार का एक कारण सामाजिक स्थिति में परिवर्तन था। भारतीय समाज में एक समय ऐसा भी था जब खेतीदार जातियों (जाट, अहीर, सैनी, गुजर आदि) को शुद्रों के समकक्ष रखा जाता था। इन जातियों को द्विजो से बहार रखने के अनेक कारण हो सकते हैं। परंतु इसका प्रबल कारण धार्मिक माना जाता है। धर्म के नाम पर जिस आध ाार की व्याख्या ब्राह्मण लोग करते थे इस आचार के विपरित क षकों का आचरण था। ब्राह्मण धर्म के अनुसार द्विजो को शुद्रो से व्यवहार आदि करते समय सदा दूर ही रहना चाहिए। परंतु क षि परक जीवन व्यतीत करने वाले (जाट, अहीर, सैनी और गुजर) के लिए शुद्रों से दूर रहना नितांत कठिन था क्योंकि खेती कार्य में शुद्र कहलाने वाली जातियां ही तो उनकी परम सहायक रही। अतः शुद्र जातियों से उनका निकट का संबंध था।

सामाजिक जीवन की ऐसी विकट स्थिति में स्वामी दयानंद और उसके द्वारा स्थापित आर्य समाज ने क षि प्रधान जातियों को यज्ञोपवित प्रदान करने उन्हें द्विजो के समकक्ष कर दिया। उन्हें ब्राह्मणों की ही भांति यज्ञादि करने, वेद विद्या पढ़ने का अधिकार दे दिया इसका परिणाम यह हुआ कि हरियाणा की क षि पदक जनता बहुसंख्या में आर्य समाज की ओर झुक गई, उन्हें जहां ब्राह्मणों के शोषण से युक्ति मिली वहां आर्य समाज से उन्हें सामाजिक प्रतिष्ठा भी मिली।

इस प्रकार सामाजिक समानता भाईचारे, जाति प्रथा में विश्वास व अतित कि मान्यताओं में द ढ़ विश्वास के कारण आर्य समाज हरियाणा में शीघ्रता से फैला और यह एक प्रमुख धार्मिक एवं सामाजिक सुधार आंदोलन बन गया।

हरियाणा में आर्य समाज के प्रचार में प्रमुख व्यक्तियों का योगदान

प्रारंभिक अवस्था में हरियाणा में आर्य समाज के प्रचार का श्रेय कुछ प्रमुख हस्तियों को जाता है। इनमें सर्वप्रथम पंडित बस्तीराम का नाम आता है। पं० बस्तीराम का जन्म जिला रोहतक की झज्जर तहसील के ग्राम सुल्तान पुर खेडी में सन् 1841 ई० में एक ब्राह्मण परिवार में हुआ था। परिवार जन्म संस्कारों से पोषित होकर पं० बस्ती राम पुरोहित का कार्य करने लगे। लेकिन स्वामी दयानंद से पहले हरिद्वार और फिर रेवाड़ी में मुलाकात और तर्क के बाद ये आर्य समाजी बन गए। उनका कण्ठ मध ुर था। वे इकतारा लेकर गाते हुए आर्य समाज का प्रचार करते थे। उनके प्रयासों से आर्य समाज का प्रचार करते थे। उनके प्रयासों से आर्य समाज रोहतक तथा झज्जर जिलों में फैला। रेवाड़ी में आर्य समाज के प्रचार का श्रेय राव युधिष्ठर को जाता है।

लेकिन हरियाणा में आर्य समाज की स्थापना के प्रारंभिक वर्षो में जिस व्यक्ति का सबसे ज्यादा प्रभाव पड़ा वे थे लाला लाजपत राय। वैसे तो वे पंजाब के रहने वाले थे लेकिन हरियाणा से उनका तीन प्रकार से संबंध रहा है। प्रथम प्रकार के संबंध में उनका विवाह आता है। वह हिसार के एक अग्रवाल परिवार की कन्या से विवाहित थे। दूसरा संबंध उनके पिताजी के माध्यम से है। सन् 1884 में उनके पिता रोहतक में अध्यापक थे। तीसरे लालाजी ने अपनी वकालत की शुरूआत हिसार से की थी।

लाला लाजपत राय का जन्म सन् 1865 ई० में पंजाब में जगराव के स्थान पर हुआ था। पर उनका सार्वजनिक जीवन हरियाणा से ही शुरू हुआ। यहीं उन्होंने राष्ट्रीयता का प्रथम पाठ सीखा और परिपक्वता प्राप्त की। यहां वे 1884 में आये थे। उनका प्रथम निवास स्थान रोहतक बना, जहां उनके पिता सरकारी स्कूल में अध्यापक थे। रोहतक में आर्य समाज की स्थापना तो उनके आने से पूर्व ही हो गई थी किंतु यहां कार्य नहीं के बराबर हो रहा था। लालाजी ने समाज का मंत्री बनकर समाज में नए प्राण फूंके। चौ० पीरुमल, चौ० मातुराम, चौ० रणपत सिंह आदि स्थानीय नेताओं ने इस कार्य में उनका साथ दिया। उनके प्रयासों से आर्य समाज के प्रचारक दूर-दूर तक गांव में जाकर सामाजिक कुरीतियों के विरुद्ध प्रचार करने लगे। उन्होंने आर्य समाज के प्रचार के साथ-साथ देशभक्ति के मनोहर व्याख्यान देकर यहां राजनैतिक एवं सामाजिक जागरण के लिए प ष्ठभूमि तैयार की। शीघ्र ही रोहतक जिले के लोगों में विशेषकर जाटों में नव जागरण के लक्षण दिखाई देने लगे।

सन् 1886 ई० में लाला लाजपत राय हिसार चले गए और वकील के रूप में कार्य करने लगे। वहां पहुंचते ही उन्होंने आर्य समाज की स्थापना की। इस कार्य में लखपत राय, चुड़ामणी वकील और सेठ चंदूलाल व हीरालाल ने उनको बहुत सहयोग दिया। हिसार की जनता में लालाजी के प्रयासों से सामाजिक व राजनैतिक चेतना आई। हिसार में आर्य समाज के प्रधान लाला चंदूलाल थे। लाला लाजपत राय के शब्दों में "चंदूलाल ऊंचे दर्जे का परोपकारी व्यक्ति था। रात और दिन वह दूसरों की सेवा में सदैव तत्पर रहता था। यह मेरा विश्वास है कि चंदूलाल अधिक शिक्षित होता तो वह इस देश के महान नेताओं की श्रेणी में बैठता। वस्तुतः अपने क्षेत्र का वह सर्वाधिक सम्मानित व्यक्ति था।"

परंतु हिसार और रोहतक के देहात में आर्य समाज के प्रचार का श्रेय डॉ० रामजीलाल को जाता है। डॉ० रामजीलाल का जन्म रोहतक जिले के साघी ग्राम में एक जाट घराने में हुआ। परंतु उन्होंने हिसार में सेवा की तथा आर्य समाज को अधिक लोकप्रिय बनाया। उनका ग्रामीण क्षेत्र में विशेषकर जाटों में बहुत प्रभाव था। लाला लाजपत राय के शब्दों में "वह अपनी जाति में अद्वितीय थे। मैंने अपने जीवन में इंग्लिश जानने वाला ऐसा भारतीय नहीं देखा जैसे डॉ० रामजीलाल थे। जो कि अपनी अशिक्षित जाति के लोगों से बिना किसी भेदभाव के मिलते थे। उनका घर हिसार में जाट धर्मशाला के रूप में था।"

हिसार व रोहतक के अतिरिक्त आर्य समाज का प्रचार अन्य जिलों में भी हुआ। अंबाला, करनाल तथा गुड़गावां के शहरों और अन्य कस्बें में शताब्दी के अंत तक आर्य समाज के केंद्र स्थापित हो चुके थे। 1901 की सैसंश रिपोर्ट के अनुसार "अंबाला शहर में हिंदूओं की एक ही धार्मिक संस्था है जिसका नाम आर्य समाज है। इसके अधिकतर सदस्य अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त है।" इसी प्रकार गुड़गावां को डिप्टी कमिश्नर ने अपनी रिपोर्ट में लिखा है कि "आर्य समाज के अलावा यहां पर और कोई धार्मिक संस्था नहीं है। पिछले दस सालों से केवल यही धार्मिक आंदोलन फैल रहा है। बहुत से अहीर आर्य समाज के सिद्धांतों का पालन करते हैं।"

आर्य समाज और ब्रिटिश राज

यद्यपि आर्य समाज ने अंग्रेजी राज के विरुद्ध कोई सीधा वैधानिक आंदोलन नहीं चलाया। लेकिन स्वामी दयानंद की पुस्तक "सत्यार्थ प्रकाश" में की गई स्वराज्य की महिमा और इसके सदस्यों द्वारा भारत के राष्ट्रीय आंदोलनों में भाग लेने के कारण अंग्रेज शासक आर्य समाज को एक राजनैतिक दल समझने लगे। इसका परिणाम यह हुआ कि आर्य समाज के सामाजिक कार्यकर्ता भी भयंकर विद्रोही के रूप में देखे जाने लगे। पंजाब के अंग्रेज अधिकारियों द्वारा जो ब्रिटिश सरकार रिपोर्ट भेजी गई उनमें आर्य समाज को बलात राजनैतिक सिद्ध करने का प्रयास किया गया है। मि० सी० जे० स्टेवनशन मोरे की रिपोर्ट को आधार मानकर सरकार ने आर्य समाज को राजनैतिक दल सिद्ध करने में निम्न कारण दिए।

1. रावलपिण्डी के सन् 1907 के दंगों में अग्रगण्य नेता आर्य समाजी थे। मि० डेनजिल इब्सटन ने "पंजाब अनरेस्ट" कि रिपोर्ट देते हुए समय लिखा कि "आर्य समाज राजद्रोह का केंद्र है।"
2. सन् 1857 में पंजाब के लेफ्टिनेंट गर्वनर ने लार्ड एलगिन को एक पत्र लिखा, जिसमें कहा गया था कि समाचार पत्र के अतिरिक्त एक अन्य इकाई आर्य समाज भी है जो लोगों को सरकार के विरुद्ध भड़काती है।
3. दयानंद भारत को पुनः आर्यव्रत बनाना चाहता था। उसके होठों पर देश भक्ति और राष्ट्रीयता के शब्द रहते थे। उसने एक बार पादरी को कहा कि आर्यो के पतन के समान तुम्हारे पतन के दिन आ रहे हैं।

उपर्युक्त कारणों के अतिरिक्त सी० आई० डी० की रिपोर्ट भी आर्य समाजियों की गतिविधियों को भी राजनैतिक सिद्ध करने पर तुली हुई थी। यद्यपि महात्मा मुंसी राम व लाला हंसराज ने यह सिद्ध करने का प्रयास किया कि आर्य समाज राजनैतिक संस्था नहीं है। तथापि अंग्रेजी सरकार ने इस बात को स्वीकार नहीं किया और इनका दमन चक्र पंजाब हरियाणा के आर्य समाजियों पर चलता रहा। वे समझते थे आर्य समाज के सिद्धांत भारत में अंग्रेजी शासन व्यवस्था की चूल हिलाने वाले हैं। आर्य समाज का अपने पूर्वजों के प्रति प्रेमभाव दिखलाना ही अंग्रेजों को भारत से बाहर करने का सरल उपाय है। यद्यपि वे वैद्यानिक रूप से कोई राजनैतिक आंदोलन नहीं चलाते पर वे राष्ट्र प्रेम की शिक्षा देते हैं।

इन्हीं सब बातों के कारण तत्कालीन भारत के शासकों ने पंजाब व हरियाणा में आर्य समाज से संबंधित व्यक्तियों को परेशान करना शुरू कर दिया। उन्होंने आर्य समाज से संबंधित पुस्तकों को और पत्र पत्रिकाओं को जब्त करने व जलाने का कार्य किया। इस प्रकार की कुछ घटनाओं के विवरण निम्न है।

1. सन् 1889 में लाहौर सेंट्रल ट्रेनिंग कॉलेज से सर जेम्स लायल की आज्ञा से छः विद्यार्थियों को कॉलेज से निकाल दिया गया। इन विद्यार्थियों पर आर्य पत्रिका प्रकाशित करने का आरोप लगाया गया।
2. इसी वर्ष कॉलेज के तीन अन्य विद्यार्थियों को निकाला गया जिन्होंने एक पत्रिका प्रकाशित की थी जिसमें स्वामी दयानंद के यजुर्वेद भाष्य की महत्ता सिद्ध करने का प्रयास किया था।
3. पानीपत के तीन जैलदारों ने महात्मा मुंसी राम (स्वामी श्रद्धानंद) को अपनी डायरी दिखाई जिसमें लिखा था कि

जैलदार बहुत अच्छा है परंतु वह आर्य समाजी है इसलिए उस पर नजर रखी जाए।

4. अंग्रेज सरकार का दसवीं जाट पलटन के प्रति भी आर्य समाज के कारण कड़ा बर्ताव रहा। 10वीं जाट पलटन में जिला हिसार तथा रोहतक के जाट अधिक थे। विशेषत ई कंपनी तो सारी की सारी इनकी थी। जाट सैनिक लगभग सब के सब आर्य समाजी थे और उनके हृदयों में स्वाभिमान था और राष्ट्र प्रेम में गहरी आस्था थी। स्वामी दयानंद के ग्रंथ सत्यार्थ प्रकाश ने उनमें यह भावनाएं और भी तीव्र कर दी। इसके अलावा यहां "जाट समाचार", "जाट हितकारी" तथा "केसरी" सरीखे समाचार पत्रों से क्रांति की प ष्ठभूमि पूरी तरह तैयार हो रही थी। 1898 में इस पलटन में आर्य समाज का निर्माण भी हो गया था, जिसके तत्वाधान में हर ईतवार हो भाषण होते थे। इन भाषणों में अप्रत्यक्ष रूप में राजनैतिक पुट भी रहता था। यद्यपि ये धार्मिक रूप धारण किए रहते थे। इसी कारण कर्नल हण्टर ने चार जाट सैनिकों को रेजीमेंट से बाहर निकाल दिया और उनकी किताबें जला दी।

कानपुर में जब सन् 1908 में उक्त पलटन के बहुत से सैनिक, लाला लाजपत राय का भाषण सुनने गए तो जब कमाडिंग अफसर को इस बात का पता चला तो उसने नोन कंडीशंड अफसर को दण्ड दिया जिसकी पलटन के ये सैनिक थे। इसके बाद यह कंपनी अलीपुर चली गई और आर्य समाजी सैनिकों की मीटिंग तथा गतिविधियां बढ़ती गई। इसी कंपनी के अधिकारियों सुबेदार हरिनाम, नायक जोतराम, और सिपाही जोग को दण्ड दिया गया।

जब पलटन उन्हीं दिनों ट्रेनिंग के लिए मिदनापुर गई तो कितने ही जाट सैनिक शहीद खुदीराम बोस के घर को पवित्र मंदिर समझ कर वहां गए और उस वीर क्रांतिकारी को उन्होंने श्रद्धाजंलि अर्पित की।

इसके बाद से अधिकारी आर्य समाज की गतिविधियों पर विशेष रूप से निगरानी रखने लगे और उन्होंने हिसार तथा रोहतक जिलों में "सिडिसियस मीटिंग एक्ट" लागू कर दिया और निर्णय लिया कि आर्य समाजी जाटों को सेना में भर्ती न किया जाए। परंतु केयर हार्डी ने लंदन पार्लियामेंट में प्रश्न पूछा कि क्या हिसार और रोहतक में अराजकता और राजद्रोह की ऐसी स्थिति पहुंच गई है कि वहां "सिडिसियस मीटिंग एक्ट" लागू करने की आवश्यकता पड़ी। उसका परिणाम यह हुआ कि भारत की अंग्रेज सरकार को पुनः अपने निर्णय पर विचार करना पड़ा कि हिसार और रोहतक का आर्य समाजी जाट सेना में भर्ती हो सकता है। परंतु उसे जाट पलटन में भर्ती नहीं किया जाएगा। इसी प्रकार ये देखते हैं कि ब्रिटिश सरकार की द ष्टि में आर्य समाजी होना विद्रोही होना था।

आर्य समाज का योगदान

हरियाणा में आर्य समाज एक महत्वपूर्ण सामाजिक व धार्मिक आंदोलन के रूप में उभरकर सामने आया। आर्य समाज ने समाज में फैली बहुत सी कुरीतियों को दूर किया जिसमें मूर्ति पूजा, मद्य और माद्यक द्रव्यों का प्रयोग, तंत्र मंत्र और जादू टोना, चोरी व छल कपट आदि प्रमुख हैं। आर्य समाज ने सामाजिक समानता पर जोर तथा जाति पाति का खण्डन किया। आर्य समाज ने विवाह शादियों में होने वाले व्यर्थ खर्च को कम करने पर जोर दिया। इसी के प्रभाव थे कि जाट लोग सादा जीवन व्यतीत करने लगे। आर्य समाज ने भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन में बढ़ चढ़ कर भाग लिया। आर्य समाज के सिद्धांतों में विश्वास रखने वाले लोगों में स्वराज्य और स्वदेशी की भावना कूट-कूट कर भरी हुई थी। इन लोगों ने स्वदेशी व बायकाट आंदोलन में बढ़ चढ़ कर भाग लिया।

सनातन धर्म सभा

आर्य समाज के आंदोलन से प्रभावित होकर हरियाणा के रूढ़िवादी हिंदुओं ने सनातन धर्म सभा का निर्माण किया। नए आंदोलन के नेता झज्जर के पं० दीन दयालु शर्मा व्याख्यान वाचस्पति थे। उनका जन्म हरियाणा के रोहतक जिले के झज्जर नामक कस्बे में मई 1863 में हुआ। उनके पिता गंगा सहाय उच्च कुल के गौड़ ब्राह्मण थे। वे फारसी के अच्छे कवि थे। इसलिए पंडित जी ने भी आरंभ में उर्दू और फारसी की उच्च दर्जे की शिक्षा प्राप्त की, फिर स्कूल में अंग्रेजी पढ़ी। पं० दीन दयालु जी में आरंभ से ही जनसेवा के संस्कार थे। उन्होंने झज्जर में "रिफा-ए-आम" नामक सोसायटी का गठन किया, जिसके हिंदू मुस्लिम सभी सदस्य थे। यहीं से उन्होंने "हरियाणा" नामक साप्ताहिक अखबार निकाला। इसके बाद आप व ंदावन चले गए। यहां के के० सी० घाट पर स्वामी नारायण नाम के एक साधु से मिले। बहुत दिन तक उसके पास रहने के बाद उनके शिष्य बन गए। पंडित

जी ने यहीं हिंदी व संस्क त का अध्ययन किया। बाद में उन्होंने मथुरा से "मथुरा" अखबार नामक उर्दू साप्ताहिक पत्र भी निकाला। सन् 1897 ई० में उन्होंने हरिद्वार में "भारत धर्म महामण्डल" की स्थापना की। इसके साथ ही उन्होंने हरियाणा में धर्म शिक्षा का आंदोलन आरंभ किया और झज्जर में पहली सनातन धर्म सभा बनाई।

झज्जर के बाद भिवानी सनातन धर्म सभा का केंद्र बना। भिवानी के बाद हिसार में भी 1891 में सनातन धर्म सभा का गठन हुआ। भिवानी और हिसार में पं० नेकी राम शर्मा सनातन धर्म सभा के मुख्य नेता थे। 1892 के अंत में करनाल में भी सभा का केंद्र बना। इसी वर्ष कुरुक्षेत्र में भी सभा स्थापित हुई। 1895 के आसपास सफीदो, रेवाड़ी, पलवल, कैथल, पानीपत, रोहतक बेरी और गुड़गावां में भी सभा बनी। रोहतक में अस्थल बोहर के महंत ने जिसका लोगों पर खूब प्रभाव था, इसका प्रचार किया। इसके पश्चात धीरे-धीरे हरियाणा के हर छोटे बड़े नगर और कई बड़े-बड़े गांव में भी सनातन धर्म की स्थापना हुई। जिसके माध्यम से सनातन धर्म का खूब प्रचार हुआ।

सनातन धर्म आंदोलन से हरियाणा की प्रजा का सनातन धर्म से जो विश्वास उठ गया था उसकी पुनः स्थापना हुई। इस सभा ने उस वर्ग में आधुनिक चेतना जगाई जो आर्य समाज से प्रभावित नहीं था। सभा ने स्थान-स्थान पर मंदिरों, गौ शालाओं और शिक्षा संस्थाओं की स्थापना की, जिसके माध्यम से सनातन धर्म का प्रचार हुआ। सभा के प्रयत्नों से, सामाजिक कुरीतियां भी दूर हुई। जैसे विवाह आदि में जो धन का अपव्यय होता था वह खत्म हो गया। तंबाकू व शराब आदि का निषेध, बाल विवाह पर रोक, आपस में प्रेम पूवर्क आदि का प्रचार हुआ और कुरीतियों काफी हद तक दूर हुई। सनातन धर्म के कई नेताओं ने राजनैतिक चेतना लाने का काफी प्रयास किया और वे काफी हद तक अपने कार्य में सफल भी हुए।

शिक्षा का विकास

शिक्षा के क्षेत्र में हरियाणा पिछड़ा क्षेत्र रहा है। यहां की अधिकतर जनसंख्या गांव में रहती थी, जिसका मुख्य धंधा खेती बाड़ी था। खेती भी प्राचीन तरीके से होती जिसमें श्रम की अधिक आवश्यकता थी। इसीलिए बच्चों को स्कूल नहीं भेजा जाता था। फिर भी 19वीं सदी के आरंभ में शिक्षा की परिभाषा व स्वरूप आजकल से भिन्न था। जो व्यक्ति अपने परंपरागत धंधें में दक्ष हों उसे ही शिक्षा माना जाता था अर्थात किसी ब्राह्मण के बच्चे के लिए शिक्षा का मतलब था थोड़ा बहुत धर्म ग्रंथ व संस्क त भाषा का ज्ञान। जिससे की वह कर्म काण्ड कर सके। व्यापारी के पुत्र के लिए थोड़ा बहुत हिसाब-किताब का ज्ञान और किसान के पुत्र के लिए क षि संबंधी जानकारी होना था। गांव में स्कूल भी नहीं होते थे। केवल बड़े-बड़े नगरों व शहरों में कुछ स्कूल मिलते थे लेकिन उनकी संख्या भी ज्यादा नहीं थी।

उन्नीसवीं सदी के आरंभ में स्कूलों की संख्या आदि के संबंध में हमें शार्प द्वारा संपादित "सरकारी रिकार्ड" से जानकारी प्राप्त होती है। उससे इस कथन की पुष्टि होती है। शार्प के अनुसार रोहतक हिसार व गुड़गावां जिलों में हिंदुओं के कुल 70 स्कूल थे। इनमें 886 विद्यार्थी, 70 अध्यापकों द्वारा शिक्षा प्राप्त करते थे। मुसलमानों के 27 स्कूल थे। इनमें 886 विद्यार्थी थे। दिल्ली जिले में 247 स्कूल थे जिनमें अधिकतर दिल्ली शहर में स्थित थे। पानीपत में पांच-छह स्कूल थे लेकिन इनमें छात्रों की संख्या बहुत कम थी। करनाल की आबादी यद्यपि 20,000 हजार थी किंतु वहां केवल एक स्कूल था।

इन स्कूलों को सरकार का कोई सहयोग नहीं मिलता था। यहां पर शिक्षा या तो मुफ्त दी जाती थी या इसका खर्च बच्चों को वहन करना पड़ता था। अध्यापक ज्यादातर ब्राह्मण या मौलवी होते थे जो स्कूल या तो किसी मंदिर, मस्जिद में या फिर अपने घरों में चलाते थे। अध्यापकों के पास किसी प्रकार की कोई व्यवसायिक ट्रेनिंग नहीं होती थी। उनके पास जो भी सीमित ज्ञान होता था वही वे विद्यार्थियों को देते थे। स्कूल में प्रवेश के लिए बच्चों की आयु भी निश्चित नहीं थी। ज्यादातर 6 से 15 साल के बच्चे स्कूल में दाखिला लेते थे। स्कूल का पाठ्यक्रम भी साधारण था तथा पढ़ाने की तरीके बड़े ही पुराने तथा अवैज्ञानिक थे। सब कुछ रट्टे और याद्दाश्त पर आधारित था।

1857 से पहले सरकार की नीति

1857 ई० के चार्टर एक्ट के आने से पहले सरकार ने शिक्षा के प्रति उदासीनता की नीति अपनाई हुई थी। लेकिन चार्टर एक्ट में शिक्षा के संबंध में नीति में परिवर्तन लाते हुए यह तय किया गया कि "हर वर्ष शिक्षा और साहित्य को बढ़ावा देने के लिए प्रबुद्ध भारतीयों को प्रोत्साहित करने के लिए और ब्रिटिश भारत के निवासियों में ज्ञान विज्ञान के प्रसार हेतू एक लाख रुपये का अनुदान अलग से रखा जाए।" लेकिन दुर्भाग्य से यह हिदायत सरकारी फाइलों में बंद होकर रह गई और इसे अमल में नहीं लाया जा सका।

लेकिन सरकार की बजाए कुछ सरकारी अफसरों ने अपनी मानवीय जिम्मेदारी समझते हुए इस दिशा में कुछ रचनात्मक कदम उठाए। हरियाणा में विलियम फ्रेजर जो यहां असिस्टेंट के पद पर कार्यरत था ने 1816 में सोनीपत परगने में दो गांवों में स्कूल खोले। इनमें प्रत्येक में 20 विद्यार्थी दाखिल हुए। 1820 में तीसरा व 1823 में चौथा स्कूल भी खोल दिया गया। इन स्कूलों को चलाने के लिए फ्रेजर ने एक बड़ा दिलचस्प प्रयास किया। वह प्रत्येक बच्चे को एक रुपया प्रतिमाह और उसे अभिभावकों को एक रुपया प्रतिमाह देता था ताकि वे अपने बच्चों को स्कूल भेजते रहें। ऐसा फ्रेजर को इसलिए करना पड़ता था क्योंकि फ्रेजर द्वारा खोले गए स्कूल देहात में थे और यहां पढ़ने आने वाले बच्चे किसानों के होते थे। किसानों को बच्चों को स्कूल भेजते समय उनके कार्य में हर्जा होता था अतः वह उन्हें समान्यतः स्कूल नहीं भेजते थे। इन स्कूलों में हिंदी उर्दू पढ़ना लिखना व हिसाब किताब सिखाया जाता था क्योंकि अंग्रेजी और विज्ञान की शिक्षा देने के लिए यहां साधन नहीं थे।

सरकार ने 1823 ई० में शिक्षा को नियंत्रित तथा बढ़ावा देने के लिए "जनरल कमेटी आफ पब्लिक इंस्ट्रक्शन" का गठन किया। फ्रेजर ने इस कमेटी से प्रार्थना की कि उनके स्कूलों को आर्थिक सहायता प्रदान की जाए ताकि गांव में भी अच्छी शिक्षा प्रदान की जाए। अपनी कार्य की विशेषता पर जोर देते हुए उसने लिखा "शहरों और कस्बों में स्कूल खोलना इतना महत्वपूर्ण नहीं है क्योंकि यहां के निवासी अधिकांशतः ऐसे हैं जो अपने बच्चों को शिक्षा देने का सामर्थ्य रखते हैं। परंतु गांव में गरीब किसान और जन साधारण के बच्चे साधनहीन हैं। उनकी सहायता करना निहायत जरूरी है। वे संख्या में भी अत्यधिक हैं और उन्हें शिक्षा से सही लाभ होगा।" लेकिन दुर्भाग्य से फ्रेजर की इस प्रार्थना को यह कहकर ठुकरा दिया गया कि यह हमारी नीति के विरूद्ध है और इस प्रकार धन की कमी के कारण फ्रेजर के ये स्कूल बंद हो गए। यहां प्रश्न ये उठता है कि सरकार की नीति भी साधन संपन्न वर्ग को ही शिक्षा देकर उन्नत बनाने की थी न कि गरीब वे जरूरतमंद को, क्योंकि ब्रिटिश साम्राज्यवाद की नींव भी इन्हीं धनी साधन संपन्न और सम्मानित वर्ग के कंधों पर टिकी हुई थी।

यद्यपि 1835 में मैकाले की अंग्रेजी शिक्षा पर जोर देने की योजना को क्रियान्वित किया गया और हरियाण प्रदेश को भी 1834 ई० में बंगाल से काटकर उत्तर पश्चिम सीमा प्रांत का हिस्सा बना दिया गया लेकिन दुर्भाग्य से यहां कि स्थिति में 1840 तक कोई परिवर्तन नहीं हुआ जबकि शिक्षा को केंद्रीय विषय की बजाए प्रांतीय विषय बना दिया गया। 1843 में जेम्स टामसन उत्तर पश्चिमी प्रांत के लेफ्टिनेंट गर्वनर बनकर आए जो इस पद पर 1853 ई० तक रहे। वे फ्रेजर की तरह सरकारी धन को उच्च वर्ग की शिक्षा के बजाए ग्रामीण वर्ग की शिक्षा पर खर्च करने के पक्षधर थे। उन्होंने कहा 'हमारी प्रजा का अधिकांश भाग खेतीहार है। वह सरकारी अफसरों, वकीलों, धनिक बनियों द्वारा अपनी अज्ञानता, असाक्षरता और भोलेपन के कारण ठगा जाता है। यदि किसान पढ़ लिख जाए तो कोई भी उसका शोषण नहीं कर पाएगा'। इस बात को ध्यान में रखते हुए उसने गांवों में सरकारी स्कूल खोलने के लिए भारत सरकार के पास एक विस्त त योजना भेजी। साथ ही उसने अपने अधिकारियों को हिदायत दी कि जो देशज स्कूल हैं उनकी ठीक प्रकार से देखभाल की जाए ताकि जनता को उसका अधिक से अधिक लाभ मिल सके। लेकिन एक बार फिर दुर्भाग्य से टामसन की सरकारी स्कूल खोलने की योजना को भारत सरकार ने नहीं माना। इस पर टामसन ने हार नहीं मानी। उसने सरकार को 12 नवंबर 1846 को एक अन्य योजना भेजी। इसके अनुसार प्रत्येक गांव जिसकी आबादी 200 घरों से अधिक थी, एक स्कूल खोला जाए। इसके लिए गांव वालों को 5 से 10 एकड़ भूमि मुफ्त में देने की सिफारिश थी। जिससे की स्कूल मास्टर का खर्च निकल सके। सरकार ने लेफ्टिनेंट गर्वनर की इस सिफारिश को भी अमान्य कर दिया।

दो बार सरकार को भेजी अपनी योजना के अस्वीक त होने के पश्चात भी टामसन ने हार नहीं मानी। 19 अप्रैल 1848 को उसने सरकार के सम्मुख एक नई योजना प्रस्तुत की इस योजना में हर तहसील में कम से कम एक सरकारी स्कूल खोलने का प्रस्ताव था साथ ही देशज स्कूल खोलने को ठीक प्रकार से निरीक्षण करने की व्यवस्था भी प्रस्तावित की गई थी। सौभाग्य से सरकार ने इस बार इस योजना को मान लिया लेकिन धन के अभाव में इसे तुरंत प्रभाव से लागू नहीं किया जा सका।

1854 में सरकार की नीति में एक महत्वपूर्ण परिवर्तन आया। इस वर्ष सर चार्ल्स वुड के डिस्पैच में धन की समस्या का कुछ समाधान हुआ। इस में यह भी प्रस्तावित हुआ की जो प्राइवेट संस्थाएं शिक्षा के प्रसार में लगी हुई हैं। उन्हें आर्थिक सहायता दी जाए और इस प्रकार काफी धन बच जाएगा उसे गांवों में शिक्षा के प्रसार पर खर्च कर सकते है। इस प्रकार इस बचे हुए धन से रोहतक तथा गुड़गावां में तहसीदारी स्कूल खोले गए। इसी समय कुछ कस्बा स्कूल भी खोले गए जैसे करनाल, रोहतक (1856) भिवानी, रिवाड़ी, अंबाला जगाधरी (1857)। इसी समय एक और योजना बनी जिसे हल्का बंदी स्कूल स्कीम कहते

हैं। इसके अनुसार प्रत्येक 10-20 गांवों के मध्य एक स्कूल खोलने की योजना थी। लेकिन इसी समय 1857 की क्रांति फूट पड़ी और सारी योजना ठप्प हो गई।

ऊपर दिए गये विवरण से स्पष्ट है कि 1857 की क्रांति से पहले हरियाणा प्रदेश में शिक्षा की दशा काफी शोचनीय थी। सरकार की नीति काफी उपेक्षापूर्ण की दुर्भाग्य से सरकार ने इस दिशा में जो भी कार्य किया वह भी संतोषजनक नहीं कहा जा सकता।

1858 ई० में हरियाणा का पंजाब का विलय कर दिया गया। इसके बाद स्थिति में थोड़ा बहुत परिवर्तन आया। पंजाब सरकार के शिक्षा विभाग ने शिक्षा के विकास के लिए हर छः मील के फासले पर एक सरकारी स्कूल खोलने की योजना बनाई। लेकिन आर्थिक साधनो की कमी के चलते योजना को पूरी तरह अमल में नहीं लाया जा सका। इस समय अधिकांश छात्र देशज स्कूलों में पढ़ते थे। सरकारी स्कूल बहुत ही कम थे जैसा कि इस तालिका से स्पष्ट है-

जिला	स्कूलों की संख्या	विद्यार्थियों की संख्या
दिल्ली	216	3304
गुड़गांव	55	659
करनाल	77	1042
रोहतक	99	1184
सिरसा	122	1014
अंबाला	138	2090

इस तालिका से स्पष्ट है कि इस समय स्कूल जाने योग्य बच्चों की संख्या का एक बहुत बड़ा भाग शिक्षा से वंचित रह जाता था। इसका एक बड़ा कारण सरकार की अवेहलना और गांव के लोग शिक्षा को फिजुल मानते थे। उनका विश्वास था कि शिक्षा से नहीं बल्कि मनुष्य भाग्य से ऊपर उठता है। लड़कियों की शिक्षा का तो और भी बुरा हाल था। 1870 के दशक में लड़कियों की शिक्षा के कुछ स्कूल खोले गए लेकिन छात्राओं के अभाव में वे धीरे-धीरे बंद हो गए। उदाहरण के लिए करनाल जिले में 1870 में दस स्कूल लड़कियों के लिए खोले गए जिनकी संख्या 1900 में चार रह गई।

बीसवीं शताब्दी में राजनैतिक नव जागरण और स्वतंत्रता आंदोलन की हवा चल पड़ी। अब लोगों ने शिक्षा के महत्व को पहचान लिया। साम्राज्यवादी सरकार को भी परिस्थितियों से मजबूर होकर अपनी नीति बदलनी पड़ी अब शिक्षा को प्रोत्साहन देना उनके लिए अनिवार्य हो गया सन् 1918 में शिक्षा के लिए एक विशेष पंचवर्षीय योजना बनाई गई। इस योजना का मुख्य उद्देश्य गांव में अधिक से अधिक प्राइमरी स्कूल खोलना था। अब हर उस जगह पर स्कूल हो सकता था जहां 50 छात्र हों। भारत सरकार अधिनियम 1919 के अनुसार पंजाब सरकार ने पंजाब प्राइमरी शिक्षा अधिनियम 7 पास करके प्रारंभिक शिक्षा की अनिवार्यता पर बल दिया। इस अधिनियम की मुख्य विशेषताएं निम्नलिखित थीं।

1. शिक्षा की अनिवार्यता स्थानीय प्रशासन के लिए ऐच्छिक रखी गई।
2. यह केवल 6 से 11 वर्ष तक के बच्चों पर लागू की गई।
3. यह स्कूल से दो मील क्षेत्र तक ही सीमित की गई।
4. यह शिक्षा निशुल्क की गई।

इस योजना की शुरूआत 1922 में रोहतक जिले से हुई। यहां 6 स्कूलों को इस कार्य के लिए चुना। इसके बाद अन्य जगहों पर भी इसे परीक्षण के तौर पर अपनाया गया।

1937 में पहली बार अन्य प्रांतों की तरह पंजाब में भी चुनाव हुए और एक उतरदायी सरकार बनी। इस सरकार ने प्राइमरी शिक्षा के विस्तार पर पूरा बल दिया। यह सरकार युनियनिस्ट पार्टी की थी जो ग्रामीण क्षेत्र का विशेष ध्यान रखती थी। इस सरकार ने अनेक स्कूल खोले। दिलचस्प बात यह है कि 1940 के बाद हरियाणा क्षेत्र में पंजाब से अधिक स्कूल खुले। 1937-38 में ही 1975 नए स्कूल खोले गए। 1940-41 में यह संख्या 1270 थी जबकि 1946-47 में 1498 थी। ये ज्यादातर स्कूल ग्रामीण क्षेत्र में खोले गए। क्योंकि शहरों में पहले ही काफी स्कूल थे।

उच्च शिक्षा

1927 से पहले हरियाणा में कोई कॉलेज नहीं था। यहां के जो विद्यार्थी उच्च शिक्षा लेना चाहता थे। वे या तो लाहौर या दिल्ली जाते थे। 1927 में रोहतक में पहला सरकारी कॉलेज खुला। इसमें भी इंटरमीडिएट तक की ही कक्षाओं का प्रबंध था। बीए की पूर्ण कक्षाओं का पहला कॉलेज एस० ए० जैन कॉलेज के नाम से 1938 में अंबाला में खुला। तीन वर्ष बाद रोहतक कॉलेज भी बीए स्तर का हो गया। 1944 में रोहतक में दूसरा प्राइवेट कॉलेज आल इण्डिया जाट दहीरोज मेमोरियल कॉलेज खुला। इसी वर्ष भिवानी में भी वैश्य कॉलेज खोला गया। 1945 में यादव महासभा द्वारा रिवाड़ी में अहीर कॉलेज खोला गया। 1946 में वैश्य समाज ने रोहतक का वैश्य कॉलेज बनवाया। इस प्रकार 1947 तक हरियाणा में कॉलेजों की संख्या 6 थी।

अध्याय-10

1857 की क्रांति

(Revolution of 1857)

ईस्ट इण्डिया कंपनी के भारत में दो प्रमुख कार्य थे साम्राज्य बढ़ाना और आर्थिक शोषण। अंग्रेज की धन लोलुपता की कोई सीमा नहीं थी। इस समस्त शोषण नीति से संचित प्रभाव से भारत में सभी वर्गो, रियासतो के राजाओं, सैनिको, जमींदारों, क षकों, मौलवियों, केवल नगरों में पाश्चात्य शिक्षा प्राप्त वर्ग जो अपनी जीविका के लिए कंपनी पर निर्भर थे, उनको छोड़कर शेष सभी पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा। भारतीयों को यह शेष समय पर अंग्रेजों के विरूद्ध विद्रोह के रूप में प्रकट होता रहा था। लेकिन धीरे-धीरे सुलगती हुई अग्नि 1857 में धधक उठी और अंग्रेजी साम्राज्य की जड़ों को हिला दिया। 1857 में भारत में एक भंयकर क्रांति फूट पड़ी। हरियाणा पर इस क्रांति का गहरा प्रभाव पड़ा क्योंकि यहां की जनता अंग्रेजी राज्य की नीतियों से पूर्णतया तथा असंतुष्ट थी।

हरियाणा में अंग्रेजों के प्रति असंतोष के कारण

हरियाणा में कंपनी की सरकार के प्रति गहरा असंतोष था। इस असंतोष के निम्नलिखित कारण थे-

1. **आर्थिक शोषण :** ब्रिटिश प्रशासन का आधार आर्थिक शोषण पर टिका था, जहां तक कंपनी प्रशासन और हरियाणा प्रदेश का संबंध है इस दिशा में किसी तरह का अपवाद न था। 1803 से लेकर 1857 तक कंपनी के अधिकारियों ने यहां की गरीब जनता का बुरी तरह से शोषण किया। हरियाणा एक ग्रामीण प्रदेश था। यहां की आर्थिक व्यवस्था का आधार यहां के ग्राम थे। जिनकी सबसे बड़ी संपत्ति उनकी जमीन, हल-बैल और छोटे-छोटे घरेलू उद्योग थे। कंपनी इन तीनों ही चीजों को अपने शोषण का शिकार बनाया। उन्होंने यहां के घरेलू उद्योगों का विनाश कर दिया और क षि कार्य को ठप्प कर दिया।

2. **भूमिकर की अधिकताः** हरियाणा एक क षि प्रधान प्रदेश था। कंपनी किसानों से इतना अधिक भूमिकर वसूल करती थी कि उनका आर्थिक ढ़ांचा बुरी तरह बिगड़ गया। के० सी० यादव के अनुसार- "ब्रिटिश द्वारा लागू की गई भू-कर व्यवस्था ने हरियाणा के किसानों को बर्बाद कर दिया। यह व्यवस्था लोगों की सहमति से लागू नहीं की जाती थी। जब सेटलमेण्ट लागू की जाती थी यदि गांव का मुखिया उसे स्वीकार नहीं करता था तो उसे जेल में ड़ाल दिया जाता था। गरीब किसान इस कर को दे नहीं पाता था इसलिए उसे मजबूरी में जेल जाना पड़ता था।" भूमिकर वसूल करने का समय भी बड़ा गलत था सरकारी कर्मचारी फसल कटने से पहले ही किसानों के पास पहुच जाते थे। वे कर इकट्ठा करते समय अधिक सख्ती का व्यवहार करते थे। परिणामतः कितने ही किसान जो कर नहीं दे पाते थे। डर के मारे गांव छोड़कर भाग जाते थे। तत्कालीन भूमिकर संबंधी सरकारी कागजातों में यह वाकयात अक्स दर्ज मिलते हैं "यह गांव पूर्णतया खाली हो गया अतः भूमि कर एकत्रित नहीं किया जा सकता।" इस गांव के आधे क षक गांव छोड़कर भाग गए।

3. **अकालों व महामारियों से तबाहीः** उन दिनों हरियाणा की क षि पूर्ण रूप से वर्षा पर निर्भर थी, जब भी वर्षा बहुत ही कम या बिल्कुल नहीं होती थी जो यहां अकाल पड़ जाता था। 1857 तक यहां पाचं छः बड़े अकाल पड़े जिससे यहां का जनजीवन तबाह हो गया। अकाल के समय लोगों को कोई सरकारी सहायता नहीं मिलती थी।

   अकालों के पश्चात, जबकि लोग पुष्ट आहार न पाने के कारण अधिक निर्बल हो जाते थे तो उन्हें कितने ही प्रकार

की बिमारियां धर दबोचती थी। ये बिमारियां अक्सर महामारियों का रूप धारण कर लेती थी। उदाहणार्थ 1841 में छूत की बीमारी से हरियाणा में हजारों नागरिक मर गए। इसी प्रकार 1843 ई० में एक दूसरी बीमारी का आक्रमण हुआ और इससे भी हजारों की संख्या में लोग मारे गए। इतनी भयंकर और घातक बिमारियों के समय में भी सरकार ने लोगों की कोई सहायता नहीं की। इससे लोगों की सरकार के प्रति नफरत बढ़ती गई। मौलाना फजले हक खैरावादी के शब्दो में "आर्थिक सकंट और महामारियों ने लोगों को अंग्रेजों का परम शत्रु बना दिया था। आधे पेट-लाचारी तथा बेबसी के हाथों परास्त, हरियाणावासी दिन रात शोषक सरकार को समाप्त करने की कामना करते थे।"

4. **ग्राम बिरादरियों और ग्राम पंचायतों का सर्वनाशः** हरियाणा में सदियों से ग्राम बिरादरियां बड़ी महत्वपूर्ण रही हैं। इनके द्वारा ग्रामवासी स्वेच्छा से अपना प्रशासन चलाते थे। लोग इन परंपरागत संस्थाओं की छाया में अपने आपको सुरक्षित व महफूज समझते थे। लेकिन अंग्रेजों ने इस संस्थाओं के अस्तित्व को नष्ट कर दिया जिसके परिणामस्वरूप लोग भयभीत हो उठे।

   ग्रामवासियों के साथ ही पंचायतों का अस्तित्व भी कंपनी ने मिटा दिया। इससे पूर्व ग्राम्य जीवन के हर क्षेत्र को ये पंचायते सुरक्षित रखती थी। इनके रहते ना तो कोई किसी के साथ अन्याय कर सकता था और ना ही कोई किसी का शोषण कर सकता था। दिल्ली के सिविल कमिश्नर टी० फोर्टेस्वन्यू के शब्दों में "ऐसा कोई अवसर उनके देखने में नहीं आया जबकि किसी एक शक्तिशाली ग्रामीण ने दूसरे पर आक्रमण करके उसके अधिकारों पर कब्जा कर लिया हो, या उसे गांवों से निकाल दिया हो। इसके प्रतिकूल यह देखने में आया है कि कठिनाई के समय में भाग्यहीन ग्रामीण व्यक्तियों की, चाहे वह विधवा हो या कोई बीमार, लोग पूरी सहायता करते हैं, उनका खेत बोने के लिए पशु, बीज, हल, पैसे आदि से सहायता करते हैं। ऐसा करके ये लोग संतुष्ट होते हैं।" यद्यपि अंग्रेज राज्य के आरंभ में मैटकाफ जैम रेजीडेण्ट पंचायतों को बहुत पसंद करते थे और उन्हें जीवित देखना चाहते थे परंतु बाद के ब्रिटिश शासन में लगान संबंधी महकमा कायम होने से तथा तहसील तथा जिला स्तर पर न्यायलयों की स्थापना से, इन पंचायतों का महत्व कम हो गया। इससे लोगों में असंतोष फैल गया। प्रसिद्ध इतिहासकार डॉ० आर० सी० दत्त ने इस विषय में ठीक कहा है- "ग्राम बिरादरीयों और ग्राम पंचायतों का गठन लोगों की जरूरत के अनुसार किया जाता था और लोग उनकी छत्रछाया में अपने आपको सुरक्षित और प्रसन्न महसूस करते थे। उनके विनाश से सामाजिक अस्थिरता आई और लोग असुरक्षा महसूस करने लगे।"

5. **उच्च पद न देनाः** अंग्रेजों ने हरियाणा में ही नहीं बल्कि सभी जगह भारतीयों को अयोग्य और अकुशल समझकर उच्च पदों से वंचित कर दिया था। उन्हें केवल छोटी-छोटी नौकरियां दी जा सकती थी। यद्यपि 1833 के चार्टर एक्ट में कहा गया था कि नौकरियां देते समय रंगभेद, जाति तथा धर्म नहीं देखा जाएगा बल्कि उसकी कसौटी योग्यता ही होगी, परंतु 1833 का एक्ट केवल कागजों पर बना रहा और उसे लागू नहीं किया गया।

6. **दोषपूर्ण न्याय प्रणालीः** अंग्रेजो की न्याय प्रणाली बड़ी दोषपूर्ण थी इसलिए जनता में प्रिय न हो सकी। न्यायलयों में मुकदमों के निर्णय में बहुत समय लगता था तथा इसके लिए उन्हें अधिक धन व्यय करना पड़ता था। ये न्यायलय धनवान व कपटी व्यक्तियों के हाथों में निर्धन जनता के शोषण का साधन बन गए थे, झूठे गवाह खरीदे जा सकते थे तथा झूठे दावे बनाने के लिए झूठे कागजात बनाए जा सकते थे। ये सब अंसतोष के गंभीर कारण बने।

7. **देसी राजा व नवाबों में असंतोषः** जन साधारण के अतिरिक्त समाज का उच्चवर्ग जिसमें यहां के राजा व नवाब सम्मलित थे ये भी अंग्रेजों के प्रति रुष्ट थे। लैप्स तथा विलय की नीतियों से यहां के शासक अपने अस्तित्व के बारे में सदैव चिंतित रहते थे। न जाने कब बच्चा न होने पर अथवा कंपनी के अधिकारियों के रुष्ट हो जाने पर वे राज्य से हाथ धो बैंठे। इसके अलावा कुछ ऐसे लोग भी थे जिनकी रियासते अंग्रेजों ने छीन ली थी और अब वे या तो पेंशन या छोटी सी इस्तेमरारी जागीर की आमदनी पर जीवन निर्वाह कर रहे थे। ये लोग सदैव अपने पुराने दिनों को याद करते थे और अंग्रेजों को अपना शत्रु समझते थे।

8. **सैनिकों में असंतोषः** सेना में देसी सैनिकों को यूरोपीय सैनिकों से हीन समझा जाता था। देसी सैनिकों के वेतन तथा भत्ते बहुत कम थे। उन्होंने सरकार से बहुत बार वेतन व द्धि के लिए अपीलें की किंतु सरकार ने उनकी एक न सुनी।

इसके अलावा सन् 1856 ई० में केनिंग सरकार ने सामान्य सेवा भर्ती अधिनियम पास किया जिसमें यह निश्चित किया गया कि आगे सब सैनिकों को यह लिख कर देना होगा कि सरकार उन्हें जहां युद्ध के लिए भेजेगी वे चले जाएंगे। यह भी असंतोष का कारण बना क्योंकि कट्टर हिंदू समुंद्र पार करना अपने धर्म के विरुद्ध मानते थे।

9. **तत्कालिन कारणः** सन् 1856 में सरकार ने पुरानी बंदूकों को एनफिल्ड राइफल से बदलने का निश्चय किया। एनफिल्ड राइफल के कारतूसों में गाय व सुअर की चर्बी लगी होती थी। कारतूसों को राइफलों में डालने से पहले उन्हें मुंह से काटना पड़ता था। जनवरी 1857 में बंगाल की सेना को इस तथ्य की खबर हो गई कि कारतूसों में गाय व सुअर की चर्बी लगी है। इस पर हिंदू व मुसलमान सैनिक भड़क उठे। उन्होंने यह सोच लिया कि चर्बी वाले कारतूस उनके धर्म को नष्ट करने के उद्देश्य से ही बनाए गए हैं अतः उन्होंने विद्रोह कर दिया।

अंबाला से क्रांति का प्रारंभ

10 मई 1857 को प्रातः अंबाला में विद्रोह का ज्वालामुखी फूट पड़ा। अंबाला उन दिनों एक महत्वपूर्ण सैनिक छावनी थी।यहां पंजाब व उत्तर पश्चिम प्रांत के सैनिकों को एनफिल्ड राइफलों के प्रयोग का प्रशिक्षण दिया जाता था। पहले अंबाला के सैनिकों ने शांतिपूर्ण ढंग से कारतूसों का विरोध किया परंतु जब उन्होंने देखा कि अंग्रेज अधिकारियों पर उनकी बात का कोई प्रभाव नहीं पड़ा तो उन्होंने 10 मई को विद्रोह की योजना बनाई। 10 मई 1857 को जब अंग्रेज लोग सुबह गिरजाघर में प्रार्थना के लिए जाएंगे तो दोनों देसी पलटने (60वीं और 5वीं) अपने-अपने शस्त्रागारों पर अधिकार कर लेंगी, घुड़सवार सेना का चौथा दस्ता तोपों पर कब्जा करेगा। इसके बाद ब्रिटिश राज्य के सभी अवशेषों को समाप्त करके सब लोग भारत की राजधानी दिल्ली में प्रवेश करेंगे।

10 मई को मेरठ में क्रांति होने से 9 घण्टे पहले अंबाला की 60वीं देसी पलटन ने बगावत कर दी। किंतु दुर्भाग्य से अंग्रेज अधिकारियों को अब तक इस योजना का पता लग चुका था और वे इस घटना से निबटने के लिए पूरी तरह तैयार थे। अतः देखते-देखते 60वीं पलटन अंग्रेजों ने पूरी तरह घेरे में ले ली। अब उनके सामने समझौता करने के सिवाए कोई चारा न था। अभी 60वीं भारतीय सेना अच्छी तरह शांत भी न हो पाई थी कि 5वीं भारतीय स्थल सेना ने दोपहर 12 बजे विद्रोह कर दिया। अंग्रेज पलटने को तो तैयार थे ही उन्होंने जल्दी से तोपखाने और टैंकों से विद्रोही पलटन के सैनिकों को घेर लिया। फलस्वरूप घिरी हुई पलटन को भी 60वीं पलटन की तरह समझौता करना पड़ा।

चूंकि अंग्रेज अधिकारी चौकस एवं सर्तक थे। अतः वे अंबाला में तो विद्रोह को दबाने में सफल हो गए किंतु उसी दिन लगभग 9 घण्टे बाद जो मेरठ में सिपाहियों ने विद्रोह किया उसे वे दबा नहीं सके। दूसरे दिन 11 मई को इस विद्रोह की आग की लपटें दिल्ली में पहुंच गई। मुगल बादशाह बहादुर शाह को क्रांतिकारियों ने अपना नेता मानकर भारत से अंग्रेजी राज्य की समाप्ति की घोषणा कर दी। देखते-देखते सारे उत्तरी भारत का वातावरण बिगड़ गया और बहुत समय से इकट्ठी हो रही असंतोष रूपी बारूद को सिपाहियों की विद्रोह की चिंगारी ने इतने भंयकर रूप से विस्फोटित किया कि ब्रिटिश साम्राज्य की नींव डगमगा गई।

जिला गुड़गावां में क्रांति

दिल्ली के 300 सैनिक 13 मई को गुड़गावां पर आक्रमण करने के लिए गए। विलियम फोर्ड क्लैकटर मजिस्टेट ने विद्रोहियों को गुड़गावां से 12 किलोमीटर दूर दिल्ली की तरफ बिजवासन के स्थान पर रोकना चाहा परंतु वह असफल रहा। दूसरे दिन सुबह गुड़गावां पर विद्रोहियों ने आक्रमण कर दिया। फोर्ड गुड़गावां छोड़कर भाग गया। विद्रोहियों को इस अभियान में 7,84,000 रुपये गुड़गावां के खजाने से हाथ लगे।

इन बातों की खबर मिलते ही गुड़गावां की जनता भी भड़क उठी। जिले के दक्षिण पश्चिम भाग में रहने वाले मेव लोग भारी संख्या में क्रांति में शामिल हो गए और उन्होंने समस्त मेवात इलाके से अंग्रेजों का राज्य समाप्त कर दिया। इसी प्रकार जिले के दक्षिण पश्चिम भाग में भी जो कि अहीरवाल के नाम से जाना जाता है। क्रांति की लपटे फूट पड़ी। इस क्षेत्र में क्रांतिकारियों का नेत त्व रेवाड़ी के राव तुलाराम और उसके भाई गोपाल देव ने किया। बल्लभगढ़ में क्रांतिकारियों का नेत त्व राजा नाहर सिंह ने किया।

गुड़गावां के क्रांतिकारियों को दबाने के लिए जयपुर राज्य के पॉलिटिकल एजेण्ट मेजर डब्ल्यू० एफ० एडेन के नेत त्व में एक विशाल सेना गुड़गावां भेजी गई। इस सेना की संख्या लगभग सात-आठ हजार थी। इसके साथ तोपखाने की भी एक टुकड़ी थी। मेजर एडेन ने मेवातियों को कुचलने के लिए भरकस प्रयत्न किए किंतु उसे संतोषजनक सफलता प्राप्त न हुई। सोहना और तावडू के बीच गांव-गांव में उसे वीर मेवातियों से भयंकर संघर्ष करना पड़ा। इस संघर्ष का परिणाम यह निकला कि बहुत से राजपूत सैनिक देशभक्त बन गए और एक उच्च अधिकारी ठाकुर शिवनाथ सिंह के नेत त्व में वे खुले विद्रोह के लिए तैयार हो गए। इस रात उन्होंने मेजर एडेन पर आक्रमण भी किया लेकिन वे असफल रहे। इससे डरकर मेजर एडेम मेवात को अपने हाल पर छोड़कर जयपुर वापस चला गया।

जिला रोहतक में क्रांति

रोहतक जिले में भी मई के तीसरे सप्ताह में क्रांति की आग भड़क उठी। यहां क्रांति का श्रीगणेश साहसी राधड़ो ने किया। इसके बाद जाट राजपूत व अन्य लोग इस संघर्ष में कूद पड़े और देखते ही देखते समस्त रोहतक जिला अंग्रेजी नियंत्रण से मुक्त हो गया। यहां की जनता ने बिना किसी झिझक के दिल्ली सम्राट बहादुर शाह को अपना नेता मान लिया और उसके झण्डे के नीचे संघर्ष जारी रखा। इतिहासकार कर्नल मालेसन को यह देखकर हैरानी हुई कि रोहतक जिलेमें छोटे-बड़े सभी की सहानुभूति मुगल सम्राट के साथ थी, यहां तक की जो लोग अंग्रेजो से लाभ उठा रहे थे वे भी उनके विरुद्ध खड़े हो गए थे।

दिल्ली और पंजाब के अंग्रेज अधिकारियों को इससे बहुत चिंता हुई। अतः स्थिति पर काबू पाने के लिए उन्होंने अंबाला की 60वीं भारतीय स्थल सेना को रोहतक भेजा लेकिन इस सेना ने बजाए विद्रोह को दबाने के 10 जून को स्वयं खुला विद्रोह कर दिया। रोहतक के अंग्रेज अधिकारी जान बचाकर भाग निकले और सब सैनिक दिल्ली चले गए। जुलाई और अगस्त में स्थिति और भी खराब हो गई। इससे निपटने के लिए अंग्रेजो ने लेफ्टिनेंट हडसन के नेत त्व में एक विशाल सेना भेजी। सर्वप्रथम खरखौंदा के स्थान पर सूबेदार विरासत अली के नेत त्व में क्रांतिकारियों ने अंग्रेजी सेना का डटकर मुकाबला किया। स्वयं हडसन ने भी इस तथ्य को स्वीकार किया है कि "रोहतक के ग्रामीण दानवों के समकक्ष लड़े" किंतु अंत में वे हार गए।

इस विजय से साहस पाकर हडसन ने रोहतक पर आक्रमण किया। यहां भी क्रांतिकारियों ने ब्रिटिश सेना का डटकर मुकाबला किया किंतु जींद आदि देसी राजाओं की सहायता आ जाने से हडसन का पलड़ा भारी रहा और वह क्रांतिकारियों को परास्त करने में सफल रहा। किंतु उसकी यह विजय किसी भी तरह निर्णायक नहीं कही जा सकती क्योंकि दिल्ली में स्थिति बिगड़ जाने के कारण वह क्रांतिकारियों को पूरी तरह दबाने से पूर्व ही वापस लौट गय। हडसन के लौट जाने के पश्चात क्रांतिकारी फिर सक्रिय हो उठे और उन्होंने जींद के राजा के इन अधिकारियों को जिन्हें हडसन लौटते समय इस क्षेत्र की व्यवस्था सौंप गया था भगा दिया।

जिला हिसार में क्रांति

हिसार जिले में क्रांति का श्रीगणेश मई के तीसरे सप्ताह में हिसार हाँसी और सिरसा में स्थित हरियाणा लाइट इंफेंटरी के सैनिक दस्तों ने किया। यहां की जनता ने भी हृदय से सैनिका का अनुशरण किया और शीघ्र ही सारे जिले में क्रांति भड़क उठी। हिसार जिले में क्रांतिकारियों का नेत त्व भट्टु के सहायक पेट्रोल अधिकारी शहजादा मुहमद आजिम ने किया। यह शहजादा दिल्ली के राजघराने से संबंधित था।

हिसार में क्रांतिकारियों की गतिविधियों से अंग्रेज अधिकारी चितिंत हो उठे। उन्होंने क्रांतिकारियों पर काबू पाने के लिए एक सेना फिरोजपुर के डिप्टी कमिश्नर, जनरल वान कोर्टलैण्ड के नेत त्व में भेजी। रानिया के नवाब नूर मोहमद खां ने अंग्रेजी सेना का डटकर मकाबला किया। 17 जून को उसने ओढ़ा नामक गांव में अंग्रेज सेना से भयंकर युद्ध किया। नवाब के सैनिक बड़े साहस से लड़े किंतु अंग्रेजी सेना की अधिक संख्या और अच्छे शस्त्र उसके साहस और शोर्य में कही भारी बैठे। 530 क्रांतिकारी युद्ध भूमि में शहीद हुए। अंततः युद्ध का परिणाम अंग्रेजो के हक में रहा। नवाब जान बचाकर भाग निकला किंतु लुधियाना के आसपास वह पकड़ा गया। अंग्रेजों ने उसे फांसी पर लटका दिया। 18 जून को अंग्रेज सेना ने चतरावन नामक गांव पर आक्रमण किया। इस गांव के निवासियों ने एक अंग्रेज अधिकारी हिलार्ड और उसके साले का कत्ल किया था। यह हमला अचानक हुआ था इसलिए ग्रामीण न तो शत्रु का विरोध कर सके और ना ही भाग सके। अंग्रेज गांव के सैकड़ों बूढ़े, बच्चे और जवानो को मौत के घाट उतार दिया और लूट खसौट के बाद घरों को आग लगा दी।

कार्टलेण्ड ने अगला आक्रमण खिरका गांव पर किया। इस आक्रमण की खबर गांववालों को पहले ही लग गई थी इसलिए वे शत्रु से दो-दो हाथ करने के लिए तैयार थे। गांव के बाहर ग्रामीणों और अंग्रेज सेना के जमकर युद्ध हुआ जिसमें 300 ग्रामीण मारे गए। इस प्रकार विजय अंग्रेजों को ही हुई। गांव को जलाकर राख कर दिया गया और अनेको लोगों को मौत के घाट उतार दिया।

8 अप्रैल को कोर्टलेण्ड हिसार की तरफ चला लेकिन रास्ते में उसे गांव में विरोध झेलना पड़ा। 17 जुलाई को कोर्टलेण्ड सेना सहित हिसार पहुंचा। उसने हिसार के बहुत से नागरिकों को केवल शक के आधार पर ही कत्ल करवा दिया, उसकी संपत्ति जब्त कर ली और घरों को जलाकर राख कर दिया गया। उसने शहजादा मुहमद आजिम का घर भी लूटकर नष्ट कर दिया और उसकी बेगम को बंदी बना लिया। किंतु इन कार्यवाहियों का क्रांतिकारियों पर कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ा। हासी के स्थान पर उन्होंने अपने को फिर से संगठित करके लड़ने की योजना बनाई। वान कोर्टलेण्ड के कप्तान हाइल्डवे के नेत त्व में एक सेना उनको परास्त करने के लिए भेजी किंतु यह सेना क्रांतिकारियों को परास्त करने में असफल रही। जब पराजय की सूचना कोर्टलेण्ड को मिली तो वह स्वयं हासी की तरफ बढ़ा। हासी के स्थान पर युद्ध हुआ जिसमें क्रांतिकारियों की हार हुई किंतु इन घटनाओं के बावजूद भी क्रांतिकारियों ने साहस नहीं छोड़ा और वे निरंतर संघर्ष करते रहे।

पानीपत तथा थानेसर में क्रांति

हरियाणा के अन्य भागों की तरह पानीपत और थानेसर के जिलों में क्रांति की ज्वाला भड़क उठी। यमुना के किनारे बसे गुजरों ने केथल, असन्ध, जलमाणा के जाटों ने कोल पीपली और अमीन के रोड़ो ने कुरुक्षेत्र के सैनिको ने और लाडवा के सिख और अन्य जातियों ने अंग्रेजों द्वारा स्थापित व्यवस्था को अपने क्षेत्रों में नष्ट कर दिया।

क्योंकि इन जिलों से होकर दिल्ली व पंजाब को जोड़ने वाली मुख्य सड़क गुजरती थी इसलिए अंग्रेज इसे किसी भी कीमत पर शत्रुओं के कब्जे में नहीं रहने देना चाहते थे। इसके लिए अंग्रेजों ने अपने स्वामी भक्त राजाओं से सहायता मांगी। पटियाला के राजा ने अंग्रेजो की सहायता के लिए 1,500 सैनिक और चार तोपें भेजी। इसी प्रकार जींद के राजा ने 400 सैनिक भेजे। कुजपुरा तथा करनाल के शासकों ने भी क्रमशः 350 और 150 सैनिकों से अंग्रेजों की सहायता की। लेकिन ये सैनिक सड़क को क्रांतिकारियों के कब्जे से छुड़वाने में असफल रहे। इसलिए मई के अंतिम दिनों में सड़क को नियंत्रण में करने के लिए दिल्ली से एक और सेना भेजनी पड़ी।

पानीपत के पास इस सेना की क्रांतिकारियों के साथ मुठभेड़ हुई। इस समकालीन लेखक ताजुदीन के अनुसार क्रांतिकारियों ने अंग्रेजी सेना के छक्के छुड़ा दिये। उनके सैकड़ों आदमी मारे गए और शेष ने भागकर अपनी जान बचाई। ताजुदीन का कथन है कि ब्रिटिश सेना का प्रधान सेनापति जनरल एनसेन भी इस युद्ध में मारा गया था। इस युद्ध में अंग्रेज सैनिक सम्मान के साथ दफन भी नहीं कर पाए। रात के अंधेरे में उन्होंने चुपके से सेनापति को प थ्वी की गोद में सुला दिया और पीछे भाग गए। थोड़े समय पश्चात अंग्रेजी सेना की स्थिति पंजाब से नई टुकड़ी आ जाने से अच्छी हो गई। वे क्रांतिकारियों को पीछे धकेल कर सड़क को मुक्त कराने में सफल हो गए। किंतु अंदर गांवों में क्रांतिकारियों का अधिकार ज्यों का त्यों बना रहा।

जिला अंबाला में क्रांति

पटियाला, नामा व जींद रियासतों से विशेष सहायता प्राप्त होने के कारण अंबाला के अंग्रेज प्रशासकों ने इस जिले में कोई विशेष गड़बड़ नहीं होने दी। किंतु इसका मतलब नहीं कि जनता में क्रांति करने या इसमें भाग लेने की कोई इच्छा नहीं थी। अंबाला के डिप्टी कमिश्नर फारसिथ ने स्वयं यह माना है कि "उसके जिले में समस्त जनता विद्रोहियों के प्रति सहानुभूति रखती है" और तो ओर वह विस्मित होकर कहता है कि "जगाधरी के व्यापारी जो हमारी सरकार से हमेशा लाभ उठाते रहे है, इस कड़े समय में हमारे प्रति स्वामी भक्ति का प्रदर्शन न कर पाए। लेकिन ऐसी भावना के बावजूद भी अंबाला की जनता सख्त सैनिक निगरानी के कारण खुला विद्रोह न कर पाई।

उपरोक्त विवरण से यह स्पष्ट होता है कि अंबाला को छोड़कर शेष सारा हरियाणा मई के अंत तक अंग्रेजों से मुक्त हो गया था। यहां के स्थानीय नेताओं तथा के मुगल सम्राट बहादुरशाह की अधीनता स्वीकार करके उसके आदेशों के अनुसार प्रशासन चलाया।

क्रांति की विफलता

यद्यपि हरियाणा की जनता ने हिंदू तथा मुसलमानों ने क्रांति में बढ़ चढ़कर भाग लिया तथा मिलकर कार्य किया लेकिन अच्छे नेताओं के अभाव, सैनिक रूप से निर्बलता तथा संगठन के न होने के कारण यह क्रांति विफल हो गई। 20 सितंबर सन् 1857 को अंग्रेजों ने दिल्ली पर पुनः अधिकार कर लिया।

दिल्ली के पतन के बाद अंग्रेजी सेनाओं ने एक-एक करके हरियाणा के उत्तरी जिलों पर अपना अधिकार कर लिया। सर्वप्रथम उन्होंने अंबाला थानेसर और करनाल को अपने अधिकार में किया। फिर हिसार, सिरसा और रोहतक की तरफ बढ़े और थोड़े प्रयत्नों के बाद वे वहां भी सफल हुए।

दक्षिण हरियाणा पर अधिकार करने के लिए ब्रिगेडियर जनरल शार्वस 2 अक्टूबर 1857 को 1,500 सैनिकों तथा तोपखाने के साथ दिल्ली से चला। उसने सर्वप्रथम रेवाड़ी पर आक्रमण किया किंतु उसके वहां पहुंचने से पूर्व ही राव तुलाराम रेवाड़ी छोड़कर राजस्थान चला गया और जब अंग्रेज सेनाएं रेवाड़ी पहुंची तो तुलाराम को न पाकर बहुत मायूस हुई।

शार्वस एक सप्ताह तक रेवाड़ी में ठहरा तत्पश्चात 12 अक्टूबर को उसने झज्जर के नवाब अर्ब्दूरहमान खां पर आक्रमण कर दिया। नवाब बहुत अर्से से दोहरी चाल चलके दोनों पक्षों अर्थात अंग्रेज और बहादुरशाह को प्रसन्न करने में लगा हुआ था। जब नवाब शार्वस के आक्रमण की सूचना मिली तो वह अपनी राजधानी छोड़कर 6 मील दूर हुछकवास आ गया और यहां वह सहर्ष शार्वस की शरण में चला गया। शार्वस ने नवाब को तुरंत बंदी बनाकर दिल्ली भेज दिया। इसी प्रकार शार्वस ने दिल्ली जाते समय फरुखनगर के नवाब अहमद अली और बल्लभगढ़ के राजा नाहर सिंह को भी बंदी बनाकर दिल्ली भेज दिया।

शार्वस के वापस दिल्ली चले जाने के पश्चात हरियाणा के बचे खुचे क्रांतिकारियों, हिसार के शहजादा आजीम, नवाब झज्जर के दामाद जनरल समद खां तथा रेवाड़ी के राव तुलाराम ने इकट्ठा होकर लड़ने की योजना बनाई। सौभाग्य से इसी समय जोधपुर का एक बागी दस्ता राजस्थान से आकर इनसे मिल गया। सबने नारनौल के स्थान को इस शुभ कार्य के लिए उत्तम समझा।

नारनौल का युद्ध

जब दिल्ली के अंग्रेजों को विद्रोहियों की इन गतिविधियों का पता चलता तो वे बड़े बौखलाए। उन्होंने इन विद्रोहियों को पाठ पढ़ाने के लिए अपने एक योग्य सैन्य अधिकारी कर्नल जेर्राड के नेत त्व में नवंबर के दूसरे सप्ताह में एक सेना भेजी। जेरार्ड ने 16 नवंबर 1857 को नारनौल पर आक्रमण किया। भारतीय फौजें नारनौल में एक सराय में मोर्चा संभाले हुए थी। उनकी संख्या लगभग 5,000 के करीब थी तथा उनके पास एक दर्जन के करीब तोपे थी। जब उन्हें अंग्रेजी फौज के आगमन की सूचना मिली तो उन्होंने सराय छोड़कर उनपर आक्रमण कर दिया। नारनौल से दो मील की दूरी पर स्थित नसीबपूर गांव के पास दोनों सेनाओं में जबर्दस्त टकराव हुआ। यह युद्ध लगभग 12 बजे शुरू हुआ। पहला भारतीय प्रहार ब्रिटिश सेनाओं के लिए असहनीय था। किंतु थोड़ी देर बाद अंग्रेज कारबायनिर्यस तथा "गाईड्स" ने कुछ हिम्मत से काम लेकर बढ़ते हुए भारतीय रिसाले को रोक कर अंग्रेज सेना में कुछ उत्साह फूंका। किंतु वे इससे आगे कुछ न सके क्योंकि भारतीय रिसाला चट्टान की तरह अडिग खड़ा था। भारतीय कितनी वीरता से लड़े इसका अनुमान होम्स के इन शब्दों से होता है "शत्रु ने गाईडस तथा कार्बानिर्यस के आक्रमण को बहादुरी से झेला।" मालेसन के शब्दों में "यह एक वीरतापूर्ण युद्ध था। शत्रु इतने वीरता और साहस के साथ पहले कभी नहीं लड़े थे। वह न कतराए, न डरे। हम पर इनता विकट प्रहार पहले कभी नहीं हुआ। ब्रिटिश रिसालों ने आज तक इतनी भयंकर टक्कर किसी भी शत्रु से न ली होगी।"

इस युद्ध में सबसे पहले भारतीय रिसाले के कमाण्डर राव किशन सिंह वीरगति को प्राप्त हुए। उनकी म त्यु से सेना के हौंसले डूब गए। उनके बढ़ते कदम रूक गए, किंतु वे पीछे नहीं हटे। मालेसन के शब्दों में "उन्होंने बहादुरी से अपनी जानें न्यौछावर कर दी, समर्पण करने का तो ख्याल भी नहीं आया।" जब भारतीय पक्ष कुछ कमजोर दिखाई दे रहा था तो एक गोली अंग्रेज कमाण्ड जेरार्ड को लगी तथा वह वहीं ढेर हो गया। जेरार्ड के मरते ही अंग्रेज सेना के हौंसले पस्त हो गए और भारतीय सेना के हौंसले बढ़ गए। वे व्रज बनकर शत्रु पर टूट पड़े। अंग्रेज सेना इस प्रहार को सह न सकी। किंतु ऐसी दशा बहुत देर तक नहीं रही। नए अंग्रेज कमाण्डर कोलफिल्ड ने बिगड़ती हुई स्थिति को संभाल लिया। उसने अंग्रेजी तोपखाने को फायर का

आदेश दिया। तुरंत की ब्रिटिश तोपखाने के गोले भारतीय सेना के मध्य में गिरने लगे। सैनिक तोप की मार से बचने के लिए पीछे चले गए और आगे वाले तोप की मार से बचने के लिए आगे बढ़ गए।

जब भारतीय सैनिक तोपों के निकट आ गए तो कोलफिल्ड ने उन पर एक साथ जोरदार आक्रमण किया। भारतीय सैनिक वीरता से लड़े लेकिन भाग्य अंग्रेजों के साथ था। उनके सुयोग्य नेता राव रामलाल, शहजादा मुहमद आजिम तथा जरनल समद खां का पुत्र वीरगति को प्राप्त हो गए। इससे भारतीय सेना में भगदड़ मच गई। इस प्रकार अंग्रेजों की विजय हुई। नारनौल का युद्ध अंतिम युद्ध था। इसके बाद हरियाणा में क्रांति की अग्नि बुझ गई।

क्रांति का प्रभाव

हरियाणा में 1857 की क्रांति एक रोमांचकारी घटना थी। इस क्रांति में यहां के वीर पुरुषों ने आपसी भेदभाव मिटाकर अद्वितीय एकता का परिचय दिया। उन्होंने अपने क्षेत्र में अच्छा प्रशासन लागू करने के लिए बहादुर शाह और स्थानीय राजा नवाबों को पूरा साथ दिया। यद्यपि यह क्रांति विफल हो गई लेकिन फिर भी इसके निम्नलिखित प्रभाव पड़े।

1. **दमन चक्रः** क्रांति की विफलता के पश्चात् हरियाणा वासियों पर अंग्रेजों का दमन चक्र चला। अंग्रेज सैनिकों ने अनेक गांवो को जलाकर राख कर दिया, हजारों लोगों को जेलों में ठूस दिया गया, जिन लोगों ने क्रांति में भाग लिया उनकी संपत्ति जब्त कर ली गई। क्रांतिकारी गांवों से सामूहिक जुर्माने वसूल किए गए। अंग्रेजों ने गांव-गांव जाकर सैंकड़ो लोगों को केवल शक के आधार पर फांसी लटका दिया। इस संबंध में एक समसामयिक दर्शक का विवरण इस प्रकार हे। "इन दिनों लगभग प्रत्येक गांव के बाहर बड़, पीपल के व क्षों पर फांसी के रस्सों पर 10-15 आदमी दिन रात लटके रहते थे। लाशें सड़कर सारे वातावरण को दूषित कर देती थी। किंतु उनके अंत्येष्टि करने का कोई साहस नहीं कर सकता था, क्योंकि ऐसा करने का मतलब होता था कि उस व्यक्ति को म तक से सहानुभूति थी, और यदि कोई ऐसा करने का दुस्साहस करता तो दूसरे दिन म तक के बराबर उसका शव भी लटका मिलता था।"

   दूर-दराज के गांवों की तो बात छोड़िए, राजधानी दिल्ली में भी अंग्रेज अत्याचारों का इसी प्रकार प्रदर्शन होता रहा। इतिहासकार जान केय के शब्दों में "आठ छकडे इस काम के लिए तैनात थे कि गलियों और बाजारों में व क्षों से लटके शव को उतारकर दूर फेंक आएं।" लौहारू के नवाब के अनुसार कोई 2,600 आदमी केवल दिल्ली में ही मारे गए थे। यद्यपि हमारे पास आकंड़े उपलब्ध नहीं हैं लेकिन हम कह सकते हैं कि हरियाणा में भी काफी लोग मारे गए होंगे।

2. **पंजाब में विलयः** फरवरी 1858 में हरियाणा प्रदेश को उत्तर पश्चिमी प्रांत से प थक करके पंजाब में मिला दिया गया। पंजाब के तत्कालीन चीफ कमिश्नर सर जान लारेंस ने इस नए प्रदेश को ठीक तरह से व्यवस्थित करने के लिए इसे दो डिवीजनों में बांट दिया। दिल्ली डिवीजन में हिसार, सिरसा तथा रोहतक के जिले सम्मलित थे। इसका केंद्र हिसार में था। डिवीजन का प्रशासन कमिश्नर के अधीन होता था और दिवानी मुकदमों की सुनवाई भी करता था। उसकी सहायता के लिए कई छोटे अधिकारी होते थे। जिले की व्यवस्था डिप्टी कमिश्नर के अधीन होती थी। प्रत्येक विभाग उसके सीधे नियंत्रण में होता था।

देसी रियासतों पर प्रभाव

हरियाणा की देसी रियासतों पर क्रांति का दोहरा प्रभाव पड़ा। जिन रियासतों के प्रशासकों ने बादशाह बहादुर शाह की अधीनता स्वीकार कर ली थी उनको कठोर दण्ड मिला। झज्जर के नवाब अब्दुर्रहमान खां, बल्लभगढ़ के राजा नाहर सिंह और फरूख नगर के नवाब अहमद अली को बिना किसी मुनासिब सुनवाई के दिल्ली के चांदनी चौक में फांसी दे दी गई थी और उनकी रियासतों तथा मूल्यवान संपत्ति को जब्त कर लिया गया था। दादरी के नवाब ने यद्यपि विद्रोह में कोई विशेष भाग नहीं लिया था किंतु फिर भी उसकी रियासत छीन ली गई।

जिन शासकों ने देशवासियों के विरुद्ध अंग्रेजों की सहायता की थी उन्हें उचित इनाम दिया गया। जींद के महाराजा को दादरी की पुरी रियासत और कन्नौड के कई परगने दिए गए। नाभा के राजा को झज्जर रियासत का कुछ भाग तथा बावल के परगने दिए गए। पटियाला के राज्य को झज्जर राज्य का नारनौल के आसपास का बहुत बड़ा क्षेत्र दिया गया। दोजाना पटौदी तथा

लौहारू के नवाबों ने न तो अंग्रेजों की सहायता की थी और न ही क्रांति में भाग लिया था इसलिए उनकी रियासत ज्यों की त्यों बनी रहने दी। यह व्यवस्था 1947 तक बनी रही।

शासकीय रोष तथा द्वैष

क्रांति में बढ़ चढ़कर भाग लेने के कारण हरियाणा की जनता के प्रति नए शासकों का रवैया बहुत ही वैमनस्यपूर्ण रहा। चीफ कमिश्नर से लेकर एक छोटे से राज्य कर्मचारी तक के मस्तिष्क में क्रांति के बाद कितने ही दिनों तक उनकी दानवीय तस्वीर खिंची रही। वे हर समय यह याद रखते थे कि ये वहीं लोग हैं जिन्होंने हरियाणा अंग्रेजी साम्राज्य को नष्ट करने का प्रयास किया था। महारानी विक्टोरिया की आम माफी की घोषणा के बाद भी अंग्रेज अधिकारी हरियाणा वासियों को क्षमा करने को तैयार नहीं थे।

यहां निरंतर आक्रोश तथा दमन चक्र चलता रहा। सरकारी नौकरियों के द्वार यहां के निवासियों के लिए बंद थे। नहरें, सड़के तथा बिजली आदि की सुविधा इनको न के बराबर दी गई। न ही यहां विकास कार्य हुआ और न ही स्कूल कॉलेज खोले गए। इन सबके फलस्वरूप यहां के लोग पिछड़ गए।

जनजीवन में निष्प्राणता

विद्रोह के उपरांत दमन चक्र व शासकीय द्वेष के परिणामस्वरूप हरियाणा का जनजीवन 19वीं शताब्दी में ही नहीं वरन् 20वीं शताब्दी के तीन चार दशकों तक एकदम निष्प्राण सा हो गया था। यहां के लोग अंग्रेजी मार से इतने भयभीत हो गए थे कि वे पशुओं सा जीवन व्यतीत करने लगे थे। वे सब कुछ चुपचाप सह लेते थे और फरियाद तक करने की बात तक नहीं सोच सकते थे। अविधा, अज्ञानता, गरीबी और लाचारी का चारों तरफ बोलबाला था और सैंकड़ों प्रकार की कुरीतियां यहां के धार्मिक तथा सामाजिक जीवन को दूषित करने लगी थी। उस युग में चेतना की अनुभूति के लक्षण जो दूसरे प्रांतों में दिखाई दे रहे थे, उनका यहां अभाव रहा।

विद्रोह का स्वरूप और चरित्र

इतिहासकारों ने 1857 के विद्रोह के स्वरूप के विषय में भिन्न-भिन्न मत प्रकट किए हैं। के० मालेसन, ट्रेविलियन, लारेंस तथा होम्ज जैसे अंग्रेज इतिहासकारों ने इसे केवल सैनिक विद्रोह की संज्ञा दी है। जो केवल सेना तक सीमित था और जिसे जन साधारण का समर्थन प्राप्त नहीं हुआ। समकालीन कुछ भारतीयों के विचार में भी यह एक सैनिक विद्रोह था। मुंशी जीवनलाल और मुइनूदीन (जो उस दिल्ली में थे) दुर्गादास वधोपाध्याय (जो उस समय बरेली में थे) और सर सैयद अहमद खां (जो 1857 में बिजनौर में सदर अमीन की पदवी पर थे) ने ऐसे विचार प्रकट किए हैं। अन्य लोगों ने इसे "इसाईयों के विरुद्ध धार्मिक युद्ध" की संज्ञा दी है अथवा "श्वेत तथा काले लोगों के बीच सर्वश्रेष्ठता के लिए संघर्ष" बतलाया। कुछ लोग इसे पाश्चात्य तथा पूर्वी सभ्यता तथा संस्क ति के बीच संघर्ष कहते हैं। अन्य लोग इसे अंग्रेजी साम्राज्य को उखाड़ फेकने के लिए "हिंदू-मुस्लिम षड़यंत्र" का नाम देते हैं। कुछ राष्ट्रवादी भारतीय इसे "सुनियोजित राष्ट्रीय आंदोलन" कहते हैं।

सरजान लारेंस, ओ सीले के अनुसार यह केवल "सैनिक विद्रोह" था तथा अन्य कुछ नहीं। सर जान सीले के अनुसार 1857 का विद्रोह "एक पूर्णतया देश भक्ति रहित और स्वार्थी सैनिक विद्रोह था जिसे जन साधारण का समर्थन नहीं प्राप्त था।" उसके अनुसार "यह एक स्थापित सरकार के विरुद्ध भारतीय सेना का विद्रोह था।" यह ठीक है कि कुछ रियासतों ने भी इसमें सहयोग दिया परंतु ये वही रियायतें थी जो डलहौजी की विलय नीति के कारण सरकार से रूष्ट थी। ब्रिटिश सरकार ने संस्थापित सरकार होने के कारण इस विद्रोह का दमन किया। परंतु यह व्याख्या ठीक नहीं। निसंदेह यह विद्रोह एक सैनिक विद्रोह के रूप में आरंभ हुआ परंतु सभी स्थानों पर यह सेना तक सीमित नहीं था। सभी सेनाओं ने विद्रोह नहीं किया। सेना का कुछ भाग सरकार की ओर से लड़ा। विद्रोही जनता के प्रत्येक वर्ग से आए। 1858-59 के अभियोगों से सहस्त्रों, असैनिक, सैनिकों के साथ-साथ विद्रोह के दोषी पाए गए और उन्हें दण्ड दिया गया।

एल० ई० आर० रीज के कथन से सहमत होना की "यह धर्माघों का इसाईयों के विरुद्ध युद्ध था" बहुत कठिन है। विद्रोह की गरमी से भिन्न-भिन्न धर्मो के नैतिक नियमों का लड़ने वालों पर कोई नियंत्रण नहीं रहा। दोनों दलों ने अपनी-अपनी ज्यादती छिपाने के लिए अपने-अपने धर्मग्रंथों का आश्रय लिया। अंततः इसाई जीत गए परंतु इसाई धर्म नहीं। हिंदू और मुसलमान

पराजित हुए परंतु हिंदू और मुस्लिम धर्म पराजित नहीं हुए। न ही यह जातियों का युद्ध था। यह सत्य है कि भारत के श्वेत लोग एक ओर थे परंतु सभी काले लोग दूसरी ओर नहीं थे। जैसे की कैप्टन जे० सी० मेडले ने निर्देशित किया है कि अंग्रेजी कैंपों में एक श्वेत व्यकित के अनुपात में 20 काले व्यक्ति थे। भारतीयों ने गोरे सैनिकों की हर प्रकार से सहायता की। उन्होंने गोरे सैनिकों के लिए खाना बनाया और काले पालकी वाले ही थे जिन्होंने गोरे हताहतों को खतरे के क्षेत्र से दूर पहुंचाया। इस प्रकार वास्तव में यह कहना कठिन होगा कि यह तो काले विद्रोहियों और काले लोगों द्वारा समर्थित गोरे शासकों के बीच युद्ध था।

टी० आर० होम्ज जैसे अंग्रेज इतिहासकारों ने इस विचार को लोकप्रिय बनाने का प्रयत्न किया है कि यह तो "बर्बरता तथा सभ्यता के बीच युद्ध था"। परंतु इस व्याख्या में भी संकीर्ण जाति भेद की गंध आती है। विद्रोह के दोनों पक्ष की ज्यादतियों के दोषी थे। यदि दिल्ली, कानपुर और लखनऊ में कुछ भारतीय यूरोपीय स्त्रियों और बच्चों की हत्या के दोषी थे तो अंग्रेजों ने भी कई स्थानों पर वे अपराध किए जो भारतीयों से अधिक बर्बर व जघन्य थे। हडसन ने दिल्ली में अंधाधुंध गोली चलवाई। नील को इस बात का घमण्ड था कि उसने सैंकड़ों भारतीयों को बिना किसी मुकदमे के फांसी लटका दिया। वास्तव में दोनों ओर से प्रतिशोध की भावना ने मनुष्यों को अभीभूत कर दिया था। कोई राष्ट्र अथवा जाति भी जो इस प्रकार के अत्याचार करती हे सभ्य कहलाने का दावा नहीं कर सकती।

सर जेम्स आउट्रम और डब्ल्यू टेलर ने इस विद्रोह को हिंदू मुस्लिम षड़यंत्र का परिणाम बताया है। आउट्रम का विचार था कि "यह मुस्लिम षड़यंत्र था जिसमें हिंदू शिकायतों का लाभ उठाया गया।" यह व्याख्या भी पर्याप्त नहीं है।

बेंजामिन डेजरली जो इंग्लैंड में समकालीन रूढ़ीवादी दल के एक प्रमुख नेता थे ने इसे एक राष्ट्रीय विद्रोह कहा है। उसका विचार था कि यह विद्रोह एक "आकस्मिक प्ररेणा नहीं था अपितु सचेत संयोग का परिणाम था और वह एक सुनियोजित और सुसंगठित प्रयत्नों का परिणाम था जो अवसर की प्रतीक्षा में थे। साम्राज्य का उत्थान और पतन चर्बी वाले कारतूसों के मामले से नहीं होते... ऐसे विद्रोह उचित और पर्याप्त कारणों के एकत्रित होने से होते हैं।" अशोक मेहता ने अपनी पुस्तक "The Great Rebellion" में यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि 1857 के विद्रोह का स्वरूप राष्ट्रीय था। वीर सावरकर ने भी इस विद्रोह को "सुनियोजित स्वतंत्रता" संग्राम की संज्ञा दी है।

दो आधुनिक भारतीय इतिहासकारों डॉ० आर० सी० मजूमदार तथा डॉ० एस० एन० सेन ने समस्त उपलब्ध राजकीय तथा अराजकीय आलेखों का विस्त त अध्ययन किया है। 1857-58 की घटनाओं के विषय में दोनों विद्वानों में मतभेद है। परंतु दोनों विद्वान इस बात पर सहमत हैं कि 1857 का विद्रोह सचेत योजना का परिणाम नहीं था और न ही इसके पीछे कोई कुशल और सिद्ध हस्त व्यक्ति था। केवल यह तथ्य की नाना साहब मार्च अप्रैल 1857 में लखनऊ गए थे और यह विद्रोह मई में आरंभ हो गया। इस बात को प्रभावित नहीं करता कि उन्होंने इस विद्रोह की योजना बनाई थी।

इस तथ्य को भी दोनों विद्वान स्वीकार करते हैं कि मध्य 19वीं शताब्दी में भारतीय राष्ट्रीयता भ्रूणावस्था में थी। डॉ० सेन का मत है कि उन्नीसवीं शताब्दी के पूर्वाध में भारत केवल एक भौगोलिक कथन ही था। 1857 में बंगालियों, पंजाबियों, महाराष्ट्रियों मद्रासियों ने कभी भी यह अनुभव नहीं किया था कि वे एक ही राष्ट्र के सदस्य हैं। विद्रोह के नेता राष्ट्रीय नेता नहीं थे। बहादुर शाह कोई सम्राट नहीं था। उसे तो सैनिकों ने अपना नेता बनने पर विवश कर दिया। नाना साहिब ने केवल उस समय विद्रोह का झण्डा उठाया जब उसका दूत लंदन से उसके लिए बाजीराव द्वितीय की पेंशन प्राप्त करने में असफल रहा। जब विद्रोह शुरू हो गया तो भी उसने कहा था कि वह अंग्रेजों से बातचीत तब करेगा जब उसकी पेंशन उसे मिल जाएगी। झांसी में झगड़ा उत्तराधिकार और विलय के प्रश्न पर हुआ। इसमें संदेह नहीं कि रानी वीरगति को प्राप्त हुई परंतु उसने यह स्पष्ट्र नहीं किया कि वह राष्ट्रहित के लिए लड़ रही थी। अवध का नवाब एक बेकार सा व्यभिचारी व्यक्ति था। राष्ट्रीय नेता बनने का स्वप्न कभी नहीं ले सकता था। अवध के तालुकेदारों ने सामंतशाही अधिकारों के लिए अथवा अपने राजा के लिए युद्ध किया, राष्ट्रीय हित के लिए नहीं। इन नेताओं में अधिकतर आपस में ईष्या और द्वैष करते थे और लगातार एक दूसरे के विरुद्ध षड़यंत्र रच रहे थे। जन साधारण भी इनसे अच्छी स्थिति में नहीं थे। उनकी बहुसंख्य तटस्थ और उदासीन रही। राष्ट्रवाद को जिस अर्थ में आज हम लेते हैं उस समय तक देश में नहीं आया था।

आर० सी० मजूमदार के तर्क का आशय यह है कि सन् सतावन का विद्रोह स्वतंत्रता संग्राम नहीं था। उसका अनुरोध है कि

विद्रोह ने भिन्न-भिन्न स्थानों पर भिन्न-भिन्न रूप धारण किया। कुछ प्रदेशों जैसे पंजाब और मध्य प्रदेश में यह केवल सैनिक विद्रोह ही था जिसमें कालांतर में कुछ असंतुष्ट व्यक्ति भी गड़बड़ी का लाभ उठाकर सम्मिलित हो गए। दूसरी ओर उत्तर प्रदेश में, मध्य प्रदेश के कुछ भागों में और बिहार के पश्चिमी भागों में सैनिकों के विप्लव के पश्चात एक सर्वसाधारण विद्रोह हो गया। जिसमें सैनिकों के अतिरिक्त, असैनिक, विशेषकर रियासतों के विस्थापित शासक, भूमिपति मुजारे तथा अन्य तत्वों ने भाग लिया। इसके अतिरिक्त कुछ भाग ऐसे थे जहां जनता की सहानुभूति विद्रोहियों के साथ थी परंतु उन्होंने कानून की सीमा को पारकर किसी पर अत्याचार नहीं किया।

आर० सी० मजूमदार इस बात पर अधिक बल देते हैं कि वे तत्व जो अंग्रेजों के विरुद्ध लड़े केवल सैनिक ही थे। उनका कथन है कि विद्रोही अत्यधिक राजनीतिक और धार्मिक कारणों से अथवा केवल आर्थिक लाभ से ही प्रेरित हुए थे। इन सैनिकों ने दिल्ली बरेली और इलाहाबाद में लूटपाट की इसमें भारतीय तथा यूरोपीय दोनों ही उनके शिकार हुए। डॉ० मजूमदार इस निर्णय पर पहुंचे है कि "सैनिकों के व्यवहार और आचरण में कुछ भी ऐसा नहीं था जिससे हम यह विश्वास करें अथवा स्वीकार कर लें कि वे अपने देश प्रेम से प्रेरित हुए थे कि देश को स्वतंत्र करा सके।"

डॉ० सेन का विश्वास है कि यह स्वतंत्रता संग्राम ही था। उनका तर्क है कि क्रांतियां प्रायः एक छोटे से वर्ग का कार्य होता है जिसमें जनता का समर्थन होता भी है और नहीं भी होता। डॉ० सेन के अनुसार यदि "एक विद्रोह जिसमें बहुत से लोग सम्मिलित हो जाए तो उसका स्वरूप राष्ट्रीय हो जाता है" दुर्भाग्य से भारत में अधिकतर लोग निष्पक्ष और तटस्थ रहे इसलिए 1857 को राष्ट्रीय कहना ठीक नहीं।

इसे हमारा सौभाग्य ही समझिए कि जब हम हरियाणा में क्रांति की घटनाओं का सूक्ष्म अध्ययन करते हें तो हमें इस समस्या का समाधान होता नजर आता है तथा इस विचार को बल मिलता है कि यह एक स्वतंत्रता संग्राम था। क्योंकि लगभग संपूर्ण हरियाणा ब्रिटिश शासन से मुक्त हो गया था पर इसमें सिपाहियों का योगदान न के बराबर था। प्रायः सभी जगह आम जनता ने ही यह कार्य किया था। उन्होंने ही ब्रिटिश शासन के अवशेषों को समुल नष्ट किया। क्या ऐसा जन आंदोलन कहीं सिपाही विद्रोह हो सकता है। न ही यह ऐसा सीमित सैनिक विद्रोह था जिसे थोड़ी सी जनता का समर्थन प्राप्त था। कम से कम हरियाणा में ऐसा नहीं था।

हरियाणा के लोग 1857 ई० अपने पुराने मतभेदों को भुलाकर कंधे से कंधा मिलाकर चले। वे इस बात की परवाह किए बिना ही कि उनका नेता हिंदू है या मुसलमान, अंग्रेजों के विरुद्ध लड़े। उनके सम्मुख एक ही सामान्य उद्देश्य था विदेशी शासन से छुटकारा पाना और अपना आधिपत्य कायम करना। कुछ हद तक इस उद्देश्य की पूर्ति भी हुई। वे मई के अंतिम सप्ताह तक या अधिक से अधिक जून के प्रथम सप्ताह में पूर्ण रूप से विदेशी दासता से मुक्त हो गए थे और स्वेच्छा से उन्होंने मुगल बादशाह बहादुर शाह को अपना शासक मान लिया था। हरियाणा में विद्यमान इस सभी लक्षणों के कारण हम यह कह सकते हैं कि यह एक स्वतंत्रता आंदोलन था।

राजनैतिक जागरण

उन्नीसवीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध भारत के इतिहास में नव जागरण का युग माना जाता है। अंग्रेजी शासन काल के अंतर्गत विभिन्न कारणों ने भारतीय जनता में राष्ट्रीय जाग ति तथा स्वतंत्र भावना को जन्म दिया जिसके परिणामस्वरूप भारत में राष्ट्रीय आंदोलन का उदय हुआ। कुपलैण्ड के अनुसार भारत का राष्ट्रीय आंदोलन कई शक्तियों और कारणों का परिणाम था। इस राष्ट्रीय आंदोलन का जन्म 1885 में माना जाता है जब भारत में राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना हुई लेकिन कांग्रेस का जन्म कोई आस्कमिक घटना नहीं थी। कांग्रेस की स्थापना जिसने राष्ट्रीय चेतना के मंद जागरण को एक निश्चित रूप दिया अनेक कारणों व तत्वों का परिणाम थी। सच तो यह है कि वह उन्नीसवीं शताब्दी के राष्ट्रीय नव जागरण का ही एक भाग था। इस परिवर्तन के बहुत से कारण थे जिसमें पश्चिमी शिक्षा का प्रभाव, अंग्रेजी शासन के लक्ष्यों एवं उद्देश्यों के तथा भारतीय जनता के हितों के टकराव से हुई प्रतिक्रिया, अंग्रेजों द्वारा भारतीयों के प्रति घ णात्मक रवैया, ब्रह्म समाज, थियोसोफिकल सोसायटी तथा रामक ष्ण मिशन के प्रयत्नों के फलस्वरूप सामाजिक व सांस्क तिक चेतना का विकास, प्रेस तथा साहित्य का सहयोग आदि प्रमुख थे। इस राष्ट्रव्यापी नवजागरण एवं पुनरुदार का प्रभाव हरियाणा पर भी पड़े बिना न रह सका।

हरियाणा में इस चेतना के लिए मुख्य रूप से निम्नलिखित कारक जिम्मेवार थे।

पाश्चात्य शिक्षा

भारतीय नवजागरण के इतिहास में पाश्चात्य शिक्षा का योगदान बहुत ही महत्वपूर्ण है। इससे भारतीयों को पश्चिम के उदारवादी लेखकों जैम लाक और रूसो आदि के विचारों को पढ़ने का मौका मिला। उन्होंने अमेरिकी स्वतंत्रता संग्राम तथा फ्रांस की क्रांति के इतिहास को पढ़ा। उन्होंने दुनिया में हुई उत्थान व पतन की प्रक्रियाओं के बारे में जानकारी हासिल हुई। इस पढ़ाई से वे जान गए कि उनकी वर्तमान बुरी दशा का कारण क्या है, इसका जिम्मेदार कौन थे तथा इसे कैसे दूर किया जा सकता है।

परंतु दुर्भाग्यवश हरियाणा में पाश्चात्य शिक्षा का प्रसार अन्य प्रदेशों की अपेक्षा बहुत देर बाद हुआ। 1870 से पहले तो यहां उच्च शिक्षा देने वाले कालेजो की तो बात दूर स्कूलों की व्यवस्था भी असंतोष जनक थी जो थोड़े बहुत स्कूल चल रहे थे उन्हें भी कोई सरकारी सहायता नहीं मिलती थी। 1870 के बाद सरकार का ध्यान इस ओर हुआ और प्रत्येक 10 मील के दायरे में एक स्कूल खोला गया किंतु जहां तक कॉलेज का प्रश्न है यह अभाव तो बना ही रहा। लोग उच्च शिक्षा के लिए या तो देहली या फिर लाहौर जाते थे। इस क्षेत्र में पहला इंटर मिडियट कॉलेज रोहतक में 1926 में खोला गया। यद्यपि इन स्कूलों की संख्या बहुत ही कम थी पर न स्कूलों में पढ़े लोगों ने ही हरियाणा प्रदेश में जनजागरण की ज्योति को रोशन किया।

साहित्य और समाचार पत्र

उच्च शिक्षा की कमी के कारण यहां देश के अन्य भागों की तरह नव साहित्य का सज न करने वाले व्यक्तियों की संख्या बहुत ही कम थी। परंतु इस बात से यह अनुमान लगाना सही नहीं होगा कि साहित्य और समाचार पत्रों के माध्यम से हरियाणा में कोई चेतना नहीं आई। हरियाणा के प्रसिद्ध कवि बाबू बालमुकुंद गुप्त (1864-1901) ने अकेले ही अपनी रचनाओं से बहुत कुछ कर दिखाया। इनका जन्म रोहतक जिले के एक छोटे से गांव गुडयानि में एक निर्धन परिवार में हुआ। वे केवल आठ जमात ही पढ़ पाए और ये पढ़ाई भी अंग्रेजी वे पाश्चात्य शिक्षा की न होकर उर्दू की थी। लेकिन फिर भी उन्होंने अपनी मेहनत और सच्ची साधना से राष्ट्रीयता का प्रचार किया उन्होंने उस काल में शोषणकारी और विदेशी अंग्रेजी राज्य द्वारा जो देश की दुर्दशा हो रही थी उसका मार्मिक व सजीव चित्रण अपनी कविताओं के माध्यम से प्रस्तुत किया। बाबू बालमुकुंद गुप्त की रचनाओं ने अंग्रेजी राज्य के प्रति लोगों में बहुत रोष पैदा किया। देशवासियों को उन्होंने उनकी कमियां दर्शायी, उनमें राजनैतिक जाग ति पैदा की और उन्हें राष्ट्रीय जन आंदोलन के लिए तैयार किया। ऐसा की काम इसी अवधि में दूसरे महान नेता बाबू मुरलीधर (1848-1922) ने किया। वे पलवल के रहने वाले थे। उन्होंने 1885 में कांग्रेस की नींव डालने में योग दिया था। वह उच्च कोटि के नेता ही नहीं वरन् उच्च कोटि के कवि भी थे। उन्होंने अपनी ओजस्वी वाणी और सशक्त लेखनी से हरियाणा में जाग ति पैदा की।

समाचार पत्रों के प्रकाशन में यहां के नागरिक कोई विशेष स जनात्मक कार्य इस दिशा में नहीं की पाए। इस काल में झज्जर के पं० दीन दयालू शर्मा ने "हरियाणा" और "रिफाए-आम" नाम समाचार पत्र निकाले लेकिन वे बहुत लंबे समय तक नहीं चल पाए। 1889 अंबाला से खैर संदेश निकला। इनके अतिरिक्त यहां के शिक्षित नागरिकों ने बाहर तथा अन्य प्रदेशों से आने वाले प्रेरणात्मक साहित्य तथा समाचार पत्रों से काफी कुछ प्राप्त किया। यहां कि शिक्षित वर्ग ने 'कोहेनूर', 'रहबर', 'भारत प्रताप', 'अखबारे चुनार', 'जमाना', 'आजाद', 'हिंदुस्तान', 'भारतमित्र' आदि से काफी प्रेरणा प्राप्त की।

आर्य समाज का योगदान

पाश्चात्य शिक्षा तथा साहित्य से जो नवजागरण आया वह केवल शहरों और कस्बों तक ही सीमित था। हरियाणा की बहुसंख्यक ग्रामीण जनता अनपढ़ थी उसको जाग त करने का श्रेय आर्य समाज को जाता है। इस संस्था की स्थापना 10 अप्रैल 1875 में हिंदू समाज में फैली कुरीतियों को दूर करने के लिए बम्बई में हुई। इसके संस्थापक स्वामी दयानंद सरस्वती थे। वे एक महान देशभक्त थे जो भारत को स्वतंत्र देखना चाहते थे। उन्होंने अपने प्रसिद्ध ग्रंथ, 'सत्यार्थ प्रकाश' में देशवासियों को सबसे पहले 'स्वराज्य' का नारा दिया। उनका कहना था कि विदेशी राज्य कितना ही अच्छा क्यों न हो, वह स्वराज्य की बराबरी नहीं कर सकता। अपने एक अन्य ग्रंथ "आर्यभिविनय" में उन्होंने अपने अनुयायियों से कहा कि प्रत्येक आर्य का कर्तव्य है कि अपने देश के उत्थान के लिए और स्वराज्य के लिए प्रयत्न करे।

स्वामी दयानंद ने सन् 1880 ई० में हरियाणा की यात्रा की। वे यहां के प्रसिद्ध नगर रेवाड़ी में कई दिन तक रहे और उन्होंने अज्ञानता और रूढ़ीवाद के विरुद्ध प्रचार किया। उन्होंने रेवाड़ी में आर्य समाज की एक शाखा भी स्थापित की। इसके थोड़े समय पश्चात रोहतक में भी आर्य समाज की शाखा खुल गई। किंतु योग्य नेताओं के अभाव में दयानंद का संदेश अन्य नगरों तथा गांवों तक नहीं पहुंच पाया लेकिन इस कार्य को सात आठ वर्ष बाद लाला लाजपत राय ने किया।

लाला लाजपत राय वैसे तो पंजाब में जगराव के रहने वाले थे लेकिन 1894 में रोहतक आकर रहने लगे थे। लाला लाजपत राय रोहतक की आर्य समाज का मंत्री बन कर समाज में नए प्राण फूंके। अब समाज के प्रचारक शहर में नहीं वरन् दूर-दूर तक गांवों में जाकर सामाजिक कुरीतियों के विरुद्ध देश भक्ति से ओत-प्रोत मनोहर व्याख्यान देने लगे थे। लालाजी के प्रयत्नों से रोहतक जिले में आर्य समाज का प्रभाव खूब बढ़ गया। रोहतक जिले के बड़े-बड़े गांवों में आर्य समाज की स्थापना हो गई और ग्रामवासियों में नवजागरण के लक्षण दिखाई देने लगे।

सन् 1886 में लालाजी रोहतक छोड़कर हिसार चले गए। वहां उन्होंने लखपतराय, चंदूलाल, हीरालाल, बाबू चुड़ामणी के विशेष सहयोग से आर्य समाज की स्थापना की। आर्य समाज के माध्यम से हिसार में नवचेतना के बीज बोए। देहातों में इस लहर को ले जाने में साधी के डॉ० रामजीलाल ने उनकी विशेष सहायता की। लालाजी ने उनकी सेवाओं से प्रसन्नता व्यक्त करते हुए लिखा है "हजारों जाटों के हृदयों में उसने देश भक्ति की भावना भरकर सार्वजनिक कार्यो के लिए प्रेरित किया जाट बिरादरी में कोई उनकी बराबरी नहीं कर सकता।"

इन्हीं दिनों लालाजी के प्रयत्नों से आर्य समाज का प्रचार अन्य जिलों में भी होने लगा। अंबाला, करनाल और गुड़गावां के शहरों में समाज के केंद्र स्थापित हो गए। इस प्रकार राजनैतिक चेतना की प ष्ठभूमि तैयार हुई।

सनातन धर्म सभा का योगदान

आर्य समाज के आंदोलन से प्रभावित होकर हरियाणा के पौराणिक हिंदूओं ने सनातन धर्म सभा का निर्माण किया। इस आंदोलन के नेता झज्जर के पं० दीन दयालु शर्मा 'व्याख्यान वाचस्पति' थे। सनातन धर्म के प्रचारकों ने आर्य समाजियों की तरह नगर-नगर और गांव-गांव घुमकर अपने विचारों का प्रचार किया। आर्य समाज से बाजी माने के लिए उन्होंने समाज के लिए कुछ अच्छे कार्य किए। जैसे शिक्षा का प्रसार, तंबाकू शराब आदि का विरोध, बाल विवाह पर रोक, आपस में प्रेमपूर्वक रहना आदि। इन सबके कारण हरियाणा के हर छोटे बड़े नगरों और कई बड़े-बड़े गांवों में सनातन धर्म सभाओं की स्थापना हुई और सनातन धर्म का खूब प्रचार हुआ। सनातन धर्म आंदोलन से हरियाणा की प्रजा का सनातन धर्म से जो विश्वास उठ गया था उसकी पुनः स्थापना हुई। आर्य समाज और सनातन धर्म के प्रचार का यह प्रभाव पड़ा कि थोड़े ही समय में हरियाणा के प्रत्येक स्थान पर लोगों ने जीवन के प्रति कुछ उत्साह दिखाई देने लगा। इस प्रकार सनातन धर्म ने आधुनिक चेतना जगाने बहुत योगदान दिया।

मुस्लिम संस्थाओं का योगदान

हिंदूओं कर तरह मुसलमानों की भी इस काल में कई संस्थाएं बनी उनका उद्देश्य सामाजिक धार्मिक उत्थान था। इनमें सेंट्रल मुहमदन एसोएिसशन, अंजुमने इस्लामिया और अंजुमन इथना अशहर प्रमुख थी। इन सभी संस्थाओं में सेंट्रल मुहम्मद एसोसिएशन जिसकी नींव 1877 अमीर अली नामक मुस्लिम नेता ने कलकता में डाली थी यहां सबसे अधिक मजबूत संस्था थी। यद्यपि इसके केंद्र केवल अंबाला और हिसार में ही थे पर इसके प्रचार के साधन काफी उन्नत थे। इसके सक्रिय सदस्य हरियाणा के लगभग हर शहर और बड़े-बड़े मुस्लिम गांवों में थे। यद्यपि इनकी संख्या ज़्यादा नहीं थी फिर भी इस संस्था के प्रचारको ने मुसलमानों में काफी चेतना पैदा की।

दूसरी महत्वपूर्ण संस्था अंजुमने इस्लामिया थी यह संस्था बाकी संस्थाओं के मुकाबले में अधिक प्रयत्नशील थी। इन्होंने अंग्रेजी और पश्चिमी शिक्षा के प्रचार के लिए खूब प्रचार किया और मुसलमानों की राजनैतिक आवश्यकताओं की पूर्ति एवं संगठन के लिए मैदान तैयार किया। अंजुमन इथना का प्रभाव इन दोनों संस्थाओं से कम ही रहा। केवल अंबाला में एक स्कूल खोलने के अलावा इनका कोई काम नजर नहीं आता। यद्यपि उपरोक्त सभी संस्थाएं हिंदू संस्थाओं के मुकाबले काफी कमजोर और पिछड़ी हुई थी फिर भी हरियाणा की मुस्लिम जनता में राजनैतिक चेतना लाने में उनके योगदान का भुलाया नहीं जा सकता।

सिख संस्थाओं का योगदान

हरियाणा के सिख राजनैतिक रूप से काफी देर तक अचेतन अवस्था में ही रहे लेकिन 19वीं शताब्दी के आख़िरी दिनों में सिखों को राजनैतिक रूप से चेतना करने के लिए सिंह सभा नामक संस्था ने महत्वपूर्ण कार्य किया। हरियाणा में सिंह सभा का आंदोलन अंबाला से शुरू होकर धीरे-धीरे सिख क्षेत्र में फैल गया। सभा के कार्यकर्ताओं ने शहरों और कस्बों में ही नहीं बल्कि दूर दराज के गांवों में भी सभा के उद्देश्यों को प्रचारित करके उनमें राजनैतिक चेतना के बीज बोए। लेकिन इतने प्रयत्नों के बावजूद हरियाणा में सिंह सभा का आंदोलन कोई प्रबल रूप धारण नहीं कर सका।

अखिल भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का योगदान

हरियाणा में राष्ट्रीय चेतना फूंकने और नव जागरण लाने में अखिल भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का बहुत योगदान है। इसका जन्म 28 दिसंबर 1885 को बम्बई में हुआ इसके 72 संस्थापकों में हरियाणा के लाला मुरलीधर भी एक थे।

हरियाणा प्रदेश में कांग्रेस का प्रचार इसकी स्थापना के दो वर्ष पश्चात ही दिखाई देने लग गया था। इस समय कांग्रेस के कार्य को यहां प्रसारित करने में सर्वाधिक श्रेय लाला लाजपत राय को जाता है। सर्वप्रथम 1887 में लालाजी के प्रयत्नों से हिसार में कांग्रेस की एक शाखा स्थापित हुई। इसके माध्यम से दूर-दूर तक कांग्रेस का प्रचार होने लगा। लगभग इसी समय अंबाला में भी लाला मुरली धरण तथा लाला दूनी चंद के प्रयत्नों से कांग्रेस की नींव पड़ी साथ ही रोहतक में भी कांग्रेस का प्रचार कार्य आरंभ हुआ। 12 अक्टूबर 1888 को रोहतक नगर में कांग्रेस की पहली सार्वजनिक सभा हुई। कुछ समय पश्चात गुड़गावं, करनाल आदि में भी कांग्रेस की स्थापना हुई। इस प्रकार कांग्रेस की स्थापना तथा इसके नियमित कार्यक्रमों के फलस्वरूप हरियाणा प्रदेश जन-जाग ति का कार्य तीव्र गति से बढ़ने लगा और थोड़े समय पश्चात ही हरियाणा में राजनैतिक जाग ति के चिन्ह नजर आने लगे।

राष्ट्रीय आंदोलन (1885 से 1919)

1885 में कांग्रेस के गठन के बाद हरियाणा में राजनैतिक गतिविधियां तेज हो गई। लेकिन बीच में कई कारणों से कुछ समय के लिए इन गतिविधियों में शिथिलता आ गई। 1894 से 1898 तक कांग्रेस के वार्षिक अधिवेशनों में हरियाणा के किसी भी प्रतिनिधि ने भाग नहीं लिया पर यह राजनीतिक स्थिलता अधिक दिनों तक जारी नहीं रह सकी। सन् 1905 में तत्कालीन गर्वनर जनरल लार्ड कर्जन ने बंगाल का विभाजन कर दिया। इसके विरोध में देशव्यापी एक आंदोलन चला जिसे स्वदेशी आंदोलन के नाम से जाना जाता है।

स्वदेशी आंदोलन

भारत में ब्रिटिश शासन की स्थापना के साथ ही इंग्लैंड के कारखानों में बना सामान भारतीय बाजारों में बिकने लगा। कारखानों में बनी चीजें हाथ से बनी चीजों से काफी सस्ती होती थी। इससे भारत के हस्त शिल्प उद्योग को गहरा धक्का लगा। इसको बचाने के लिए कांग्रेस ने 1905 में स्वदेशी व बायकाट आंदोलन चलाया। वास्तव में स्वदेशी आंदोलन का बीड़ा 1890 के कांग्रेस अधिवेशन में बोया गया था जब एक विदेशी प्रतिनिधि डब्ल्यू० एन० काईन जो भारत से सहानुभूति रखता था ने सुरेंद्रनाथ बनर्जी के सिर से टोपी उठाकर कहा "आपका देश कैसे उन्नति कर सकता है जब बनर्जी से नेता भी जर्मनी में बनी वस्तुओं का प्रयोग करते है।" इसी अधिवेशन में एक अंग्रेज प्रतिनिधि ने भी इस बात को उठाते हुए कहा कि आप लोग गेहूं 2 रुपये प्रति मन उगाते हैं उसका आटा भी पीसते हैं लेकिन आप उसे इंग्लैंड भेज देते हैं और वापस एक रुपया प्रति पोण्ड बिस्कुट के रूप में खरीदते है आपके देश की आर्थिक अवस्था कैसे उन्नत हो सकती है। इस बात का कांग्रेसजनों पर गहरा असर पड़ा और 1891 के कांग्रेस अधिवेशन में स्वदेशी मुख्य मुद्दा रहा।

स्वदेशी आंदोलन का प्रभाव हरियाणा पर अच्छा खासा पड़ा। अंबाला के मुरलीधर ने इस दिशा में महत्वपूर्ण कार्य किया। 1891 के कांग्रेस के नागपुर अधिवेशन में लाला मुरलीधर वे भारतीयों को स्वदेशी वस्तुओं का इस्तेमाल करने का पुरजोर आह्वान किया। अपने भाषण में उन्होंने देशवासियों पर व्यंग्य करते हुए कहा "लगता है आप अपने भाईयों के दिल के खून को पीकर मोटा होने में इन घ णित राक्षसों का साथ देने में तसल्ली होती है। मैं कहता हूं हां! चारों तरफ देखे। यह झाड़फानूस और लैंप यूरोप की बनी कुर्सियां और मेजें, चुस्त कपड़े और हेट, अंग्रेजी कोट, औरतों की टोपियां और फ्राक, चांदी की मूठ के बैतं और

आपके घरों के सारे आरामदेह साजो सामान भारत की मुसीबत के ये विजय चिन्ह, भारत की भूखमरी के स्मारक नहीं तो और क्या है? हां एक रुपया, जिसे आपने यूरोप की बनी हुई चीज पर खर्च किया है, एक रुपया है जिसे आपने अपने ज्यादा गरीब भाइयों से, ईमानदार दस्तकारों से अब अपनी जीविका नहीं कमा सकते, छीना है।"

मुरलीधर को इस मार्मिक अपील का पढ़े लिखे मध्यम वर्ग पर व्यापक उसर पड़ा। उन्होंने दस्तकारों का पता लगाकर उन्हें स्वदेशी सामान बनाने के लिए प्रोत्साहित किया। इस विषय में 11 जनवरी 1906 के "दि ट्रिब्यून" नामक अखबार ने लिखा "31 दिसंबर को रिवाड़ी में एक स्वदेशी सभा हुई इसमें लोगों ने बड़े उत्साह से भाग लिया। स्त्रोताओं की संख्या 300 थी। इसमें इसने पण्डित विष्णु दत्त, शिव देव शरण, 'शादीगुल' अखबार के संपादक सैयद मकबूल हुसैन दुर्गा प्रसाद और कौसल किशोर तथा डी०ए०वी० कॉलेज के बाबू रघुबीर दयाल और दूसरों ने भाषण दिया। इनमें अंतिम वक्ता ने रेवाड़ी में बने कपड़े की मजबूती की ओर ध्यान दिलाया और स्थानीय लोहर द्वार बनाया गया एक लैंप दिखाया जो की देश में बने सरसों के तेल से जलता था।"

20 जुलाई 1905 को लॉर्ड कर्जन ने प्रशासनिक असुविधा का बहाना लेकर बंगाल का विभाजन कर डाला। बंगाल का विभाजन कांग्रेसजनों और राष्ट्रवादियों के लिए चुनौती थी। बंगभंग आंदोलन के दौरान मुरलीधर ने जी जान का जोर लगा दिया। वे स्वदेशी प्रचार और विदेशी माल के बहिष्कार में जुट गए। बहिष्कार का चार सुत्रीय प्रोगाम था। (i) विदेशी कपड़े नमक चीनी, आदि का बहिष्कार, (ii) अंग्रेजी भाषा का प्रयोग बंद, (iii) सरकार के मातहत अवैतनिक पदों और कौंसिल की सीटों से इस्तीफा और (iv) विदेशी समान खरीदने वालों का सामाजिक बहिष्कार। इस प्रोगाम में आगे कहा गया कि बहिष्क त व्यक्ति कोई सामान की खरीद फरोख्त नहीं करेगा, नाई उनके बाल नहीं बनाएंगे और उनके बच्चों के साथ अपने बच्चों को न खेलने देंगे।

यद्यपि बहिष्कार का अस्त्र बहुत की शक्तिशाली था लेकिन मुरलीधर जैसे नेताओं के होते हुए भी यह हरियाणा में ज्यादा कारगर न हो सका। लेकिन स्वदेशी आंदोलन अच्छी प्रकार यहां की मण्डियों में विदेशी माल की खपत काफी कम हो गई। ऐसा कांग्रेस तथा आर्य समाज के प्रचार से ही संभव हो पाया।

हरियाणा में स्वदेशी आंदोलन के प्रचार में आर्य समाज को बहुत बड़ा योगदान था। रोहतक में लाला लाजपत राय के कारण आर्य समाज का बहुत प्रभाव था। और इस आंदोलन में लालाजी का सहयोग चौ० पीरू सिंह, भगत फूल सिंह, मातुराम, रामपत सिंह आदि नेताओं ने किया। हिसार में चुन्नीलाल, लखपत राय तथा डॉ० रामजी लाल मे सहयोग दिया। इस प्रकार रोहतक तथा हिसार स्वदेशी आंदोलन के मुख्य केंद्र बन गए। धीरे-धीरे आंदोलन गुड़गावां, रेवाड़ी, होडल व पलवल में भी फैल गया। बहुत से स्थानों पर इसमें मुसलमानों ने भी भाग लिया। मुस्लिमों में इसमें भाग लेने के कारण आर्थिक था। पैसा अखबार लिखता है कि स्वदेशी सामान की खपत के कारण ज्यादा मात्रा में मुस्लिम कारीगर और मजदूरों को फायदा पहुंचा है।

इस प्रकार स्वदेशी के प्रचार से कांग्रेस में काफी जान पड़ गई। इसका प्रमाण अक्टूबर 1907 में जब मिला जब अंबाला में प्रांतीय कांग्रेस की कांफ्रेंस हुई। हरियाणा व पंजाब के हर भाग से इस कांफ्रेंस में लोग सम्मलित हुए। लाला लाजपत राय इस कांफ्रेंस में मुख्य वक्ता थे। इस कांफ्रेंस में अनेक प्रस्ताव पास हुए जिनमें महत्वपूर्ण निम्नलिखित है-

1. प्रत्येक जिले में कांग्रेस की शाखाएं स्थापित हो।
2. स्थानीय समस्याओं जैसे अधिक कर, सरकारी अत्याचार, बेगार आदि का निवारण के लिए जिला कांग्रेस कमेटियां प्रयत्न करें।
3. हिंदू मुस्लिम एकता पर जोर दिया गया। परिणामस्वरूप सर फजले हुसैन जो मुसलमानों के नेता थे और मुस्लिम लीग भी कांग्रेस के समर्थन में आ गई।

अंबाला कांफ्रेंस के प्रस्ताव के फलस्वरूप हरियाणा के प्रत्येक जिले में फरवरी 1907 तक कांग्रेस की जिला शाखाएं स्थापित हो गई। लेकिन उस समय तक कांग्रेस का यह आंदोलन जन साधारण तक नहीं पहुंच पाया था केवल मध्यम वर्ग के शहरी लोगों तक ही इसका प्रभाव था। हां, आर्य समाज के माध्यम से परोक्ष रूप से इसका राष्ट्रवादी संदेश कतिपय गांवों के किसानों तक पहुंच पाया था। किंतु यह प्रभाव व्यापक न हो पाया। इस समय मुश्किल से कोई पांच सात प्रतिशत ग्रामीण ही कांग्रेस के कार्यक्रम से परिचित थे।

लाला लाजपत राय का निष्कासन

9 मई 1907 को लाला लाजपतराय को पंजाब सरकार के कहने पर भारत सरकार ने देश निकाला देकर माण्डले (बर्मा) भिजवा दिया। इससे समस्त भारत में बैचेनी सी फैल गई। सब जगह जलसे और जलुसों से रोष प्रकट किया गया। पत्र पत्रिकाओं में सरकार के इस निन्दनीय कार्य के विरूद्ध सम्पादकीय लेख लिखे गये। कुछ क्रान्तिकारी नवयुवकों ने हिंसात्मक कार्यवाही भी की।

दूसरी तरफ सरकार ने भी जन आन्दोलन को कुचलने में कोई कसर बाकी न छोड़ी। जलसे जलुसों की मनाही कर दी। समाचार पत्रों पर कड़ा नियन्त्रण लगा दिया, राजनीतिज्ञ नेताओं को जेल में डाल दिया। हरियाणा पर सरकार की वक्र द ष्टि और भी तीखे ढंग से पड़ी। नवम्बर 1907 में एक विशेष अध्यादेश द्वारा रोहतक और हिसार जिलों को 'सेडीसियस मीटिंग एक्ट' के अधीन रख दिया। नये एक्ट के लागू होने पर यहाँ राजनीतिक ही नहीं धार्मिक सभाओं पर की रोक लगा दी गई। ब्रिटीश पार्लियामेण्ट तक ने सरकार के इस रवैये की निंदा की किन्तु इसका कोई असर न हुआ।

सरकार की कठोर नीति का जनता पर बहुत बड़ा प्रभाव पड़ा। कांग्रेस की गतिविधियाँ स्थिर पड़ गई। और कितने ही लोग डरकर इस राष्ट्रवादी संस्था से अलग हो गये। लाला लाजपत राय के बहुत से मित्र भी उनसे नाता तोड़ बैठे।

किन्तु ऐसी स्थिति थोड़े दिन ही रही। 14 नवम्बर 1907 को लाला लाजपत राय को रिहा कर दिए जाने से राष्ट्रवादी आन्दोलन फिर जोर पकड़ गया। किन्तु दुर्भाग्य से उसी समय कांग्रेस में फुट पड़ गई और वह दो विरोधी गुटों गरम दल व नरम दल, में बँट गई। नरम दल वाले अंग्रेजों की न्याय प्रियता में पूर्ण विश्वास रखते थे। वे चाहते थे कि भारत को स्वराजय मिले, किंतु अंग्रेजी नियंत्रण के अन्तर्गत ही, इसके बाहर नहीं। दूसरी तरफ गरम दल वाले उग्रवादी थे जो अंग्रेजी राज्य का पूरी तरह अन्त चाहते थे। वे भारत की स्वतंत्रता में विश्वास रखते थे और वे यह स्वतन्त्रता भीख मांगकर नहीं वरन् शक्ति के बल पर प्राप्त करना चाहते थे।

कांग्रेस में यह फुट 1907 में सुरत अधिवेशन में खुलकर सामने आई। जुते चले और मारपीट के साथ अधिवेशन समाप्त हुआ। नरम दल वालों ने अधिवेशन की समाप्ति पर अपनी बैठक बुलाई और गरम दल वालों को कांग्रेस से बाहर निकाल दिया। निःसन्देह यह एक घातक बात थी। गरम दल के निष्कासन से राष्ट्रीय आन्दोलन शिथिल पड़ गया। अन्य प्रांतों की तरह हरियाणा प्रदेश पर भी इस फुट का बुरा प्रभाव पड़ा और यह आन्दोलन ठप्प हो गया।

क्रान्तिकारियों की गतिविधियाँ

राष्ट्रीय आन्दोलन की शिथिलता से हरियाणा के नवयुवकों को बड़ी मायूसी हुई। साथ ही, नरम दल के अधिकार में कांग्रेस संगठन में भी वे कुछ आशा नहीं कर सकते थे। अतः उन्होंने स्वयं ही कुछ करने का बेड़ा उठाया। उनका रूझान क्रान्तिकारी गतिविधियों की ओर बढ़ गया। उन दिनों पंजाब में अजित सिंह और उनकी "भारत माता सोसायटी" के तत्वाधान में क्रान्तिकारी गतिविधियाँ चल रही थी। उसका असर हरियाणा पर भी पड़ा। अम्बाला उन दिनों क्रान्तिकारियों का अच्छा खासा केन्द्र था। 20 नवम्बर 1909 को अम्बाला के डिप्टी कमिश्नर सिकेश को, जो कि राष्ट्रवादी आन्दोलन को कुचलने में सर्वाधिक दिलचस्पी ले रहा था, को बम्ब से उड़ाने की कोशिश की गई। लेकिन वह किस्मत से बच गया। इस घटना से सरकार हरकत में आ गई। तुरन्त ही मुरलीधर, दूनी चन्द माधोराम और डॉ० हरिनाथ मुखर्जी के घरों की तलाशी ली गई लेकिन सरकार के हाथ कुछ नहीं लगा।

10 नवम्बर जाट पलटन की क्रान्ति

10 नवम्बर जाट पलटन ने जिसमें रोहतक व हिसार के जाट युवक ने बंगाल के क्रान्तिकारियों से मिलकर क्रान्ति की योजनाएँ बनाई। इसके लगभग 145 सैनिकों ने एक गुप्त क्रान्तिकारी संस्था के सदस्य बनकर निम्नलिखित शपथ ली। "मैं आज से इस सभा का सदस्य हूँ और जब तक मेरी मात भूमि स्वतंत्र नहीं होती तब तक इसका सदस्य बना रहूँगा। मैं अपने देश के हित में काम करते हुए देश के और अपने शत्रुओं को बिल्कुल समाप्त करके ही दम लूँगा।

क्रान्तिकारी संस्था के सदस्य बनने के उपरांत जाट सैनिकों ने कलकत्ता के डायमण्ड हार्बर पर स्थित सरकारी खजाने को लूटने की योजना बनाई। किंतु दुर्भाग्यवश ललित मोहन चक्रवर्ती नामक उनके एक सहयोगी ने समय से पहले ही सरकार के समक्ष उनकी योजना का भण्डा फोड़ दिया। परिणामस्वरूप धर पकड़ शुरू हो गई। सुबेदार हरिराम, हवलदार चुनीलाल नायक

जोतराम, सिपाही सुरजन सिंह तथा उनके सैकड़ों साथियों को नौकरी से हाथ ही नहीं धोना पड़ा वरन् लम्बी-लम्बी सजाएं भी मिली।

मिण्टो मार्ले सुधार

इसी दौरान मिण्टो माले सुधारो द्वारा भारतीयों के बढ़ते हुए असंतोष को मिटाने की चेष्टा की गई। नरम दल के बुजुर्ग नेताओं ने उन्हें प्राप्त करके कुछ सुख की सांस ली और उग्रवादी नेताओं ने इन्हें अप्रयाप्त कह कर उनकी भर्त्सना की। हरियाणा के महान नेता बाल मुकुन्द गुप्त ने इन सुधारों को खुलकर विरोध किया। उनके शब्दों में-

"आज नहीं, कोई एक वर्ष से मार्ले साहब भारत के शासन सुधार का राग अलाप रहे थे। पर क्या किया। पहाड़ खोदकर जरा सी चुहिया निकाली है। आपकी कुछ पेंचदार बातों का तत्व इतना ही है कि बड़े लाट की तथा प्रान्तों की सत्ता में जमींदार और मुसलमान कुछ बढ़ाएं जाएं। जमींदार और मुसलमान तो अब भी कौसलों में बैठे हैं और पहले भी चुप बैठ चुके हैं, पर यह कभी भी नहीं देखा कि एक ने भी किसी उचित या अनुचित सरकारी काम पर चूँ भी की हो, आलोचना की कौन कहे। केवल काठ के पुतलों की भांति ये लोग बैठे रहते थे और अफसरों की हाँ में हाँ मिलाते रहते हैं। क्या सरकार ऐसा एक भी मेम्बर बता सकती है जिसकी आलोचना या सलाह से उसे कुछ लाभ पहुँचा हो? परामर्श सभाओं की बात लीजिए। यह सब राजकुमारी की सेवा की भांति सरकारी शोभा बढ़ाने के लिए बनाई गई है।"

हरियाणा में ऐसी ही प्रतिक्रियाओं के अलावा सुधारों के प्रति कोई विशेष प्रतिक्रिया नहीं हुई। यहाँ की साधारण जनता को तो पता भी नहीं चला कि यह सुधार क्या है और किस लिए हैं?

होमरूल आन्दोलन

होमरूल आन्दोलन का संचालक बाल गंगाधर तिलक और मि. एनी बेसेन्ट ने किया। शीघ्र ही यह भारत की आजादी का एक जन आंदोलन बन गया। हरियाणा में नेकी राम शर्मा ने इस आन्दोलन में खुब बढ़ चढ़ कर काम किया। रोहतक के डिप्टी कमिश्नर ने उन्हें बुलाकर डाँटा कि युद्ध के दौरान वह इलाके में बगावत फैल रहा है, और इस कार्य के लिए उसे सख्त सजा मिल सकती है। शर्मा जी ने कहा की वह यह सब जानते हैं। डिप्टी कमिश्नर ने प्रलोभन भी दिया और कहा "आपको इधर जेल मिलेगा और उधर सरकार की मदद करने के एवज में 25 मुरब्बे जमीन। जमीन का इंतजाम अभी करवा देता हूँ। सोच लो। "सोच लो" पंडित जी ने गंभीर होकर कहा मैं 25000 मुरब्बे से भी प्रसन्न नहीं हो सकता। मुझे सारे भारत की जमीन चाहिए जिस पर आप लोगों ने अवैध अधिकार कर रखा है। डिप्टी कमिश्नर बेहद क्रुद्ध हुआ और पंडित जी को चले जाने का आदेश दिया।

बाल गंगाधर तिलक को सरकार ने उत्तर भारत नहीं आने दिया था उनकी अनुयायियों में नेकी राम शर्मा ने होमरूल का उत्तरी भारत में खूब प्रचार किया। जब जुलाई 1918 में वे दिल्ली में लक्ष्मी नारायण धर्मशाला में एक सभा को सम्बोधित कर रहे थे तो उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया। बाद में केस जीतकर बरी हो गये। इसके बाद नेकी राम उत्तर भारत के एक प्रसिद्ध नेता बन गये। अम्बाला में होमरूल आंदोलन का नेत त्व मुरलीधर और दूनीचन्द ने किया।

रोलट एक्ट का विरोध

अंग्रेजी सरकार ने राष्ट्रीय आन्दोलन को कुचलने के लिए केन्द्रीय निर्माण कौंसिल में दो बिल पेश किए। इन बिलों का विरोध करने के लिए महात्मा गांधी ने एक अखिल भारतीय आन्दोलन चलाने का फैसला किया। हरियाणा में रोलट कमेटी का गठन किया गया और इस बिल के विरोध के निमित्त सभाएं हुई और प्रस्ताव पास किए गये। प्रस्तावों की भाषा लगभग एक जैसी थी। यह सभा प्रस्तावित कानूनों के प्रति जो भी रोलट कमेटी थी सिफारसों के आधार पर सरकार बनाने जा रही है। अपना प्रबल विरोध प्रकट करती है। यदि ये बिल कानून बने तो इनसे नागरिकता के मौलिक अधिकार को पूर्णतया आघात पहुँचेगा।" सरकार ने जनता के इस विरोध की कोई परवाह नहीं की और रोलेट बिलों में से एक बिल पास कर दिया। इस एक्ट द्वारा पुलिस तथा मजिस्ट्रेटों की भारतीयों की गतिविधि को दबाने के असीम अधिकार दिए गये थे।

यद्यपि गांधी जी ने प्रथम महायुद्ध में ब्रिटिश सरकार को हर प्रकार से सहयोग दिया था किन्तु इस एक्ट ने उन्हें सरकार विरोधी बना दिया। उन्होंने स्पष्ट शब्दों ने कहा, "एक व्यक्ति या सरकार की शक्ति से डरकर सत्य और न्याय का पक्ष छोड़ देना अच्छी बात नहीं है। चाहे सरकार कितनी ही निरकुंश तथा शक्तिशाली क्यों न हो, उसे जनमत के सामने झुकना ही पड़ेगा।

उन्होंने एक्ट को निष्फल बनाने के लिए सत्याग्रह आन्दोलन चलाया। गांधी जी के संदेश को कांग्रेस के सदस्यों ने सारे हरियाणा में फैलाया।

हरियाणा में इस आन्दोलन के जोर शोर से फैलने का कारण आर्य समाज और इसके प्रभावशाली नेता स्वामी श्रद्धानन्द का इसमें भाग लेना था। रोहतक और हिसार के जाटों में आर्य समाज और स्वामी श्रद्धानन्द के प्रति गहरी आस्था थी। इन्हीं के प्रभाव से स्थानीय नेता चौधरी पीरू सिंह और चौधरी छोटू राम इस आन्दोलन में कूद पड़े।

30 मार्च 1919 को रोलट एक्ट के विरूद्ध देशव्यापी हड़ताल का दिन निश्चित किया गया बाद में यह तिथि 6 अप्रैल कर दी गई। परन्तु बदली हुई तिथि का पता हरियाणा में नहीं चल सका इस तिथि 30 मार्च को हिसार, गुड़गाँव, रोहतक, पानीपत, करनाल, अम्बाला में हड़ताल रखी गई। बाकी के शहरों में हड़ताल 6 अप्रैल को रखी गई। जगह जगह सभाएं हुई जिनमें एक्ट का प्रबल विरोध किया गया। सरकारी रिपोर्टो के अनुसार उन दिनों सभाओं में 2000 से लेकर 10,000 तक उपस्थिति होती थी। लोग इन सभाओं में बैज पहनकर जाते थे, कई तो काले वस्त्र भी धारण किए रहते थे, यदि कोई उनसे पूछता ऐसा क्यों कर रहे हो तो उनका उत्तर होता "बादशाह मर गया है, उसका शोक मनाया जा रहा है" वस्तुतः उन दिनों हरियाणा में चारों तरफ गजब की हलचल देखने को मिलती थी।

इन्हीं दिनों पंजाब तथा हरियाणा की परिस्थितियों का जायजा लेने जब महात्मा गांधी बम्बई से लाहौर जा रहे थे तो 9 अप्रैल 1919 को पलवल स्टेशन पर उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया। इससे साधारणतया सारे देश में और विशेषकर हरियाणा में एक आग सी लग गई। 12 अप्रैल को पलवल में इसके विरोध में हड़ताल रखी गई जो कि इतनी प्रबल थी कि इक्केवाले और गाड़ी वाले ने भी काम करने से इंकार कर दिया। इसके बाद हड़ताल, जलसे, जुलूस यही चीजें देखने को मिलती थी। रोहतक में भी ऐसी ही एक सभा में चौधरी छोटूराम, मियां मुश्ताक हुसैन, बाबू लाल चन्द, श्यामलाल और चौधरी लाल सिंह ने सरकार के विरोध में खुले विद्रोह का आह्वान किया। सरकार ने इस बागी कदम उठाने पर इन सब वकीलों के लाईसेंस जब्त कर लिए।

ऐसे हालात में 13 अप्रैल को जालियाँवाला बाग की खुली घटना हो गई। इसके बाद वातावरण में अत्याधिक तनाव आ गया। शान्तिपूर्ण हड़ताल का सिलसिला पहले से भी अधिक तेज गति से चल पड़ा। सरकार के भरसक प्रयत्न करने पर भी सेना द्वारा फ्लेग मार्च करने पर भी बहुत सी जगह हिंसात्मक घटना फैल गई। 14 अप्रैल को बहादुरगढ़ के रेल कर्मचारी, मजदूर तथा सामान्य जनता ने रेलवे स्टेशन पर आक्रमण कर दिया। बड़ी मुश्किल से रेलवे स्टेशन बचा। अगले दिन रोहतक व समर गोलपूर के बीच टेलीग्राफ के तार काट दिए गये। उसी दिन गोहाना के पोस्ट आफिस पर आक्रमण हुआ और टेलीग्राफ के तार काट दिए गये। उसी दिन शहर में 'क्रान्तिकारियों का सन्देश, के शीर्षक वाले भयंकर पोस्टर सब जगह चिपकाए गये। कैथल में उत्तेजित भीड़ ने रेलवे स्टेशन पर आक्रमण किया और भारी क्षति पहुँचाई। 19 अप्रेल का अम्बाला छावनी में 1134 सिख पायनीर रेजिमैन्ट थे स्टोर में रात के समय आतंकवादियों ने आग लगा दी। इससे समस्त छावनी में आतंक छा गया। 20 अप्रैल को रोहतक में जाट हाई स्कूल के समीप नहर विभाग के टेलीफोन के तार काट दिए गये। इस प्रकार उन दिनों लगभग हर जगह से छोटी मोटी तोड़ फोड़ के समाचार सरकार के पास पहुँच जाते थे।

आन्दोलन की इन हिंसात्मक गतिविधियों से चिंतित होकर सरकार ने हरियाणा के करनाल और गुड़गाँव जिलों को पुलिस एक्ट की धारा 15 के अधीन कर दिया। रोहतक 'हिंसार पहले से ही सेडिशियस मीटींग एक्ट 1907 के अधीन थे। इस प्रकार समस्त हरियाणा पुलिस के नियंत्रण में आ गया। किन्तु समसामयिक रिकार्डो को देखने से ऐसा प्रतीत होता है कि राष्ट्रवादियों पर इसका कोई प्रभाव नहीं पड़ा। उनका प्रचार कार्य अवश्य इससे प्रभावित हुआ। अब पुलिस उनकी सभाएं आदि नहीं होने देती थी यह सब कार्य उन्हें गुप्तरूप से चुपचाप करना पड़ता था।

तोड़ फोड़ की वारदातों को रोकने के लिए रोहतक जिले के प्रत्येक गाँव को ही टीकरी पहरा देने के आदेश दिए गये। 19 अप्रैल को कई गांवों में सरकार द्वारा लागू की गई चौकीदारी के विरूद्ध प्रबल आवाज उठाई। उन्होंने डिप्टी कमिश्नर को साफ कह दिया कि वे अपने गाँव में चौकीदारी नहीं करेंगे। सरकारी सम्पती की रक्षा की जिम्मेदारी सरकार स्वयं सम्भाले। इस प्रकार की बढ़ती हुई अशांति को खत्म करने के लिए सरकार ने धरपकड़ शुरू की। 28 अप्रेल को रोहतक जिले के आर्यसमाजी और कांग्रेसी नेता चौ. टेकराम को डिफेंश ऑफ इण्डिया रूल्स के अधिक गिरफ्तार कर लिया गया। सरकार ने उसके विरोध में कहा कि वह आतंकवादी हैं। यदि उसे न पकड़ा गया तो जाटों को भड़काकर बगावत पर आमदा कर देगा। इन

सबका फल यह निकला कि उन पर किसान लोग भी बहुत बड़ी संख्या में आन्दोलन में शामिल हो गये। शहरों और कस्बों में तो इसका खुब प्रचार था ही।

असहयोग आन्दोलन

असहयोग आन्दोलन का संचालन कांग्रेस ने महात्मा गांधी के नेत त्व में किया। इस आन्दोलन का विधिवत् उद्घाटन 1 अगस्त 1920 को किया गया। जालियाँवाला बाग के हत्याकाण्ड तथा खिलाफत आन्दोलन की अवहेलना से अब महात्मा गांधी का विश्वास अंग्रेजों की न्याय प्रियता से बिल्कुल उठ गया था। उन्होंने अंग्रेजों के प्रति वफादारी की सब निशानियां "केसरे हिन्द" की उपाधि ''जुलुवार मेडल'' और ''बोवर वार मेडल'' सरकार को लौटा दिए। अब विदेशी सरकार के वफादार नागरिक की जगह विद्रोही नेता बन गये थे। उन्होंने अंग्रेजी सरकार गुण्डो व शैतानों की सरकार कहना शुरू कर दिया था। महात्मा गांधी ने जिस सत्याग्रह रूपी राजनैतिक हथियार को रोलट एक्ट के विरूद्ध इस्तेमाल किया था इसे ही असहयोग आन्दोलन का सिद्धान्त बना दिया।

4 सितम्बर 1920 कलकत्ता में कांग्रेस के विशेष अधिवेशन में, उसकी अध्यक्षता लाला लाजपतराय ने की, गांधीजी एक ऐतिहासिक प्रस्ताव के माध्यम से पूर्णतया अहिंसावादी मार्ग पर चलते हुए निम्नलिखित ढंग से सरकार से असहयोग आन्दोलन करने की बात कही।

1. सरकार द्वारा दी गई सब उपाधियाँ तथा अवैतनिक पद छोड़ दिए जाए तथा नगरपालिकाओं आदि के मनोनीत सदस्य इस्तीफा दे दे।
2. सरकार द्वारा बुलाए दरबारों, तथा अन्य सरकारी तथा अर्ध सरकारी उत्सवों आदि में भाग न लिया जाए।
3. सरकार द्वारा चलाए जाने वाले स्कूलों तथा कालेजों से धीरे-धीरे बच्चों को निकालकर राष्ट्रीय स्कूलों तथा कालेजों में डाला जाए।
4. वकील सरकारी न्यायालयों का बहिष्कार करेंगे तथा सरकारी न्यायालयों के स्थान पर आपसी झगड़ों के निपटारे के लिए पंचायत स्थापित की जाए।
5. सैनिक, बाबू तथा मजदूरों की भर्ती देने वाले वर्गो को मेसोपोटामिया आदि में जाने के लिए भर्ती नहीं होना चाहिए।
6. नई कौंसिलों में होने वाले चुनावों में कोई उम्मीद्वार खड़ा न हो। यदि कोई सदस्य मना करने पर भी चुनाव लड़े तो उसे वोट न दिया जाए।
7. विदेशी माल का बहिष्कार किया जाए।

गांधी जी द्वारा पेश किया गया यह प्रस्ताव थोड़े से मतों से पास हुआ और इसके पास होते ही सारा देश असहयोग की लहर में बह गया।

हरियाणा में हजारों की संख्या में कांग्रेसजन इस आन्दोलन में कूद पड़े। शूरू में प्रचार कमेटियों का गठन किया गया जिन्होंने शहरों और गांवों का दौरा कर आन्दोलन के पक्ष में प्रचार किया। रोहतक कांग्रेस कमेटी ने पाँच सदस्यीय एक प्रचार कमेटी का गठन किया इसके अध्यक्ष श्री राम शर्मा थे। इस कमेटी ने सोनीपत, झज्जर, डीद्यल, जहाजगढ़, मातनहेल, लड़ायन, बेरी साल्हावास, कोसली व गुडीयानी का फरवरी माह में दौरा किया दूसरी कमेटी में रूपराम व वेश्य हाईस्कूल के दो विद्यार्थी और एक अध्यापक थे ने बहु, मदीना व महम का दौरा कर असहयोग के पक्ष में भाषण दिए। तीसरी कमेटी में रामलाल व दौलतराम गुप्ता थे इन्होंने कलानौर, केलगां, खरक, काहनौर और सुण्डाना गांवों का दौरा कर प्रचार किया। इन सबके अलावा नेकीराम शर्मा, दुनीचन्द, श्यामलाल व के० ए० देसाई हिसार करनाल व अम्बाला जिलों का दौरा कर प्रचार किया।

रोहतक असहयोग आन्दोलन का गढ़ बन गया था। 8 अक्टूबर 1920 को रोहतक के रामलीला मैदान में एक बड़ी रैली का आयोजन किया गया, इसमें महात्मा गांधी मुख्य अतिथि थे। गांधी के अलावा मोहम्मदअली और शोकत अली ने भी इसमें भाग लिया। यहां महात्मा गांधी ने इस बेईमान सरकार से असहयोग करने की अपील की। 22 अक्टूबर 1920 को भिवानी में अम्बाला डिवीजन पोलीटिकल कांफ्रेंस का आयोजन किया गया जिसमें महात्मा गांधी मौलाना आजाद, मौलाना मोहम्मद अली, शौकत अली, डॉ० अंसारी, लाला दुनी चन्द, देवदास गांधी आदि नेता भी आये। इस सभा की अध्यक्षता हरियाणा के ग्राण्ड ओल्ड मैन

कहे जाने वाले मूरलीधर ने की। इसमें लगभग 2000 प्रतिनिधी तथा 8000 दर्शक उपस्थित थे। यहाँ महात्मा जी तथा अन्य नेताओं ने असहयोग का कार्यक्रम जनता के सामने रखा। गांधी जी ने यहीं पर प्रथम बार ब्रिटीश सरकार के लिए 'शैतानी सरकार' शब्द का प्रयोग किया उन्होंने सरकार से असहयोग करने, सरकारी नौकरियाँ छोड़ने, वकालत त्यागने और विद्यार्थियों को स्कूल व कालेज छोड़ने का अह्वान किया।

6-8 नवम्बर 1920 का असहयोग आन्दोलन का प्रस्ताव पास करने के लिए रोहतक में एक कांफ्रेंस का आयोजन किया गया। लाहौर के एक प्रसिद्ध कांग्रेस नेता चौ. रामभज दत्त ने इसकी अध्यक्षता की। इसके अलावा लाला लाजपत राय स्वामी सत्यदेव ने भी इसमें भाग लिया। जब कांफ्रेंस के सामने असहयोग का प्रस्ताव लाया गया तो किसान नेता चौ. छोटू राम ने इसका विरोध किया। वे स्वदेशी अपनाने पंचायतों की स्थापना करने तथा स्वदेशी सामान के बहिष्कार के पक्ष में तो थे लेकिन कानून तोड़ने, कर न देने और पद त्यागने के विरूद्ध थे। उनका कहना था कि कानून तोड़ने से अराजकता फैल जाएगी अगर किसान कर नहीं देगा तो सरकार उसकी जमीन छीन लेगी किसान खाएगा क्या। उसे शीघ्र ही सरकार के सामने झुकाना पड़ेगा। इसी प्रकार पदों का होना सम्मान सूचक का उनको त्यागना असम्भव कार्य था। फिर ऐसे काम क्यों किए जाए जिसमें असफलता ही हाथ लगने की सम्भावना हो। छोटू राम इतना कहने पर भीड़ में से किसी ने शर्म-शर्म की आवाज कर दी। इस पर झगड़ा हो गया। इसमें स्वामी सत्यदेव व नेकीराम शर्मा को चोट आई तथा चौधरी राम भज दत्त को बेइज्जत किया गया। अन्त में प्रधान से सभा विसर्जित कर दी।

दूसरे दिन सभा फिर हुई। लेकिन इसका चौ. छोटुराम, चौ. लाल चन्द, चौ. नवल सिंह और उनके सहयोगियों ने बहिष्कार किया। असहयोग का प्रस्ताव तो इसमें पास हो गया। लेकिन चौ. छोटुराम जैसे महान नेता को खो देने से कांग्रेस के आन्दोलन को एक गहरा झटका लगा। अब केवल थोड़े से जाट या किसान नेता कांग्रेस में बच गये। इनमें जाट हाई स्कूल के हेडमास्टर बलदेव सिंह, बोहर के जमींदार देवी सिंह व सांधी के जमींदार मातुराम थे।

इस विघटन के बाद भी शहरों और गांवों में असहयोग आन्दोलन काफी लोकप्रिय रहा। 26 मई 1921 को झज्जर में एक राजनैतिक कांफ्रेंस का आयोजन किया गया। इसमें भाग लेने हरियाणा से बाहर के कई प्रसिद्ध हिन्दू व मुस्लिम नेता आये। इनमें अलीगढ़ नेशनल कालेज के विद्यार्थी मौलवी अब्दुल सतार दिल्ली के मौलवी कुतुबुदीन व आसफ अली नेकीराम शर्मा व गांवों के लोगों ने भाग लिया। यहाँ पर इन नेताओं ने विदेशी वस्तु त्यागने, सरकारी अदालतों का बहिष्कार करने का आह्वान किया। मौलवी अब्दुल सतार ने हिन्दू मुस्लिम एकता का आह्वान करते हुए कुरान व हदीश की कुछ लाईने पढ़कर सुनाई और कहा कि असहयोग की इजाजत तो इस्लाम भी देता है।

हिसार व भिवानी में बहुत से धनी व्यापारी कांग्रेस के सदस्य थे। इनमें ला० मेला राम, लाला राम चन्द्र, लाला विधि चन्द आदि प्रमुख थे। यहाँ पर यह आन्दोलन बड़े जोर-शोर से चला। जिला गुड़गाँव यद्यपि रोहतक व हिसार की तरह राजनैतिक रूप से जाग त नहीं था। फिर भी नेकी राम शर्मा, लाला श्याम लाल वे श्री राम शर्मा ने इसका दौर करके लोगों को जाग त किया। फिरोजपुर सिरका में मेवो ने असहयोग आन्दोलन में बढ़ चढ़कर भाग लिया।

असहयोग आन्दोलन के चलते बहुत से लोगों ने अंग्रेजी सरकार से प्राप्त सम्मानीय पद व पदक लौटा दिए अम्बाला के लाला मुरलीधर ने अपना राय बहादूरी का खिताब लौटा दिया। मिर्जा नादीर बेग, गणपत राय, गोकल चन्द, नैन सुख दास इत्यादि ने कुर्सी, नशीन मेडल व सर्टीफिकेट लौटा दिए। मीताथल के अखेराम ने अपना रिकूटिग बेज और सनद सरकार को लौटा दी। यहाँ यह बात सामने आती है कि बहुत कम लोगों ने अपने टाईटल लौटाए। क्योंकि जिन लोगों को सरकारी टाईटल मिले हुए के वे सब सरकार के नजदीक व लायल थे और उनका सरकार से दूर होना मुश्किल बात थी।

गांधी जी के आह्वान पर विद्यार्थी भी आन्दोलन में कूद पड़े। झज्जर के मोती चन्द शर्मा ने जो लॉ कालेज लाहौर के छात्र संध के अध्यक्ष थे ने बहुत से साथियों समेत कालेज छोड़ दिया। सनातन धर्म कालेज लाहौर के अयोध्या प्रसाद और राम स्वरूप शर्मा जी कालेज से बाहर आ गये। श्री राम शर्मा व रामफल हिन्द कालेज दिल्ली, देशबन्धु सेंटस्टीफन कालेज दिल्ली व जानकीदास, रामजस कालेज दिल्ली ने भी अपने कालेज छोड़ दिए। चन्द्र सेन, मोहन स्वामी व मंगलीराम ने स्कूल छोड़ दिया। रोहतक के गोड़ हाई स्कूल के सभी विद्यार्थियों ने जब तक वह नेशनल स्कूल नहीं बना स्कूल छोड़ दिया। छात्रों के बहिष्कार के चलते रोहतक के जाट स्कूल व वैश्य स्कूल भी बन्द हो गये। 30 नवम्बर 1920 को भिवानी के विद्यार्थियों ने शपथ ली कि जब तक विदेशी शासन नहीं हट जाता तब तक स्कूल नहीं जाएंगे। हिसार में भी छात्रों ने स्कूलों का बहिष्कार किया। हिन्दू

हाई स्कूल सोनीपत पंजाब विश्वविद्यालय से अलग हो गया। बहादुरगढ़ हाई स्कूल से बहुत से विद्यार्थी बाहर निकल आए।

इन दिनों विद्यार्थियों की शिक्षा के लिए दूसरी तरफ भी प्रयास किए गये। 11 फरवरी 1921 को लगभग 25000 लोगों की उपस्थिति में गांधी जी ने वैश्य राष्ट्रीय हाई स्कूल की नींव रखी जहाँ अंग्रेजी स्कूल को छोड़कर आने वाले विद्यार्थी पढ़ सकते थे। जाट स्कूल रोहतक ने भी राष्ट्रीय रूप धारण कर लिया। भिवानी के वैश्य हाई स्कूल को भी फ्री नेशनल स्कूल में परिवर्तित कर दिया गया। लेकिन अम्बाला व करनाल में स्कूल व कालेजों का बहिष्कार सफल नहीं हो सका। रोहतक के स्कूल भी सुविधाओं के अभाव व स्थानीय विरोध के कारण अच्छी प्रकार नहीं चल सके।

हरियाणा में अंग्रेजी न्यायलयों का बायकाट भी किया गया लेकिन बायकाट कहने वाले केवल 25-30 वकील ही थे। जिनमें मुख्य हिसार के लाला श्यामलाल, अम्बाला के अब्दुल रशीद, गुलाम भैरव नौरंग, दुर्गाचरण, करनाल के रामचन्द्र वैद्य द्वारकादास, मुहमद अब्दुल मजीद और जुगल किशोर कई कस्बों में राष्ट्रीय पंचायतें भी बनी। मई 1921 में भिवानी में राष्ट्रीय न्यायालय भी स्थापित हुआ। पर ये न्यायालय व पंचायतें ज्यादा सफल नहीं हो सके। क्योंकि इन अदालतों को लोगों का सहयोग नहीं मिल पाया। जिन लोगों के केस थे वे सब गांवों के किसान थे और कांग्रेस प्रोग्राम अभी गांवों तक पूरी तरह नहीं पहुंच पाया था।

लेकिन इस सब के बावजूद विदेशी माल के बहिष्कार का कार्यक्रम बड़े जोर शोर से चला। लगभग हर कस्बे और बड़े-बड़े गांवों में स्वदेशी का प्रचार हुआ। हासी के लगभग 7000 मुसलमानों ने एक मत से विदेशी कपड़े के बहिष्कार करने की शपथ ली। हासी की हिन्दू स्त्रियों ने भी विदेशी कपड़े का बहिष्कार किया। हिसार, सिरसा व भिवानी के कपड़ा व्यापारियों ने विदेशी कपड़े का व्यापार न करने की शपथ ली। स्वदेशी आन्दोलन का प्रचार करने के लिए मदन मोहन मालवीय और मोहम्मद अली ने 15 अक्टूबर को रोहतक जिले का दौरा किया। उन्होंने लोगों को खद्दर पहनने को प्रोत्साहित किया। इसके परिणामस्वरूप झज्जर के 32, बहादुरगढ़ के 17 और बेरी के भी 17, कपड़ा व्यापारियों ने विदेशी कपड़ा न खरीदने क शपथ ली। मई 1921 में बेरी में भारतीय कपड़ा बनाने की एक फैक्ट्री स्थापित की गई। इससे हरियाणा में स्वदेशी के प्रचार की एक नई शुरूआत हुई।

जिला अम्बाला, और करनाल भी इस मामले में पीछे नहीं रहे। 1921 में स्वामी श्रद्धानन्द ने इन जिलों का दौरा किया और लोगों को विदेशी कपड़े का बहिष्कार करने व खद्दर अपनाने के लिए प्रोत्साहन किया। अम्बाला के कांग्रेस वालटियर्स 60 कपड़े के व्यापारियों के पास गये और उनसे प्रार्थना की कि विदेशी कपड़ा न मंगवाए। उनमें से 45 ने उनकी बात तुरंत मान ली। करनाल में 400 लोगों ने स्वदेशी अपनाने की शपथ ली। करनाल में खादी की प्रर्दशनी भी लगी इसमें अच्छी खादी बनाने बालों को उचित ईनाम दिया गया। रेवाड़ी में एक शादी स्थगित करनी पड़ी। क्योंकि वर ने विदेशी वस्त्र और आभूषणों में लिपटी वधु से विवाह करने से इंकार कर दिया। रोहतक व भिवानी में विदेशी कपड़े की होली भी जलाई गई।

शराब की ब्रिकी ना हो इसके लिए भी प्रयास किए गये। शराब की दूकानों का कांग्रेस के कार्यकर्ता पहरा देते थे। रोहतक में शराब के ठेके की वार्षिक नीलामी के समय कोई बोली देने नहीं आया। अम्बाला में शराब की दुकानों को पूरी तरह घेर लिया गया। हिसार की म्युनिसिपल कमेटी ने सरकार को नोटिस दिया कि वह उसकी सीमा में शराब की बिक्री बन्द कर दे। हिसार में ही जब वालटियर्स शराब के ठेके की नीलामी के समय बोली देने वालों को रोक रहे थे तो उनपर पुलिस ने लाठी चार्ज किया। लेकिन फिर भी दुकानों की बोली नहीं हो सकी।

नई पंजाब कौंसिल के चुनाव का बायकाट किया गया। कांग्रेस ने इस क्षेत्र में केवल एक उम्मीदवार खड़ा करने का निर्णय लिया था। वह थे अम्बाला के लाला दूनी चन्द। किन्तु असहयोग प्रस्ताव के पास होते ही उन्होंने अपना नाम वापस ले लिया। बहुत मतदाताओं ने चुनाव में मत ही नहीं डाले। यहाँ नगरों में बहुत थोड़े मत पड़े। लेकिन देहात में मतदान कुछ ज्यादा रहा।

असहयोग आन्दोलन के कार्यक्रम के दौरान ही वालंटियर्स की नियमित भर्ती भी की गई और सत्याग्रहियों की सूचियाँ भी तैयार की गई। साथ ही कांग्रेस के प्रत्येक कार्यकर्ता को कांग्रेस कमेटी के केन्द्रीय स्थान पर असहयोग तथा सत्याग्रह करने की शिक्षा भी दी गई। लोगों का मनोबल बढ़ाने और असहयोग आन्दोलन को तीव्र करने के लिए स्थानीय कांग्रेस ने दिल्ली से अनेक नेताओं के साथ महात्मा गांधी को भी आमन्त्रित किया। गांधी जी ने फरवरी 1921 में हरियाणा का फिर दौरा किया इस बार उनके साथ लाला लाजपत राय, माता कस्तुरबा, मौलाना आजाद, प्यारे लाल और जमना लाल बजाज भी थे। उन्होंने 15 फरवरी को भिवानी के मिलेट्री केम्पींग ग्राउण्ड में एक सभा की। इसमें 30,000 लोग उपस्थित थे। सभा की अध्यक्षता लाला लाजपतराय

ने की। 16 फरवरी को गांधी जी ने रोहतक से 22 किलोमीटर दूर कलानौर नामक कस्बे में एक सभा को सम्बोधित किया। इसमें 5000 किसानों ने भाग लिया। इनमें से अधिकतर मुसलमान थे।

महात्मा गांधी के इस दौरे से हिसार और रोहतक में चल रहे असहयोग आंदोलन मे एक बार फिर नई जान आ गई। गांधी जी के आह्वान से लोगों का मनोबल ऊँचा हो गया। गांधी जी तथा अन्य नेताओं के भाषणों से असहयोग काफी लोकप्रिय हो गया।

हरियाणा में असहयोग आन्दोलन के बढ़ते हुए कार्यक्रम से सरकार की बैचेनी बढ़ गई। सरकार ने इससे जुड़े नेताओं और कार्यकर्ताओं की गिरफ्तारी शुरू कर दी। सर्वप्रथम हिसार से नेकीराम शर्मा को गिरफ्तार कर जेल दिया गया। वहाँ पर उन्हें यातनाएं दी गई। उसके बाद लाला श्यामलाल सत्याग्रही लाला मेवा राम, लाला गोकल चन्द, लाला विधी चन्द, लाला राम करण दास, पंडित राम कवार, के.ए. देसाई, चौधरी अखेराम, लाला देवी सहाय, लाला हरदेव सहाय व अन्य 60 कार्यकर्त्ताओं को गिरफ्तार किया गया। रोहतक जिले से 40 श्री राम शर्मा, हकीम बशीर अहमद खाँ, चौधरी जेवुल्ला खाँ, प० जनार्दन शर्मा, मास्टर बलदेव सिंह, लाला दौलत राम, चौ० हरफुल सिंह, मौलवी अब्दुल गफ्फार, राव मंगलीराम तथा अन्य 30, 35 व्यक्ति गिरफ्तार हुए। इनमें से अधिकांश को हिसारे जेल में रखा गया। इस प्रकार सारे हरियाणा में सरकार ने कोई 500 लोगों को गिरफ्तार किया। पुलिस ने इन लोगों पर बड़े भारी अत्याचार किए लेकिन इससे आन्दोलन पर कोई विशेष फर्क नहीं पड़ा। एक नेता की गिरफ्तारी पर दूसरा नेता उसकी जगह ले लेता था और वातावरण हर प्रकार से पहले जैसा ही बना रहता था।

लेकिन जब आन्दोलन पूरे जोश पर था तो चौरी चौरा नामक स्थान पर एक हिंसात्मक घटना हो गई। एक थानेदार ने वहाँ कुछ लोगों को पीट दिया इससे उत्तेजित होकर भीड़ ने थाने पर हमला करके थानेदार तथा सिपाहियों को मार डाला। जब गांधी जी को इस घटना का पता चला तो उन्होंने आन्दोलन स्थगित कर दिया। ऐसे वेग से चल रहा आन्दोलन स्थगित किए जाने पर जनता को बुरा लगा। सुभाष चन्द्र बोस ने लिखा है। "राष्ट्रीय संघर्ष ऐसे समय पर बन्द कर दिया अत्यन्त दुखदायी था जबकि हम अपनी स्थिति सशक्त करते और प्रत्येक क्षेत्र में बढ़ते हुए दिखते थे।" आन्दोलन के रोक देने पर गांधीजी के अनेक भक्त उनके विरोधी हो गये।

सविनय अवज्ञा आन्दोलन

अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी ने फरवरी 1930 में गांधी जी को सविनय अवज्ञा आन्दोलन आरंभ करने का अधिकार दिया। 12 मार्च 1930 को गांधी जी नमक कानून तोड़ने के लिए अपने चुने हुए 79 साथियों को लेकर साबरमती आश्रम से डाण्डी की ओर चल पड़े। चौबीस दिन की यात्रा के बाद 6 अप्रैल को उन्होंने नमक कानून भंग किया। एक बार फिर देशव्यापी आन्दोलन प्रारंभ हो गया। इस आन्दोलन का कार्यक्रम स्वयं गांधी जी ने निर्धारित किया था। इसमें स्वतन्त्रतापूर्वक नमक बनाना, शराब व विदेशी कपड़े की दुकानों पर धरना देना। चर्खा कातना, विदेशी कपड़े जलाना सरकारी स्कूल व कालेज छोड़ना तथा सरकारी नौकरी से त्याग पत्र देना सम्मलित थे।

हरियाणा के भी सविनय अवज्ञा आन्दोलन को कांग्रेस के नेताओं और कार्यकर्ताओं ने जोर-शोर से शुरू किया। रोहतक के कांग्रेसी नेताओं ने झज्जर तहसील के एक गाँव जाहीदपुर जाकर जहाँ की कुओं का पानी अत्यधिक खारा था नमक बनाने का प्रोग्राम बनाया। लेकिन दूसरी तरफ सरकार भी चौकस थी। उन्होंने इस योजना को असफल कर दिया। यद्यपि जाहीदपुर में यह प्रोग्राम नहीं हो सका लेकिन रोहतक में यह कार्यक्रम सफल रहा। 10 अप्रैल को वहां मोहल्ला कल्लालाण में मंदिर के पास एक खारा कुएं से पानी लेकर नमक बनाया गया। पुलिस केवल खड़ी तमाशा देखती रही। शाम को अनाज मण्डी में एक जलसा हुआ जिसमें काफी लोग इकट्ठा हुए। साबरमती आश्रम से गांधी जी द्वारा भेजे गये अम्बाला के सुरजभान ने इसकी अध्यक्षता की। वह दिल्ली से अपने साथ नमक भी लाया था जब उनकी नीलामी की गई तो वह 100 रू० का बिका। 5 जून को रोहतक का एक जत्था जिसमें 25 वालटॉर्यस थे महात्मा गांधी से घरसाना (गुजरात) के सरकारी नमक डिपो पर ऐतिहासिक सत्याग्रह करके गिरफ्तारी देने भी गया। दूसरा जत्था इसमें भी 25 वालंटिर्यस थे रोहतक से पैदल पेशावर को चला। वे रास्ते में पड़ने वाले गांवों में कांग्रेस के प्रोग्राम के बारे में भाषण देते थे। पुलिस ने इन्हें करनाल के समीप गिरफ्तार कर लिया। ये सभी नौजवान थे जो रोहतक और गोहाना तहसील की पाठशालाओं से निकल कर आए थे।

गांधी जी को 4 मई 1950 को सत्याग्रह से पहले ही गिरफ्तार कर लिया गया। इसमें श्रीमति सरोजनी नायडू के नेत त्व में हरियाणा के वालंटियर्स ने भी धरने में भाग लिया। वहाँ पर पुलिस ने लाठीचार्ज कर दिया इसमें रोहतक के इन वालटियर्स को भयंकर चोटें आई।

रेवाड़ी में 20 अप्रैल को नमक बनाया गया। इसकी मात्रा कोई एक छटांक के करीब थी। लेकिन जब इसे नीलाम किया गया तो यह 1040 रू. में बिका। इस नमक का एक पैकेट 12 साल की एक लकड़ी कस्तुरबाई ने 60 रू. में खरीदा जो कि उसके द्वारा इकट्ठा किया गया, 2 पैसे प्रतिदिन के हिसाब से जेबखर्च था। 23 अप्रैल को पुनः इसी विषय में एक सार्वजनिक सभा की गई जिसमें नेकीराम शर्मा और गांधी जी के विशेष प्रतिनिधी खड्ग बहादुर ने भाषण दिया इन्होंने रेवाड़ी के लोगों को नमक कानून तोड़ने पर बधाई दी।

हिसार भी असहयोग आन्दोलन का एक प्रमुख केन्द्र था। नेकी राम शर्मा और के.ए. देसाई के नेत त्व में यह कांग्रेस कार्यकर्ताओं ने 21 अप्रेल को नमक बनाया। नमक बनाने से पहले एक जुलुस निकाला गया फिर कटला रामलीला पहुँचकर एक जलसा हुआ फिर एक हजार लोगों की अनुपस्थिति में नमक बनाया गया जिसे थैलियों में भर-भर कर बेचा गया। सिरसा, हाँसी और फतेहाबाद में भी ऐसा ही हुआ।

भिवानी भी असहयोग आन्दोलन का प्रमुख केन्द्र था। यह अम्बाला डिविजन का एक बड़ा शहर था। 14 अप्रैल 1930 को यहाँ नमक बनाने का ऐलान किया गया। हासी और हिसार के जत्थे पैदल तथा सिरसा का ट्रेन से भिवानी इस कार्यक्रम में भाग लेने पहुँचा। पहले शहर के मुख्य बाजारों और गलियों में एक जुलुस निकाला गया। इसके बाद स्थानीय लोगों को मिलाकर बापौड़िया गेट पर लगभग 500 लोग इकट्ठा हुए। गणपतराय और नेकीराम शर्मा आदि नेताओं ने भाषण दिए और फिर नमक बनाकर कानून तोड़ा।

अम्बाला में अब्दुल गफार खाँ और भगत राम सहगल के नेत त्व में नमक कानून भंग किया गया। यहाँ लाला दूनी चन्द की पुत्री विद्यावती ने भी सात स्त्रियों को साथ लेकर भारी जन समुह के सामने नमक बनाया। इसी प्रकार करनाल, थानेदार लाडवा और पुण्डरी में भी नमक बनाया गया तथा सार्वजनिक सभाएं की गई। पानीपत में भी ऐसा ही हुआ।

विदेशी कपड़े का बहिष्कार करना भी आन्दोलन का एक भाग था। इसके लिए हरियाणा में 17 मार्च का दिन निश्चित किया गया। इससे पहले प्रचार का कार्यक्रम बनाया गया। मदन मोहन मालवीय, गोपीचन्द भार्गव नेकी राम शर्मा, सूरज भान, अब्दुल गफुरखाँ इत्यादि नेताओं ने विदेशी कपड़े के बहिष्कार के प्रोग्राम को लोकप्रिय बनाने के लिए सारे हरियाणा का दौरा किया। अनेक स्थानों पर विदेशी कपड़े की होली जलाई गई। अम्बाला, रोहतक और भिवाना के व्यापारियों ने भविष्य में विदेशी कपड़े का व्यापार न करने का वायदा किया। अम्बाला में स्त्रियों ने मंदिर के सामने धरना दिया और केवल उन्हीं लोगों को अन्दर जाने दिया जो खद्दर पहले हुए थे। यह प्रयोग सफल रहा और बहुत से लोग खद्दर पहनने लगे। अम्बाला जिले में 5000 लोगों ने खादी पहनने की कसम ली।

शराब की दुकानों की पीकेर्टींग भी की गई। इसके दो उद्देश्य थे। पहला नशीले द्रव्य की खपत का खत्म करना तथा दूसरा सरकारी आबकारी में कमी करना था। कई स्थानों पर तो शराब खरीदने वालों को गधे पर बिठाकर, काला मुँह करके जूतों की माला पहना कर जबर्दस्ती शहर की गलियों के बाजारों में घुमाया गया। कांग्रेस के वालटियर्स ने 1 मई को रोहतक में शराब की दूकान की पीकेटिंग की जिसके परिणामस्वरूप शहर में शराब की खपत बहुत कम हो गई। अम्बाला में बयाला गांव की शराब की दुकान की पीकेटिंग की गई। 8 अगस्त को अम्बाला में ही एक शराब के ठेकेदार के घर के बाहर धरना दिया गया और उसका सामाजिक बहिष्कार किया गया।

गांधी जी के प्रभाव के कारण अब बहुत से किसान कांग्रेस के प्रभाव में आ गये थे। वे अब इस आन्दोलन में खुलकर सामने आ गये थे। उनका साथ अनुसूचित जाति के लोगों ने भी दिया। बहुत सी जगह इन लोगों ने राष्ट्रीय आन्दोलन में कन्धे से कन्धा मिला आहुतियां दे डाली, हिसार के पुठी मंगला गांव ने तो इस मामले में एक नई शुरूआत की। 10-13 मार्च 1930 में वहां पर कांग्रेस जनों द्वारा एक पंचायत का आयोजन किया गया। इस पंचायत में इन लोगों ने यह फैसला किया कि कोई भी अनुसूचित जाति आदि के लोग उन लोगों का कोई भी काम नहीं करेंगे जो कांग्रेस आन्दोलन के विरूद्ध हैं या उससे जुड़े हुए नहीं हैं। सी० एन० चन्द्रा डिप्टी कमिश्नर हिसार के शब्दों में 'इन पंचायतों के कारण इस गांव के आगे चमारों ने यह वादा कर लिया कि वह गैर कांग्रेसियों का कोई कार्य नहीं करेंगे। सब धानकों, नाईयों, बढ़ईयों भी यह तय कर लिया है कि जो

आदमी कांग्रेस विरोधी विचार रखते हैं उनका कोई काम नहीं करेंगे। इन लोगों ने लिखकर कह दिया कि यदि वे वायदे के पायबन्द नहीं रहेंगे तो दण्ड भरेंगे।

स्कूलों के छात्रों ने भी इस आन्दोलन में बढ़ चढ़ कर भाग लिया। भिवानी में छात्रों ने नमक बनाया पिकेटिंग में हिस्सा लिया और स्वदेशी के प्रचार का कार्य किया। हिसार के चन्दुलाल एंग्लोवेदिक स्कूल के 150 छात्रों ने सरकार की कड़ी चेतावनी के बावजूद सरकार विरोधी जुलूस में भाग लिया। हिसार के ही एक छात्र, मदनलाल पुत्र बिहारी लाल गांधी जी की गिरफ्तारी के विरोध में एक गजब का द श्य बनाया। उसने एक कुम्हार से गधा किराए पर लिया। उसके अगले और पिछले पैरों में अंग्रेजी कपड़े भी बनी पत्तलूने पहना दी, सिर पर हैट बांध दिया गले में टाई लगा दी पीठ पर विदेशी कपड़े का कोट लगा दिया और आंखों पर चश्मा पहना दिया। इससे खूब व्यंग हुआ।

रोहतक के वैश्य स्कूल के छात्रों ने आंदोलन के पक्ष में खूब प्रचार किया। रेवाड़ी के अहीर स्कूल के छात्रों ने शराब की दुकान की पीकेटिंग करने और विदेशी कपड़े का बहिष्कार करने में सक्रिय भाग लिया।

शाहबाद के डी ए वी स्कूल के छात्रों ने स्कूल के प्रांगण में नमक बनाकर अंग्रेजी कानून को तोड़ा। इसके बाद वे सड़कों पर चारों ओर जुलूस निकाला। जुलूस के आगे पांचवी कक्षा का छात्र राजेन्द्र सिंह झण्डा लेकर चल रहा था यह शाहबाद के पुलिस अधिकारी बचितर सिंह का पुत्र था। डी ए वी स्कूल करनाल के छात्रों ने भी नमक बनाया।

सरकार का रवैया

सरकार ने दमनकारी नीति अपनाकर आन्दोलन को कुचलने का प्रयास किया। उन्होंने कांग्रेस संगठन को अवैध घोषित कर दिया। सभा करने, भाषण व जुलुसों पर पाबन्दी। 1930 में ही बहुत से लोगों को गिरफ्तार करके जेल भेज दिया गया। रोहतक से श्री राम शर्मा, श्याम लाल वकील, राव मंगली राम, भरत सिंह, कामरेड राम शरण दास, चौ० श्याम चन्द, चौ० चन्दगी राम, चौ० राम सिंह जाखड़, भीम चन्द, बदलुराम, लाला काशी राम, श्रीमति कस्तुरी बाई, श्रीमति नान्ही देवी, श्रीमति दड़का देवी, विशम्भर दयाल, हाजी खैर मोहम्मद, चौ० मेहर सिंह दाँगी, सरदार त्रिलोक सिंह, स्वामी आत्मा नन्द थे। रेवाड़ी से 20 लोगों को जेल भेजा गया इनमें से फुलचन्द, फिरजी लाल, ओंकार प्रसाद और रामजी लाल को 3 से 7 महीने की सजा हुई। भिवानी जिले से प. नेकी राम शर्मा को 4 साल की सजा सुनाई गई। मेलाराम मोड़ा, रामचन्दर वैध, बिन्धी चन्द, गोकल चन्द आर्या, रामचन्दर शोरेवाला, श्रीमति मोहोनी, मामराज, स्वामी रघुनाथ दास, अमीलाल, जुगल किशोर, मनोहर लाल, गंगा राम, शिशु पाल सिंह, भगवान दास गौतम और कल्याण दास को 4 से 6 महीने की सजा हुई। मीताचल के परशुराम, रघुमल, हेमराज, चिरजीलाल और गंगाधर को एक साल की सजा हुई। बवानी खेड़ा के मुसदे लाल, दादरी के हरि सिंह चिनारिया, रामकिशन गुप्ता, बनारसी दास, राजेन्द्र प्रसाद जैन व मनशा राम को छः महीने की जेल हुई।

अंग्रेजों ने आन्दोलन को खत्म करने के लिए 'फुट डालो और शासन करो' की नीति भी अपनाई। बड़े-बड़े व्यक्तियों को लेकर अमन सभाओं का गठन किया गया। अकाल सहायता और तबाही देने के बहाने से प्रभावशाली लोग सरकारी कर्मचारियों के साथ गाँव में जाते और कांग्रेस को छोड़ने के लिए जनता को उकसाते थे। हिंदु मुसलमानों में भी विरोध पैदा करने की चेष्टा की गई लेकिन इस कार्य में सरकार अधिक सफल नहीं हो पाई। आन्दोलनकारियों के हौसले बुलन्द रहे। सरकारी पाबन्दी के बावजूद सभाएं होती रही और आन्दोलन चलता रहा।

गांधी इरविन समझौता

जब यह आन्दोलन एक जन आन्दोलन बन गया था और पुरजोर शोर से चल रहा था, इसी दौरान 5 मार्च 1931 गांधी इरविन समझौता हो गया। समझौते के अनुसार कांग्रेस की ओर से गांधी जी ने सविनय अवज्ञा आन्दोलन स्थगित कर दिया। दूसरे गोलमेज कांफ्रेंस में कांग्रेस का शामिल होना स्वीकार कर लिया और पुलिस द्वारा किए गए अत्याचारों की जांच की माँग छोड़ दी। सरकार की ओर से वायसराय ने सविनय अवज्ञा आन्दोलन में गिरफ्तार सभी को मुक्त करना स्वीकार कर लिया। आन्दोलन के दौरान छीनी गई भूमि तथा सम्पत्ति वापस करने की बात भी मान ली। समुद्र के किनारे एक निश्चित दूरी तक बसे निवासियों को समुद्र से नमक इकट्ठा करने अथवा बनाने का अधिकार स्वीकार कर लिया गया। शराब तथा विदेशी कपड़े की दुकानों पर शान्ति पूर्ण धरना देने की बात भी मान ली।

कुछ लोग इस समझौते की तीखी आलोचना करते हैं। इसलिए कुछ कांग्रेसी तथा वामपंथी नेताओं ने इसकी आलोचना करते हुए इसे ब्रिटिश कुटनीति की जीत बताया। रजनी पाम दत्त ने अपनी पुस्तक "इण्डिया टुडे" में लिखा है कि जब आंदोलन पूर्णतया निकट पहुँच रहा था तो इस समझौते ने उसे अचानक और रहस्यमय ढंग से रोक दिया।

लेकिन समझौते के बारे में यह विचार गलत है सरकार ने कांग्रेस और उससे जुड़े सारे संगठनों को गैर कानूनी करार दे रखा था, उसे इस जन आन्दोलन की प्रबलता से फिर से मान्यता देनी पड़ी और कांग्रेस के साथ समझौता करना पड़ा। अतः यह एक बड़ी विजय थी।

इस समझौते के अनुसार शीघ्र ही हरियाणा के सब बन्दी रिहा कर दिए गये और सत्याग्रह उठा लिया गया। किन्तु दुर्भाग्य से यह स्थिति थोड़े दिन ही रही। इरविन 13 अप्रेल को अपना कार्यकाल पूरा करके वापस इंग्लैंड चले गये। उनकी जगह विलिग्टन वायसराय बनकर आया। उनके आते ही समझौते से सब का ध्यान हट गया और चारों तरफ दमन चक्र चल पड़ा। हरियाणा भी इसका अपवाद न रहा।

गांधी जी 1931 में दूसरी गोल भेज कांफ्रेंस से असफल होकर लौटे। यहाँ आते ही उन्होंने 4 जनवरी 1932 को आन्दोलन पुनः शूरू कर दिया। उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया। साथ ही देशव्यापी दमन चक्र भी चल पड़ा। हरियाणा में भी धर पकड शुरू हो गई। सैकड़ों लोगों को जो अभी-अभी गांधी इरविन समझौते के तहत बरी हुए थे जेलों में पुनः ठुस दिया गया। सत्याग्रह पुनः आरंभ हुआ। और जत्थे पर जत्थे गिरफ्तारियों के लिए आने लगे। रोहतक में कोई 1000, हिसार में 800 करनाल में 1000, गुड़गावाँ में 4000 सत्याग्रहियों ने गिरफ्तारी दी। पुलिस ने कांग्रेस के दफ्तरों पर ताले लगा दिया तथा भय का आलम चारों तरफ बन गया।

मई 1933 में गांधी जी ने जेल में 21 दिन का व्रत रख दिया। सरकार ने उन्हें व्रत समाप्त करने के पूर्व छोड़ दिया। गांधी जी ने बाहर आते ही स्थिति को जायजा लिया और इस बात में औचित्य नजर आया कि आन्दोलन स्थगित कर दिया जाए। अप्रैल 1934 में उनहोंने अपने विचारों को क्रियावन्त कर दिया और आन्दोलन वापस ले लिया। हरियाणा के सारे सत्याग्रही धीरे-धीरे रिहा हो गये।

भारत सरकार अधिनियम 1935

सरकार ने स्थिति को सुधारने के लिए कुछ कदम उठाए। बढ़ते हुए राजनैतिक असंतोष को शांत करने के लिए 1935 में एक विशेष अधिनियम पास किया गया। उसके अनुसार प्रांतों को बहुत भारी सुविधाएं देकर उन्हें पूर्ण रूप से आटोनोमस बना दिया गया। केन्द्र ने नये अधिनियम केवल द्वैत शासन को ही मान्यता दी। यद्यपि यह अधिनियम कांग्रेस को किसी तरह भी रूचिकर नहीं लगा तथापि उन्होंने इससे सहयोग करने का निर्णय किया और 1931 में जब अधिनियम के अनुसार प्रांतों के चुनाव होते हुए तो उन्होंने सब जगह अपने सदस्य खड़े किए।

इस चुनाव में कांग्रेस को 11 प्रांतों में से सात प्रांतों में स्पष्ट बहुमत प्राप्त हुआ परन्तु पंजाब में जिसके अन्तर्गत उन दिनों हरियाणा आता था। कांग्रेस अपना अच्छा प्रर्दशन नहीं कर पाई। पंजाब में चौ० छोटुराम के नेत त्व में युनियननिस्ट पार्टी कांग्रेस बाजी मार गई। कांग्रेस केवल दो सीटें प्राप्त कर सकी। पूरे प्रान्त में युनियनिस्ट पार्टी का बहुमत रहा और इस लिए उन्होंने मंत्रीमण्डल भी बनाया। युनियनिस्ट मंत्रीमंडल में हरियाणा से चौ० छोटुराम मंत्री तथा चौ० टीकाराम को संसदीय सचिव लिया गया। कांग्रेस विरोधी पार्टी बनी और हरियाणा के कांग्रेसी नेताओं ने सदन की कार्यवाही में सक्रिय भाग लिया।

दूसरा विश्व युद्ध

इंग्लैण्ड ने 3 दिसम्बर 1939 को जर्मनी के विरूद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। उसी दिन भारत के वायसराय ने एक घोषणा द्वारा भारत को युद्ध में शामिल कर दिया। वायसराय ने इस विषय में भारतीय नेताओं और प्रांतीय मंत्रीमण्डलों से औपचारिक परामर्श भी लेने का कष्ट नहीं किया। अतः इस प्रश्न से भारत में एक गंभीर संवैधानिक संकट खड़ा कर दिया।

कांग्रेस ने एक प्रस्ताव द्वारा सरकार से युद्ध के उद्देश्यों को स्पष्ट करने को कहा। साथ ही उन्होंने यह भी मांग की कि भारत में तुरन्त लोकतन्त्र प्रशासन की स्थापना की जानी चाहिए और युद्ध की समाप्ति पर भारत को अपने संविधान के निर्माण की स्वतंत्रता मिलनी चाहिए। कांग्रेस ने इस प्रकार एक बराबर के मित्र राष्ट्र की हैसियत से इंग्लैण्ड की सहायता प्रदान करना चाहती थी। कांग्रेस ने अन्त में यह भी स्पष्ट कर दिया कि यदि सरकार इस बात का आश्वासन भारत को नहीं देगी तो वह समझेगी की यह युद्ध साम्राज्यवाद के लिए किया जा रहा है न कि लोकतन्त्र और स्वतन्त्रता की रक्षा के लिए। 17 अक्टूबर इन भागों के उत्तर में वायसराय ने निम्नलिखित वक्तव्य प्रकाशित किया-

1. ब्रिटिश सरकार अभी तक स्थुल रूप से युद्ध के उद्देश्यों को परिभाषित नहीं कर सकी है। किंतु यह तो स्पष्ट है कि वे वर्तमान से श्रेष्ठतर अन्तराष्ट्रीय व्यवस्था तथा वास्तविक व स्थायी शान्ति की स्थापना के लिए प्रयत्नशील है।

2. भारत में ब्रिटिश नीति का उद्देश्य इस देश को डोमिनियम का दर्जा देना है। युद्ध के पश्चात् सरकार विभिन्न सम्प्रदायों, दलों के प्रतिनिधियों तथा भारतीय नरेशों के प्रतिनिधियों के परामर्श से 1935 के अधिनियम संशोधन करने के लिए तैयार रहेगी।

3. युद्ध के संचालन में भारतीयों की सहायता लेने का सबसे अच्छा साधन युद्ध परामर्शदायी कौसिल की स्थापना है। जिसमें भारत के विभिन्न राजनैतिक दलों और भारतीय नरेशों के प्रतिनिधि होंगे।

वायसराय के इस वक्तव्य से किसी को भी संतोष नहीं हुआ। कांग्रेस ने इसे अति असंतोष जनक बताकर सरकार का विरोध करने की योजना बनाई। 1 अक्तूबर 1939 को कांग्रेस की कार्यसमिति ने इस दिशा में पहला पग उठाया और अपनी सब प्रान्तीय सरकारों से इस्तीफा देने को कहा। उन्होंने तुरन्त ऐसा कर दिया। पंजाब में युनियनिष्ट पार्टी ने ऐसा नहीं किया।

हरियाणा पर युद्ध का प्रभाव

हरियाणावासियों पर युद्ध की प्रतिक्रिया दो प्रकार से हुई युनियनिष्ट पार्टी वफादार वर्ग ने ऐसे समय में सरकार की पूरी तरह से सहायता करने की नीति अपनाई। इसके प्रभाव से हजारों ग्रामीण सेना में भर्ती हो गये और लाखों रूपये का फण्ड जमा हुआ।

दूसरी तरफ कांग्रेस का सरकार विरोधी रवैया था। वे लोगों को सरकार के साथ असहयोग करने को कहते थे। किन्तु यहाँ यह बताना आवश्यक प्रतीत होता है कि कांग्रेस किसी भी तरह फासीस्ट शक्तियों के साथ लड़े जा रहे इस युद्ध में अंग्रेजों को हराना नहीं चाहती थी। वह इतना ही विरोध करना चाहते थे जिससे वे युद्ध में भी नहीं हारे और विवश होकर भारतीयों को सम्भावनीय स्थिति में रहते हुए युद्ध में सहायता के लिए कहे।

किन्तु अंग्रेज सरकार ने कांग्रेस के इस भद्र व्यवहार के प्रति कोई रूचि नहीं दिखाई। अतः महात्मा गांधी को उपयुक्त विचारों के अनुसार अक्तुबर 1940 में व्यक्तिगत सत्याग्रह छेड़ने की बात सोचनी पड़ी। इससे सरकार पर न तो अधिक दबाब पड़ता था और न ही वे ऐसी स्थिति में रहते थे कि दुनिया यह जान सके कि कांग्रेस की नाराजगी कोई मायने नहीं रखती। ऐसा होने के बावजूद भी सारा देश उनकी सहायता कर रहा था।

व्यक्तिगत सत्याग्रह

गांधी जी ने व्यक्तिगत सत्याग्रह आन्दोलन की शुरूआत 17 अक्तूबर 1940 को की। उन्होंने हिदायत दी कि एक समय केवल एक ही व्यक्ति विश्व युद्ध में भारत को शामिल करने के खिलाफ नारे लगाता हुआ निकले और गिरफ्तारी दे। गांधी जी ने प्रथम सत्याग्रही विनोबाभावे को चुना। इस आन्दोलन में ज्यादातर सत्याग्रहियों को कांग्रेस की केन्द्रीय समिति के सदस्यों व केन्द्रीय तथा प्रान्तीय कौंसिलों के सदस्यों को चूना गया।

हरियाणा के सत्याग्रही ये नारे लगाते थे "शैतान सरकार की युद्ध में सहायता करना एक अपराध है।" मात भूमि की आजादी के लिए मरना शैतान सरकार के लिए मरने से बेहतर है। सरकार का रवैया सत्याग्रहियों के प्रति कड़ा था। सत्याग्रहियों को गिरफ्तार कर लिया जाता है। हरियाणा में हुई गिरफ्तारियों का ब्यौरा इस तालिका में दिया गया है-

जिला	गिरफ्तार व्यक्तियों की संख्या
अम्बाला	171
करनाल	48
गुड़गावाँ	58
रोहतक	264
हिसार	86

इस तालिका से पता चलता है कि रोहतक में यह आन्दोलन जोर शोर से चला। रोहतक में गिरफ्तारी देने वाले व्यक्तियों में मुख्य श्री राम शर्मा, राव मंगलीराम, भगत सिंह, रणवीर सिंह, राम सिंह, भगवत दयाल शर्मा, श्रीमति कस्तुरी बाई, श्रीमति मुन्नी

देवी, गरीबदास, मेहर सिंह दांगी, ज्ञानी राम, बदलू राम, प्रीत सिंह, राव सोहन लाल, कल्याण सिंह, बद्री प्रसाद काला, अस्थल बोहर के महन्त स्वामी बसन्त नाथ आदि थे।

रोहतक की तरह हिसार में भी व्यक्तिगत सत्याग्रह आन्दोलन जोरों पर रहा यहाँ गिरफ्तारी देने वाले मुख्य नेता नेकी राम शर्मा, साहिब राम, बलवन्त राय तायल, रणजीत सिंह वैध, छबील दास, दादा गणेशी लाल, राम कुमार विद्यात, कामेड हामीद हुसैन, श्रीमति भगवानी देवी, दादा पतराम, हरदेव सहाय, बख्शी राम राम किशन, चौटाला के लेखराम व धीगराग के लेखराम आदि प्रमुख थे।

अम्बाला के प्रमुख सत्याग्रही खान अब्दुल गफ्फार खाँ, साधु राम सैनी, लाला हरी चन्द, ठाकुर सिंह, सरदारी लाल शबनम, चन्दगी राम, गौरी लाल और भोपाल सिंह को गुड़गावाँ व करनाल जिलों में यह आन्दोलन इतना तेज नहीं था।

व्यक्तिगत सत्याग्रह आन्दोलन सरकार पर ज्यादा प्रभाव नहीं डाल सका इसलिए गांधी जी ने इसे वापस ले लिया।

भारत छोड़ो आन्दोलन

इधर कांग्रेस का सत्याग्रह और उधर शत्रुओं के बढ़ते कदम, दोनों से ब्रिटिश सरकार घबरा गई। अब उन्होंने किसी भी तरह भारतीयों का सहयोग पाने की कोशिश की। अतः मार्च 1942 में उन्होंने इस कार्य को करने के लिए सर स्टैफोर्ड क्रिप्स को भारत भेजा। क्रिप्स ने भारत की स्थिति का अध्ययन किया और भारतीय समस्या को सुलझाने के लिए एक प्रस्ताव पेश किया। क्रिप्स के प्रस्ताव में भारत को पूर्ण स्वराज्य देने की कोई बात नहीं थी। अतः कांग्रेस ने उसे ठुकरा दिया। और अब कांग्रेस को यह समझ में आ गया कि ब्रिटिश सरकार उसे कुछ देने वाली नहीं है। अतः उन्होंने एक जन आन्दोलन छेड़ने की बात सोची।

कांग्रेस वर्कींग कमेटी के वार्घा अधिवेशन में जुलाई 1942 में भारत छोड़ो आन्दोलन का प्रस्ताव पास कर दिया। इसके बाद 7 और 8 अगस्त के अधिवेशन में इसका अनुमोदन कर दिया गया। 9 अगस्त को सरकार ने गांधी जी नेहरू तथा मौलाना अबुल कलाम आजाद को गिरफ्तार कर लिया।

हरियाणा में भी नेकी राम शर्मा जो कांग्रेस कार्यकारिणी के सदस्य थे और जिन्होंने बंबई अधिवेशन में भी भाग लिया था जिसको 14 अगस्त को गिरफ्तार कर लिया गया और उन्हें हिसार जेल भेज दिया गया। श्री राम शर्मा जो कि एम.एल.ए. भी थे को झज्जर से 23 अगस्त को गिरफ्तार कर रोहतक जेल भेज दिया गया। अम्बाला के दुनीचन्द को गिरफ्तार कर सहारनपुर जेल भेज दिया गया लेकिन उनका स्वास्थ्य ठीक ने होने के कारण बाद में उन्हें कसौली भेज दिया।

ज्योंही इन नेताओं की गिरफ्तारी की खबर फैली अन्य नेता भी आन्दोलन में कूद पड़े। सब जगह हड़ताल हो गई। जलसे व जुलुसों के माध्यम से सरकार की निंदा की जाने लगी। रोहतक में श्रीराम शर्मा के अतिरिक्त भरत सिंह कामरेड मागेंरामवतन, राव मगती राम, चौ० रणवीर सिंह, मास्टर नत्थू राम, ध्यानचन्द, सोहनलाल, जयसिंह राजपूत, राम सिंह जाखड़, सुल्तान सिंह गुप्ता, रामधन शर्मा, रामचन्द सिंघल, श्री मति लीलावती सिंघल, श्री मति लक्ष्मी देवी, श्री मति मुनी देवी, स्वामी चन्दर नाथ योगी, खैर मुहमद, बाबर, अली, श्री मति कस्तुरी बाई आदि ने गिरफ्तारी दी।

रोहतक ही की तरह हिसार में भी गिरफ्तारी काफी मात्रा में हुई। जिन्हें जेल भेजा गया उनमें मुख्य हाँसी के जती पूर्णचन्द जिनकी बाद में फिरोजपुर जेल में म त्यु भी हो गई, देवी लाल, श्याम लाल, साहिब राम, लेखराम, बलवन्त राम तायल, पतरात वर्मा, दादा गणेशी लाल, सन्तलाल हरि सिंह सेनी, देवी सहाय शीश पाल सिंह आदि को गिरफ्तार किया गया।

गुड़गावाँ में देव राम, चन्दर भान, जनार्दन, बिशन चन्द्र, श्याम सुन्दर, कर्ण सिंह, योगीन्दर पाल, रूप लाल मेहता, बाबू दयाल शर्मा, खुशी राम, श्रीमति कमल भार्गव, इसी प्रकार अम्बाला में खान अब्दूल गफर खाँ, साधु राम सैनी, ठाकुर सिंह व हरिचन्द, सरदारी लाल शबनम, दीवान चन्द्र, आदि ने गिरफ्तारी दी।

अपने प्रिय नेताओं की गिरफ्तारी की खबर सुनकर जगह-जगह हड़ताल हो गई। करनाल, रोहतक, सोनीपत, झज्जर, मुरथल बेरी, गुड़गावाँ व अन्य जगहों पर जलुस निकले गये। तोड़-फोड़ की भी अनेक घटनाएं हुई। आन्दोलनकारियों का मुख्य निशाना रेलवे लाइन, डाक व तार दफ्तर व टेलीग्राफ की लाईनें होती थी। गुड़गावाँ की रेलवे लाईनें की फिस पलेटें उखाड़ दी गई। अनेक जगहों पर टेलीफोन के तारों को काट दिया गया। रेवाड़ी में रेलवे के रेस्ट हाउस को जला दिया गया। करनाल में डी.सी ऑफिस के वर्नाकुलर रिकार्ड रूम को जला दिया गया, रोहतक व गुड़गावाँ में रेलवे स्टेशनों को आग लगा दी गई।

अब प्रश्न यह उठता है कि कांग्रेस तो एक अहिंसक संस्था थी फिर इस आन्दोलन में हिंसा क्यों हुई। इसका जबाव यह है कि 1942 का भारत छोड़ो आन्दोलन व्यापक था। इसमें शहरों व गांवों के प्रत्येक वर्ग ने भाग लिया। यह आंदोलन बहुत कारगर ढंग से नहीं चल पाया क्योंकि कांग्रेस नेताओं को पहले ही गिरफ्तार कर लिया गया और थोड़े समय बाद कांग्रेस कार्यकर्ताओं को भी पकड़ लिया गया। इस आंदोलन में किसान और मजदूर वर्ग ने अन्य आन्दोलनों की अपेक्षा अधिक हिस्सा लिया। जब सरकार ने पुलिस तथा फौज की मदद से आन्दोलन को दबाना चाहा तो इन्होंने हिंसा का जबाव हिंसा से दिया। इस कारण इस आन्दोलन हिंसा हुई।

आजाद हिन्द फौज में हरियाणा का योगदान

आजाद हिन्द फौज का संगठन सितम्बर 1941 में भारत के एक जापान प्रवासी क्रान्तिकारी नेता रास बिहारी बोस ने किया था। बर्मा, सिंगापुर और मलाया पर जापान का अधिकार हो जाने के पश्चात् उन्होंने भारतीय राष्ट्रीय सेना का निर्माण किया। अंग्रेजी सेना के जो भारतीय सैनिक जापान के वश में थे जिनकी संख्या लगभग 60,000 हजार थी। ये भारतीय सैनिक युद्धबन्दी थे। लेकिन जापान के फौज के कमाण्डर मेजर फ्युजीवारा ने इन्हें युद्ध बन्दी नहीं समझा। उन्होंने इन्हें अपना एशियाई भाई बताते हुए एक मार्मिक भाषण में कहा कि "आपकी आजादी से ही एशिया और दुनिया की आजादी संभव है। हर भारतीय का फर्ज है कि वह अपनी आजादी के लिए संघर्ष करे इस संघर्ष में जापान आपकी मदद करेगा। मेजर फ्युजीवारा ने भारतीय सिपाहियों को कप्तान मोहन सिंह के हवाले कर दिया। कप्तान मोहन सिंह ने आजाद हिन्द फौज में नई जान फूंकी और उसे देश की स्वतंत्रता पर मर मिटने का मन्त्र दिया। इसी समय 1943 में सुभाष चन्द्र बोस मौके पर पहुँच गये उन्होंने सेना का संगठन किया तथा उसकी बागडोर सम्भाली।

नेताजी की इस क्रान्तिकारी सेना में हरियाणा के 2715 जवान और अफसर थे। इनमें प्रमुख कोसली के कर्नल राम स्वरूप जो कि इंटेलीजेंस विभाग के इंचार्ज थे। रोहतक जिले के मुदशां गांव के कर्नल दिलसुख मान जो कि नेताजी के फौज के क्वार्टर मास्टर जनरल थे तथा जिन्होंने राशन पानी की व्यवस्था को सुचारू रूप से चलाया। रोहतक के धांधलान गांव के रणसिंह अहलावत जिन के हाथ में आजाद हिन्द फौज की दूसरी बटालियन की कमान थी। रेवाड़ा सोनीपत के कैप्टन प्रीत सिंह ढ़ाकला (रोहतक) के कैप्टन कवल सिंह जिन्हें नेताजी ने उनकी बहादूरी के लिए शेरे हिन्द का तमगा दिया। मांडोठी के कैप्टन कवल सिंह जो 1943 में जर्मनी से सिंहापुर नेताजी के साथ आए थे। सिसाना गांव के मेहर सिंह जो कि जापान, मलाया तथा बर्मा में नेताजी के ड्राईवर थे इसके अलावा मेहर सिंह जो कि आजाद हिन्द फौज के सिपाहियों को देश भक्ति के गीत सुनाते थे।

आजाद हिन्द फौज द्वारा लड़े गये स्वतंत्रता संग्राम में हरियाणा में 22 अफसर और 324 जवान शहीद हुए। जिन्हें इस तालिका में दर्शाया गया है।

जिला	अफसर	सैनिक	कुल जोड़
रोहतक	12	126	138
करनाल, कुरूक्षेत्र, कैथल	-	5	5
जीन्द	2	53	55
हिसार	2	51	53
गुड़गाँव	5	72	77
महेन्द्रगढ़ रेवाड़ी	1	17	18
कुल जोड़	**22**	**324**	**346**

आजाद हिन्द फौज के बहादुर दिल खोलकर लड़े किन्तु शत्रु अत्यधिक शक्तिशाली होने के कारण वे असफल रहे। विश्व युद्ध की समाप्ति के पश्चात् अंग्रेज सरकार ने उनके विरूद्ध अनुशासनात्मक कार्यवाही करनी चाही लेकिन भारत में जनता का उनके प्रति अगाढ़ प्रेम देखकर व किसी अनहोनी से डर कर उन्हें अपना निर्णय बदलना पड़ा और सबके सब सैनिक जेल से रिहा कर दिए गये। आजाद हिन्द फौज के सैनिक जेल से रिहा होने के पश्चात् हरियाणा के गांवों में गये और उन्होंने स्वाधीनता संघर्ष में दिल खोलकर भाग लिया।

प्रजामण्डल आन्दोलन

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस और आजाद हिन्द फौज के आन्दोलन के कारण देशी रियासतों की जनता में भी जाग ति आ गई। यद्यपि इस रियासतों के शासक भारतीय ही थे लेकिन इनका रवैया भी जनता के प्रति क्रुर था। ये लोगों से भारी मात्रा में कर तथा बेगार लेते थे तथा इसके खिलाफ उठने वाली किसी भी आवाज को निर्दयता से दबा देते थे।

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस पहले देशी रियासतों के मामले में दखल देने के विरूद्ध थी। वहाँ कांग्रेस संगठन भी नहीं बन सकते थे। जब कांग्रेस का आन्दोलन चारों तरफ फैल गया और लोगों में जाग ति आ गई तो इन देशी राज्यों में भी प्रजा मण्डलों का गठन हुआ। सन् 1927 में इन्हें एक सूत्र में बाँधने के लिए 'आल इण्डिया स्टेट पीपुल्स कांफ्रेंस' का गठन हुआ। सन् 1929 में तो कांग्रेस के तत्कालीन अध्यक्ष पं० जवाहरलाल नेहरू ने तो स्पष्ट शब्दों में यह कहकर कि देशी रियासतों को शेष भारत से अलग नहीं देखा जा सकता। कांग्रेस की नीति से परिवर्तन कर दिया शीघ्र ही रियासतों में प्रजामण्डल आन्दोलन तेज कर दिया। हरियाणा में निम्नलिखित रियासतें थी जहां प्रजामण्डल आन्दोलन चला।

पटौदी

पटौदी एक छोटा सा कस्बा है जो कि गुड़गावाँ से 19 किलोमीटर दक्षिण पश्चिम स्थिति है। इसकी नींव जलालुदीन खिलजी के समय में पाटा नामक एक मेवाती सरदार ने रखी थी और उसी के नाम पर इस कस्बे का नाम पटौदी पड़ा। 1803 में दूसरे भारत मराठा युद्ध में सहायता के बदले अंग्रेजों ने यह कस्बा और 40 गांव एक व्यक्ति तलब फैज खाँ को रियासत के रूप में भेज दिया। इस रियासत का क्षेत्रफल 40 वर्ग किलोमीटर तथा जनसंख्या 21520 थी। इसकी 90% जनसंख्या हिन्दू थी। इसकी सलाना आमदनी लगभग $3\frac{1}{2}$ लाख थी।

सन् 1940 ई. जब प्रजामण्डल आन्दोलन पहली बार शुरू हुआ उस समय मुहमद इफ्तकार अली खाँ जो अन्तर्राष्ट्रीय स्तर के क्रिकेटर भी थे इस रियासत के शासक थे। रियासत का अन्दरूनी शासन रियासत के दीवान खान बहादूर शेख आलम खाँ के हाथ में था। प्रशासन एकदम निकम्मा तथा भ्रष्ट था। जनता से भारी मात्रा में कर लिया जाता था लेकिन उन्हें शिक्षा, स्वास्थ्य, सड़कों जैसी बुनियादी सुविधाएँ भी नहीं दी जाती थी। राज्य में केवल एक डिस्पेंसरी व पांच प्राइमरी स्कूल थे।

यद्यपि पटौदी के लोग राजनैतिक रूप से पिछड़े हुए थे लेकिन गुड़गावाँ में कांग्रेस की गतिविधियों के कारण उन्होंने एक जून 1939 को प्रजामण्डल का गठन किया। मौलाना नुर-उदीन की अध्यक्षता में उन्होंने अपना एक मांगपत्र तैयार किया जिसकी मुख्य माँग भूमि कर को कम करना थी और उन्होंने नबाब को आन्दोलन करने की धमकी दे डाली। बाबूदयाल शर्मा पहले व्यक्ति थे जिन्होंने नबाब के खिलाफ सत्याग्रह की शुरूआत की। नबाब उस समय भारतीय क्रिकेट टीम के कप्तान थे तथा इंग्लैण्ड के दौरे पर थे। उन्हें तार से इसकी सूचना दी गई। वे वापिस आए और प्रजा मण्डल को गैर कानूनी संस्था घोषित कर दिया।

इसके परिणामस्वरूप प्रजा मण्डल सत्याग्रह शुरू हो गया। शीघ्र ही सत्याग्रहियों की संख्या 200 हो गई। 4 अक्टूबर 1939 को एक भारी सभा हुई जिसमें 500 सत्याग्रहियों ने भाग लिया तथा इन्होंने नबाब के महल की ओर बढ़ाना शुरू कर दिया। स्थिति की गंभीरता को देखते हुए नबाब को सत्याग्रहियों से समझौता करना पड़ा। समझौते के अनुसार प्रजामण्डल संस्था को कानूनी मान्यता दे दी गई, भूमि लगान को कम करने की बात कही गई और पंजाब पंचायत बिल को लागू करने की बात मान ली गई। लेकिन दुर्भाग्य से नबाब ने सत्याग्रहियों को धोखा दिया और उनकी बात को नहीं माना इसके फलस्वरूप 24 अगस्त 1940 को प्रजामण्डल आन्दोलन पुनः शुरू हो गया। रियासत की पुलिस ने प्रजामण्डल के प्रधान व सचिव को अन्य लोगों के साथ गिरफ्तार कर लिया और इसकी कारगुजारियों को गैर कानूनी घोषित कर दिया। इसलिए आन्दोलन को स्थगित करना पड़ा।

1942 में भारत छोड़ो आन्दोलन शुरू हो गया और इसके साथ ही पटौदी में प्रजामण्डल आन्दोलन पुनः शुरू हो गया। विश्व युद्ध के बाद आन्दोलन में और तेजी आई। इस आंदोलन का नेत त्व गौरी शंकर वैद्य, पं० बाबु दयाल शर्मा, ठा० राम सिंह, नन्द किशोर, छोटे लाल, अमीलाल, रूप चन्द्र व राम सिंह आदि ने किया। नबाब ने प्रारंभ में प्रजामण्डल को सख्ती से दबाना चाहा। उसने सन् 1946 के आरंभ में बैद्य गौरी शंकर को कैद में डलवा दिया और उसकी समस्त जायदाद नीलाम करवा दी इसके बाद शीघ्र ही अन्य कार्यकर्ताओं को भी गिरफ्तार कर लिया गया।

नेताओं की गिरफ्तारी के विरूद्ध रियासत में प्रबल प्रचार हुआ और समस्त जनता सत्याग्रह करने पर उतर आई। गुड़गावाँ के कांग्रेसी नेता राव गजराज सिंह आदि इस संघर्ष में लोगों का नेत त्व करने आ गये। नबाब इस स्थिति से विचलित हो गया

और उसने राजनीतिक बन्दियों को तुरन्त रिहा करने का आदेश दिया। उसने लगान व दूसरे कर कम करने का आश्वासन भी दिया। स्वतंत्रता के बाद रियासत का दूसरे जिले में विलय कर दिया गया।

दुजाना

दुजाना एक छोटी सी रियासत थी। इसका क्षेत्र 91 वर्ग किलोमीटर तथा इसकी जनसंख्या 30666 थी। इसकी सालाना आमदनी 2,31,000 थी। यह रियासत 1805 में दूसरे आग्ल मराठा युद्ध के बाद अस्तित्व में आई। 1945 में यहाँ का शासक मुहम्मद इक्तदार अली खाँ जो कि एक अनपढ़ व्यक्ति था। नबाब, उमरदराज खाँ जिसे की उसने एक स्कूल मास्टर से नायब दिवान बना रखा था के हाथों में कठपुतली था। वह दुजाना की जनता को लूटता था तथा उसपर भारी कर लगा रखे थे। जनजीवन को सुखी बनाने के लिए उसने कभी कोई परिवर्तन नहीं किया पूरी रियासत में केवल एक डिस्पेंसरी व एक स्कूल था।

सन् 1945 में दोजाना की असंतुष्ट प्रजा ने प्रजामण्डल का गठन किया। जिनका केन्द्र नाहड़ में रखा गया। राव देवकरण सिंह इसके प्रधान और रावसरदार सिंह सैक्रेटरी बने। राव नेकीराम, पं० हरि राम, राव श्योचन्द्र, ताराचन्द्र, हकीम भगतुराम, महाशय राम जी लाल आदि प्रजामण्डल के विशेष कार्यकर्ता थे। नवम्बर 1946 में प्रजामण्डल ने रियासत में जबर्दस्त आन्दोलन चलाया। किसानों ने कर देने से इंकार कर दिया और शेष वर्गो ने शासन से असहयोग किया। इससे नबाब बैचेन हो उठा और उसने आन्दोलनकारियों के खिलाफ सख्त कदम उठाए।

रियासत की पुलिस ने प्रजामण्डल के नेताओं राव देवकरण सिंह, राव सरदार सिंह, पं० हरिराम, महाशय रामजी लाल आदि को गिरफ्तार कर लिया। शेष कार्यकर्ताओं के खिलाफ वारण्ट जारी कर दिए। किन्तु नबाब की इस कार्यवाही से आन्दोलन दबा नहीं बल्कि और ज्यादा जोर पकड़ गया। सारे राज्य में जलसे जलुसों के माध्यम से लोगों ने अपने नेताओं की गिरफ्तारी और पुलिस के आन्दोलन के विरूद्ध रोष प्रकट किया। नबाब को चेतावनी दी यदि नेताओं को शीघ्र न छोड़ा गया तो जन सत्याग्रह आरंभ हो जाएगा। नबाब ने घबराकर 8 दिसम्बर 1946 को सभी बन्दी नेताओं को रिहा कर दिया और उनकी बातें मान ली। लगान कम कर दिया तथा स्कूल सड़क, अस्पताल व अन्य सुविधाएं देने का वचन दिया। स्वतंत्रता के बाद रियासत का विलय रोहतक जिले में कर दिया गया।

लोहारू

लोहारू रियासत हरियाणा के दक्षिण पश्चिम में राजस्थान की सीमा पर स्थित था। इसका क्षेत्रफल 226 वर्ग मील था और इसकी जनसंख्या 27892 थी। इस रियासत का संस्थापक अहमद बख्श नामक एक मुगल सरदार था जिसे अलवर के राजा ने लार्ड लेक की सहमति से 1803 में अपने यहाँ नौकरी पर रखा तथा उसकी सेवाओं के बदले में उसे यह रियासत सौंप दी।

1940 में मिर्जा अजीजुदीन अहमद खाँ यहाँ का शासक था। भारी कर व बेगार के अतिरिक्त उसने जनता की धार्मिक स्वतंत्रता पर भी अंकुश लगा रखा था। नबाब के अत्याचारों के विरूद्ध सबसे पहले आर्य समाज ने आवाज उठाई। पर आवाज शुरू में तो धार्मिक स्वतंत्रता के लिए उठाई गई थी परन्तु बाद में इसके साथ राजनैतिक और आर्थिक मामले भी जुड़ गये थे। थोड़े समय पश्चात् वे दोनों विषय एक बड़े आन्दोलन का भाग बन गये। 1935 में रियासत के लोगों ने नबाब के कुशासन के विरूद्ध प्रदर्शन किया। नबाब ने इन शान्तिपूर्वक प्रदर्शन कर रहे लोगों पर बौखला कर सिंहाणी नामक गांव में 8 अगस्त 1935 को गोलियां चलवा दी, जिसके फलस्वरूप 22 आदमी मारे गये और भी कई प्रकार का दमन चक्र चला और रियासत की जनता को बुरी तरह कुचल डाला।

द्वितीय विश्व युद्ध के बाद जनता ने फिर से संगठित होकर आन्दोलन चलाया। सुबेदार दिल सुख, ठाकुर भगवंत सिंह, चौ० मोहर सिंह, श्री नत्थू सिंह, चौ० गंगा सहाय, श्री बुजाराम, चौ० चन्दगी राम, पं० शंकर लाल आदि नेताओं ने बीकानेर में प्रजामण्डल आन्दोलन के प्रवर्तक स्वामी कर्मानन्द व स्वामी सच्चिदानन्द से मिलकर यहाँ भी प्रजामण्डल स्थापित किया। हिसार जिले में बहुत से पढ़े-लिखे व्यक्ति भी इसे सफल बनाने में जुट गये। पं० नेकी राम शर्मा ने भी इन लोगों की सहायता की। अन्त में लोगों की विजय हुई। स्वतंत्रता के बाद रियासत को हिसार जिले में मिला दिया गया।

जीन्द

आधुनिक दादरी तहसील और जीन्द जिला जीन्द रियासत का हिस्सा था। इस रियासत का क्षेत्रफल 1026 वर्ग मील तथा इसमें 346 गांव सम्मिलित थे। इस रियासत की जनसंख्या 2,19,284 थी। जीन्द रियासत पर महाराजा रणवीर सिंह का शासन था।

अन्य रियासतों की तरह जीन्द रियासत भी कुशासन से ग्रस्त थी। लोग हालात में सुधार की माँग करने लगे लेकिन राजा में उनकी तरफ कोई ध्यान नहीं दिया।

रियासत जीन्द में प्रजामण्डल की नींव रखने वालों में श्री हंसराज रहबर, पं० देवी दयाल, बनारसी दास गुप्ता, चौ० निहाल सिंह तक्षक, राम किशन गुप्ता, मेदाक सिंह, मन्शा राम, मंगला राम, राजेन्द्र कुमार जैन आदि प्रमुख थे। इन लोगों के प्रयत्नों से रियासत में 1940 के आसपास जन जाग ति के लक्षण दिखाई देने लगे। 1940 में दादरी के स्थान पर प्रथम जन सभा का आयोजन किया गया जिसकी अध्यक्षता डॉ० सत्यपाल ने की, प. नेकी राम शर्मा इसमें विशेष अतिथि थे। जनसभा से घबराकर राजा ने सभी कार्यकर्ताओं की गिरफ्तारी का आदेश दे दिया। इसके फलस्वरूप एक जन आन्दोलन चल पड़ा और महाराजा को सब गिरफ्तार लोगों को छोड़ना पड़ा।

विश्व युद्ध के पश्चात् महाराजा रणवीर सिंह से प्रजामण्डल के नेताओं तथा जनता ने सुधार करने की मांग की, महाराजा ने जनता की बात अनसुनी कर दी। इस पर प्रजामण्डल के प्रधान बनारसी दास गुप्ता ने आन्दोलन चलाने की धमकी दी। महाराजा ने उसे गिरफ्तार कर जेल में डाल दिया। प्रजामण्डल के अन्य कार्यकर्ताओं को भी गिरफ्तार कर लिया। जनता ने आन्दोलन चलाने की योजना बनाई। परन्तु इससे पहले की वे कोई ऐसा कार्य करते महाराजा ने जनता की अधिकांश मांग मान ली और प्रजा मण्डल के नेताओं को रिहा कर दिया।

महाराजा के आश्वासन के बावजूद रियासत के प्रशासन में कोई विशेष फेरबदल नहीं किया। रियासत का प्रधानमंत्री गंगाराम कौल पहले की तरह जुल्म बरसता रहा। इस स्थिति से निपटने के लिए प्रजामण्डल के नेताओं ने हरिसिंह चिनारिया जिन्होंने प्रजामण्डल से प्रभावित होकर नायब तहसीलदारी छोड़ दी थी के नेत त्व में 16 सदस्यीय एक्शन कमेटी का गठन किया। 8 दिसम्बर 1946 को कमेटी के निर्णय के अनुसार सत्याग्रह और सविनय अवज्ञा आन्दोलन छेड दिया गया। दादरी इस आन्दोलन का केन्द्र था। फरवरी 1947 में यहाँ आन्दोलन ने विकराल रूप धारण कर लिया तथा दादरी में प्रजामण्डल के नेताओं ने अपनी सरकार कायम कर ली। निहाल सिंह तक्षक इसके मुख्य नेता थे। स्थिति की गम्भीरता को देखते हुआ जीन्द के महाराज ने सयोव द्ध काग्रेस नेता पट्टाभीसीता रमैया या को समस्या सुलझाने के लिये बुलवाया। और जीन्द के महाराजा ने आन्दोलनकारीयों की लगभग सारी मांगें मान ली।

पटियाला

आधुनिक नारनौल और महेन्द्रगढ़ पटियाला रियासत का हिस्सा थे। यह इलाका महेन्द्रगढ़ निजामत कहलाता था तथा इसमें पटियाला व नरवाना तहसीले थी, महाराजा यादवेन्द्र सिंह इस रियासत का राजा था। अन्य रियासतों की तरह यहाँ की जनता भी बुरी तरह पीड़ित थी। उनकी कमर भारी भरकम करों तथा बेगार के बोझ ने तोड़ दी थी। उन्हें सार्वजनिक सुविधाएँ न के बराबर मिलती थी। सन् 1945 में प्रजामण्डल बना कर यहाँ की जनता ने महाराजा का अनदेखा कर दिया और साथ ही चेतावनी भी दी की यह अंग्रेजी राज्य नहीं है जहां कांग्रेस की ज्यादतियों की वर्दास्त किया जाता हैं यहाँ राज्य विरोधी कार्य करने वालों के साथ सख्त व्यवहार किया जाता हैं लेकिन महाराजा की इस चेतावनी का कोई प्रभाव नहीं पड़ा। उन्होंने अपने नेताओं श्री राम कीशोर, श्रीमातादीन, श्री अयोध्या प्रसाद, सुश्री कमला देवी, श्री बनवारी लाल, राव माधों सिंह, राव ईश्वर सिंह आजाद, चौ० दुनी चन्द्र, श्री रामशरण चन्द मितल के नेत त्व में जोरदार आन्दोलन छेड़ दिया जिसके परिणामस्वरूप महाराज को जनता की मांगें माननी पड़ी।

नाभा

आधुनिक जिला महेन्द्रगढ़ का बहुत बड़ा भाग जिसमें बावल, कनीना, अटेली शामिल थे उन दिनों नाभा के महाराजा प्रतापसिंह की रियासत में पड़ते थे। यहाँ भी दूसरी रियासतों की तरह भारी कर लगे हुए थे। राजा उनसे बेगार लेता था और उन्हें कोई सुख सुविधा प्राप्त नहीं थी। विश्वयुद्ध के उपरान्त दूसरी रियासतों की देखा देखी इस रियासत में भी प्रजामण्डल स्थापित हुआ। कोरी के माधों सिंह इस आन्दोलन के संस्थापक थे। इनके अलावा अन्य मुख्य नेता मथुरा प्रसाद, देवकीनन्दन, रूपनारायण, दीन-दयाल, मातादीन भारद्वाज, मुखराम शर्मा, ईश्वरसिंह आजाद व कमला देवी थे।

1946 के मध्य को प्रतापसिंह ने प्रजामण्डल आन्दोलन को कुचलने के लिए यहाँ के सब नेताओं को गिरफ्तार कर लिया, जनता मे इस बात का बडा रोष हुआ और उन्होंने नाभा वाले बावल छोड़ो आन्दोलन शुरू कर दिया। किन्तु थोड़े समय पश्चात् राजा को झुकना पड़ा और सब नेताओं को रिहा कर दिया।

यूनियनिस्ट पार्टी

यूनियनिस्ट पार्टी का गठन चौधरी छोटुराम पंजाब के मुस्लिम किसान नेता सर फजले हुसैन और सिकन्दर हयात खाँ के साथ मिलकर 1923 ई० में किया। पार्टी का प्राईमरी उद्देश्य ग्रामीण किसानों तथा बैकवर्ड क्लास का उत्थान करना था। कांग्रेस अब तक केवल शहरी लोगों के हाथ में थी इसी लिये उन्हीं के बारे में सोचती थी युनियनिस्ट पार्टी ने देहात को अपने साथ लगा कर अपना आधार बढ़ा लिया।

1919 के एक्ट के अनुसार 1923 में पहली बार केन्द्रीय विधान परिषद व पंजाब विधान परिषद के चुनाव हुए। यह पहला चुनाव था जिसमें जो कि पार्टीयों के आधार पर हो रहा था। इससे पहले लोगों ने चुनाव व्यक्तिगत रूप से लड़े थे। हाल ही में निर्मित यूनियनिस्ट पार्टी पूरे जोश के साथ मैदान में उतरी हिन्दू महासभा तथा मुस्लिम लीग ने भी अपने उम्मीदवार खड़े किए। कांग्रेस के एक वर्ग ने चुनाव का बहिष्कार पर इसकी परिवर्तन चाहने वाली शाखा स्वराज पार्टी चुनाव में उतरी। 20 व 28 नवम्बर को चुनाव हुए।

चुनाव के परिणाम बडे ही चौकाने वाले थे। अभी हाल ही में बनी युनियनिस्ट पार्टी ने सभी देहाती लोगों की सीटे जीत जीत ली उसे पंजाब भर मे 38 स्थान प्राप्त हुए। हिन्दू , मुसलमान व सिक्ख समान रूप से इसके समर्थक निकले हिन्दू महासभा को एक भी सीट प्राप्त नहीं हुई। यही हाल मुस्लिमलीग का रहा। स्वराज पार्टी ने वे स्थान जीते जो सभी शहरी क्षेत्रों में ये शिरोमणी गुरद्वारा प्रबंधक कमेटी को तीन स्थान मिले तथा निर्दलीय 11 स्थानों पर विजयी रहे।

अब सवाल यह उठता है कि युनियनिस्ट पार्टी ने जिसका गठन अभी हाल ही मे हुआ था इतने स्थान कैसे जीत लिए तथा देहाती क्षेत्रों में अपनी पकड़ मजबूत कैसे बना ली। ऐसा इसलिए सम्भव हुआ कि कांग्रेस के सभी नेता बुर्जआ वर्ग से सम्बन्ध रखते थे उनका कार्यक्षेत्र केवल शहरों तक ही सीमित था। उनके पास देहात की फिक्र करने की फुर्सत नहीं थी और ना ही वे ऐसा चाहते थे। यूनियनिस्ट पार्टी के नेताओं में अधिकांश का सम्बंध देहात से था वे गाँव-गाँव पहुँचे उन्होंने किसान हितैषी प्रोग्राम बनाया तथा किसानों की तकलीफों को सुना। इस से प्रभावित होकर कृषक वर्ग चाहे वह हिन्दू मुसलमान व सिख हो उनके पीछे हो लिए देहाती मतदाता अधिकतर इसी वर्ग से सम्बन्धित रखता था अतः लगभग सभी देहाती क्षेत्रों में यूनियनिस्ट पार्टी के उम्मीदवार विजयी रहे। अन्य पार्टी या केवल शहरों में ही कुछ स्थान ले पाई।

चुनाव के बाद मन्त्री मण्डल का गठन हुआ। पंजाब के उपराज्यपाल द्वारा फजले हुसैन की शिक्षा और स्थानीय शासन का मन्त्री पद दिया गया। हरकिशन लाल को जो पंजाब के एक विख्यात हिन्दू नेता थे वित्तमन्त्रालय सौंपा गया। लेकिन वित्त विभाग में सरकार द्वारा अनुचित हस्तक्षेप के विरोध में उन्होंने शीघ्र ही त्याग पत्र दे दिया। इस पर उपराज्यपाल ने वित्तमन्त्रालय युनियनिस्ट नेता राय बहादूर लाल चन्द को सौंप दिया। किन्तु लालचन्द को भी शीघ्र ही मन्त्रीपद छोड़ना पड़ा क्योंकि लालचन्द थे खिलाफ चौ० मातुराम ने चुनाव याचिका दायर की थी जिसमें उन्हें दोषी पाया गया। अब उपराज्यपाल ने चौ० लालचन्द को हटा कर चौ० छोटुराम को मन्त्री पद दे दिया।

चौ० छोटुराम के मन्त्री नियुक्त होते ही हरियाणा की राजनीति मे एक नया मोड़ आ गया। युनियनिस्ट पार्टी शक्तिशाली हो गई जब चौ० लालचन्द द्वारा खाली की गई सीट पर चुनाव हुआ तो युनियनिस्ट पार्टी के उम्मीदवार चौ० टेकराम को उत्तर पश्चिमी रोहतक से भारी बहुमत से चुन लिया गया। अब युनियनिस्ट पार्टी की ताकत बहुत बढ़ गई थीं कांग्रेस की पहुँच अब केवल शहरों के धनी व्यापारी वर्ग और बाबु वर्ग तक ही सीमित रह गई थी। वास्तव में यहाँ कांग्रेस इस समय प्रायः म त सी हो गई थी।

1926 के चुनाव भी लगभग ऐसी ही हालात में हुए। इस समय स्वराज पार्टी की दशा ओर भी दयनीय हो गई थी। स्वराज पार्टी के स्तम्भ समझे जाने वाले मुख्य नेता सी० आर० दास की 16 जून 1925 को म त्यु हो गई थी। अब पार्टी को आपसी फुट ने अर्धम त कर दिया था। मुस्लिम लीग और हिन्दु महासभा की कमजोर थी। एक और नई पार्टी इस समय मैदान मे उतरी थी। यह पार्टी लाला लाजपत राय, प. नेकी राम शर्मा और मदन मोहन मालवीय ने मिलकर बनाई थी। इसका नाम स्वतन्त्र कांग्रेस पार्टी (नेशनलिस्ट पार्टी) रखा गया और इसका उद्देश्य हिन्दुओं के हितों की रक्षा करना था। नेकी राम शर्मा ने नई पार्टी के प्रचार अभियान के लिए 25 अक्तुबर से 16 नवम्बर 1926 तक हरियाणा के क्षेत्र का दौरा किया और प्रबल प्रचार किया। स्वराज्य पार्टी के कार्यों की उन्होंने निन्दा की। लाला लाजपत राय ने भी हरियाणा प्रदेश का दौरा किया और स्वराज्य पार्टी

की ढुलमुल नीति की आलोचना की। यही नहीं पंडित मदनमोहन मालवीय ने भी पार्टी के लिए हरियाणा का दौरा किया इन सभी नेताओं ने स्वराज्य पार्टी की अपने भाषणों में निन्दा की। लगभग ऐसा ही प्रहार स्वराज्य पार्टी पर यूनियनिस्ट पार्टी ने किया। छोटुराम ओर फजले हुसैन ने हरियाणा के अपने तुफानी दौरों मे स्वराज्य पार्टी तथा काग्रेस को बनियों का जमघट बताया। उन्होंने सभी लोगों को किसानों की हमदर्द युनियनिस्ट पार्टी को वोट देने की अपील की। इस चुनाव अभियान से हरियाणा के लोगों मे राजनैतिक चेतना इस हद तक बढ़ गई थी कि वे उम्मीदवाद व पार्टियों की राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक को भी समझने लगे।

23 व 26 नवम्बर 1926 को चुनाव हुए इन चुनाव में युनियनिस्ट पार्टी ने फिर बाजी मारी। केन्द्रीय विधान परिषद में उसे चार मे से दो स्थान प्राप्त हुए। पिछली बार भी यूनियनिस्ट पार्टी भी पूरे प्रान्त भर मे अच्छी रही। पर इस एक गडबड हो गई पार्टी की बढ़ती हुई लोकप्रियता पंजाब के तत्कालीन उपराज्यपाल सर मैंलकम हैली को अच्छी नहीं लगी। दूसरे पार्टी द्वारा हिन्दू मुसलमान के प्रश्न से ऊपर उठकर कार्य करना तो बिल्कुल पसंद नहीं था। तीसरे युनियनिस्ट पार्टी और कांग्रेस के उस समय के आधारभूत सिद्धान्तों में उसे कोई विशेष अन्तर नजर नही आता था ओर वह महसुस करता था कि दोनों पार्टियाँ कभी भी एक दूसरे से मिल सकती है। अतः वह इस बात की समझता था कि युनियनिस्ट पार्टी को कमजोर किया जाए। उन्होंने मन्त्रीमण्डल बनाते समय सर छोटू राम की जगह कमजोर प्रत्यासी सर फिरोज खाँ नुन को मन्त्री बना दिया जब कि फजले हुसैन चो० छोटू राम को मन्त्री बनाना चाहते थे। युनियनिस्टो को इससे धक्का लगा। लेकिन कांग्रेस वाले इस बात का भी फायदा नहीं उठा सके।

जब सविनय अवज्ञा आन्दोलन जोरो से चल रहा था। तो 1930 में फिर चुनाव हुआ चुनाव लड़ने वाली मुख्य पार्टियों, काग्रेस, युनियनिस्ट, हिन्दू महासभा व मुस्लिम लीग थी। चुनावों के परिणाम एक बार फिर युनियनिस्ट पार्टी के हक मे गये। विधान परिषद में उनके नुमाइदे बड़ी संख्या मे गए। पंजाब विधान परिषद मे उनको बहुमत प्राप्त हुआ इस बार भी देहात क्षेत्र पर उनकी पकड़ मजबुत थी। पंजाब के उपराज्यपाल ने फजले हुसैन को मन्त्रीमण्डल बनाने के लिए आमन्त्रित किया। नये मन्त्री मण्डल में चौ० छोटू राम पुनः मन्त्री बने इस से हरियाणा में यूनियनिस्ट पार्टी को काफी बल मिला।

1934 और 1935 में फिर चुनाव हुए। 1934 में केन्द्रीय विधान परिषद के लिये और 1935 में राज्य सभा के लिए। कांगेस ने इस बार भी चुनाव में भाग लिए। हरियाणा क्षेत्र में यूनियनिस्टों ने उन्हें बुरी तरह पछाड़ दिया चुनाव में हुई हार ओर युनियनिस्टों की बढ़ती हुई ताकत से कांग्रेस संगठन को बहुत क्षति पहुँची।

1937 के चुनाव भी अपने आप में बहुत महत्त्वपूर्ण थे भारत सरकार अधिनियम 1935 के अनुसार प्रान्तों को जो स्वायत शासन की सुविधा मिली थी उसके आधार पर यह चुनाव लड़े जा रहे थे। अतः कांग्रेस, युनियनिस्ट पार्टी, नेशनलिस्ट पार्टी, हिन्दूसहासभा, अकाली दल, सिख नैशनलिस्ट पार्टी, मुस्लिम लीग, मजलिसे इलेहाद मिल्लत आदि दलों ने चुनावों मे बढ़ चढ़ कर हिस्सा लिया। कांग्रेस ने चुनावों में रोहतक मे अपना चुनाव बोर्ड स्थापित किया। जिसके प्रधान प० श्री राम शर्मा और हरदेव सहाय प्रचार सक्रेटी बने। युनियनिस्ट पार्टी ने अपने चुनाव का सब जिम्मा चौ० छोटूराम को सौंपा हुआ था। राव बलबीर सिंह हिन्दू महासभा का काम सम्भाले थे प० नेकी राम शर्मा नेशनलिस्ट ऋ्धपार्टी के सवेसर्वा थे।

राष्ट्रीय और स्थानीय स्तर के नेताओं ने अपने-अपने दलों का जोर-शोर से प्रचार किया। काग्रेस की तरफ से श्रीमती सरोजनी नायडु, जवाहरलाल नेहरू स्वामी सत्यदेव आदि ने बहुत सी चुनावी सभाओ का सम्बोधित किया। युनियनिस्ट पार्टी की तरफ से सर सिकन्दर हयात खाँ और चौ० छोटू राम ने सारे क्षेत्रों, विशेषकर देहाती क्षेत्रों का दौरा किया और अपनी पार्टी का कार्य कर्म लोगों को बताया हिन्दू महासभा की तरफ से राजा नरेन्द्र नाथ और राव बलवीर सिंह ने प्रचार किया। प० मदनमोहन मालवीय नेकी राम शर्मा ने नेशनलिस्ट पार्टी का प्रोग्राम लोगों को समझाया। इसी प्रकार अन्य दलों के नेता भी आए।

18 फरवरी 1937 का चुनाव हुए। हरियाणा प्रदेश में युनियनिस्ट पार्टी की छवी काफी मजबुत थी। उसे देहाती क्षेत्रों मे 73.7% स्थान मिले जब कांग्रेस को देहात में केवल 0.05% स्थान ही मिले। शहरों में यूनियनिस्ट पार्टी थी स्थिती कुछ कमजोर रही वह उसे 0.25% स्थान मिले। सिखों के निर्वाचन क्षेत्रों मे खालसा नेशनल पार्टी और अकाली दल ने क्रमशः शहरों और देहातों मे पुर्णतया विजय प्राप्त की।

इस प्रकार हरियाणा की तरह पूरे पंजाब में यूनियनिस्ट पार्टी को ही बहुमत प्राप्त हुआ। अतः पंजाब के राज्यपाल ने युनियनिस्ट नेता सर सिकन्दर हयातखाँ को मन्त्रीमण्डल बनाने का निमन्त्रण दिया। मन्त्रीमण्डल में चौ० छोटू राम मन्त्री और चौधरी टीकाराम संसदीय सचिव नियुक्त किये गए। इस प्रकार सरकार बनने पर युनियनिष्ट पार्टी काफी मजबुत हो गई।

1946 में अग्रेजों के नियन्त्रण वाले हरियाणा के फिर चुनाव हुए। पहले के चुनाव मे हमेशा कांग्रेस पर युनियनिस्ट पार्टी का पलड़ा भारी रहता था लेकिन इस समय तक स्थिति कांग्रेस के हाथ मे चली गई थी। एक तो कांग्रेस की लोकप्रियता इस समय बढ़ गई थी और देहात तथा जन साधारण इससे पूरी तरह प्रभावित हो चुके थे दूसरा युनियनिस्ट पार्टी के स्तम्भ चौ० छोटुराम का निधन हो चुका था। इस महान नेता के जाते ही युनियनिस्ट पार्टी के मुसलमान सदस्य मुस्लिम लीग के प्रभाव में चले गये। और सभी जगह पार्टी दुर्बल हो गई। हिन्दू महासभा के स्तम्भ राव बलवीर सिंह का भी निधन हो चुका था।

1946 के चुनाव में कांग्रेस ओर मुस्लीम लीग को हरियाणा में सर्वोपरी स्थान मिले पंजाब में मुस्लीम लीग को 75 स्थान काग्रेस को 51 अकाली दल 22 और युनियनिस्ट 20 स्थान निर्देलीय मे 7 स्थान प्राप्त किए ऐसी स्थिति में अकेला कोई भी दल सरकार नहीं बना सकता था अतः कांग्रेस ने युनियनिस्ट पार्टी से मिलकर सरकार बनाई इस प्रकार हम देखते हैं कि चौ० छोटूराम की गैर साम्प्रदायिक पार्टी मुस्लिम साम्प्रदायियों के हाथ में चली गई। परिणामस्वरूप हरियाणा के लोगों ने युनियनिष्ट पार्टी से `नाता सम्बन्ध विच्छेद करके कांगेस से नाता जोड़ लिया।